महादेवी के काव्य में वेदना

डॉ० प्रभा खरे

प्रकाशक □ साहित्यवाणी
२८, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद—२११००६
प्रथम संस्करण □ १९८८
मूल्य □ साठ रुपए मात्र
मुद्रक □ बाला प्रिंटिंग प्रेस
कटरा, इलाहाबाद—२११००२

प्राक्कथन

छायावाद, पुनर्जागरणयुगीन भारतीय सस्कृति का काव्या दोलन है। इसम जीवन-मूल्या की आत्मपरक अभिव्यक्ति हुई है। अब तक इस काव्यान्दोलन का विवेचन अनेक दृष्टियो से हो चुका है। इसके निमाता कविया पर भी पर्याप्त विचार-विमर्श हो चुका है, किन्तु छायावाद स्वच्छ दतावाद की मूल-चेतना का मनोदार्शनिक अध्ययन सौ दयशास्त्र के नय प्रतिमाना के आधार पर कम हुआ है।

प्रस्तुत ग्र थ मे स्वच्छ दतावाद, छायावाद, रहस्यवाद के केन्द्रीय तत्वो और प्रवृत्तिया का संधान किया गया है तथा महादेवी वर्मा के काव्य-वैशिष्ट्य को उद्-घाटित किया गया है। छायावादी आ दोलन की समग्रता को ध्यान मे रखकर उसकी विविध कला शैलिया का विवचन महादेवी वर्मा की सौ दय-दृष्टि के परिप्रेक्ष्य म हो सका है।

पीडा, दु ख, वेदना करुणा पर सस्कृत एव ग्रीक काव्य मे विशद दृष्टिकाण मिलता है। सस्कृत के करुण रस एव ग्रीक की त्रासद भावना मे एक विशेप मानवीय औदात्य है, आध्यात्मिक प्रज्ञाबोध है। इसके सम्यक् विश्लेपण का प्रयास प्रस्तुत ग्र थ मे किया गया है। इसके अतिरिक्त वेदना की रसात्मक दृष्टि की खोज, उसकी सौ दर्य परिकल्पना का मूल्याकन किया गया है। वेदना के विरागमूलक, निवृत्ति-मूलक, निरपेक्ष पक्षो के साथ उसके ग्रहणशील सवेदन पक्षो की भी खोज की गयी है। व्यष्टि तथा समष्टि के दृष्टिकोण से वदना की काव्यात्मक उत्कृष्टता को उभारा गया है। करुण रस की व्याप्ति के लौकिक, भौतिक आधारा को विश्लेपित किया गया है।

इस दृष्टि से यह ग्रन्थ स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, रहस्यवाद के पुनर्मूल्यांकन के कार्य को आगे बढ़ाना है। दर्शन, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के साथ सौन्दर्य-बोध-शास्त्र की संगति बिठाते हुए हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य पर निष्कर्ष देना असाधारण कठिन किन्तु रुचिपूर्ण कार्य है। विश्वकलामित्र में करुण तथा त्रासद की मौलिकता को उद्घाटित करते हुए, मैंने महादेवी के काव्यमूल्यों में उनकी खोज का विनम्र प्रयास किया है।

इस तरह प्रस्तुत ग्रन्थ में वेदना और त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में विविध प्रकार के मानवीय मूल्यों का समाहार हुआ है जिसके लिए मैंने शास्त्रीय और स्वच्छन्दतावादी काव्यमानों की पर्याप्त सहायता ली है। मेरे द्वारा प्रतिपादित स्थापनाएँ तथा निष्कर्ष यदि छायावाद और महादेवी वर्मा की कविता में कुछ नवीन जोड़ सकें, तो इसे मैं अपने श्रम की सार्थकता समझूँगी।

जबलपुर, म० प्र०

—डॉ० प्रभा खरे

अनुक्रम

काव्य-परम्परा और वेदना

मनोविज्ञान मे भावना के स्तर पर जो प्रतिकूल प्रभाव होता है, उसका अनुभव और एहसास जिसे हम दु ख और वेदना की सज्ञा से अभिहित करते है तथा उसकी स्थिति को ऐकातिक और नैराश्यमूलक मान लेते है, यदि उसका विज्ञान की शैली म तथ्य निरूपण किया जाये तो कह सकते हैं कि सृष्टि के नियम म स्थापना और प्रतिस्थापना के बीच सघात या सघर्ष की जो स्थिति होती है वह तनावपूर्ण, असतुलित और क्षोभपूर्ण होती है। अत तनाव और तनाव से मुक्ति, क्षोभ और क्षोभ से मुक्ति—यह प्रक्रिया 'सृष्टि' के नियम म दिखाई देती है।[1]

सृष्टि की रचना के सदभ मे वैज्ञानिको ने पदार्थ और ऊर्जा के स्थान सापेक्षिक, विविधमुखी होने की बात की है, दार्शनिक और कवियो न भी इसी ऊर्जा सघर्ष को जीवन की रचना मे महत्व दिया है जिसे ऊर्जा का चाचल्य कह सकते हैं। जिसे वेदो मे अग्नि और सोम की प्रवृत्ति कहा गया है, इससे जगत की स्थिति है एव इसका सघष एक प्रक्रिया है।[2] अत जिसे जीवन कहा जाता है और जिसे मृत्यु कहते हैं, वह तो मूलत अग्नि और साम की विविधमुखी स्थितियो का नापन, पदार्थ एव ऊर्जा की नवोन्मेषित अभिनव चेतन ईकाई है।

इस सृष्टि का सब कुछ प्राणमय है, निरन्तर गतिशील है। मनुष्य ने अपनी व्यवस्था के अनुकूल अर्थात् मनुष्य न अपने स्वभाव, अपनी प्रकृति एव अपने सदर्भों के अनुकूल इस जीवन प्रक्रिया का विशिष्ट अर्थ लिया है क्योकि मनुष्य एक प्राणी है, अपने एक निश्चित काल म गतिबोधक प्राण ऊर्जा है, उनका अस्तित्व निश्चित और सीमित है। अत उसका निश्चित होना, सीमित होना उसके मानवीय अर्थ-चिन्तन म एक महत्वपूर्ण विचार दृष्टि बन जाती है। वह जीवित है किन्तु कुछ निश्चित काल-खण्ड म उसकी अपनी निश्चित गतिविधि है तत्पश्चात् उसका विनयीकरण अर्थात् तत्वों का विलग होकर अपने-अपने गुणधर्म म लीन हो जाना निश्चित है। पचभूतात्मक समावेश की प्राणनिष्ठ इकाई अर्थात् मनुष्य इस प्रकृत नियम को जानकर भी भयभीत

---

1 विश्व की समस्त रूपात्मक तथा जैवी विकृति, अणु परमाणुओ के विशेष सघटन का परिणाम है और इस सघटन की ऊर्जा की न्यूनाधिक मात्रा म ही जीवन के सचेतन, प्रसुप्त चेतन, अवचेतन आदि रूपो की स्थिति सम्भव है। महादेवी वर्मा मधिनी—चिन्तन के क्षण, पृ० ५, प० स० १९६५।

2 प० नारायण शकुन वेदा म भारतीय सस्कृति, पृ० १२ (हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश)।

होता है। सवेदना के स्तर पर उसकी स्थिति दयनीय और कारुणिक हो जाती है, इस विलयीकरण (मृत्यु) को वह अपनी अनिवार्य पराजय और हार मानता है।

उक्त सदर्भ मे निहित है—वेदना, करुणा, निराशा का विज्ञान, दशन और सौन्दयानुभव। यदि सृष्टि की उत्पत्ति के नियमो से परिचय प्राप्त कर हम अपन अस्तित्व पर विचार करें, हम प्रकृति और मनुष्य की सबधरूपता पर विचार करे तो अतत एक निराशा पैदा होगी क्योकि प्रकृति शाश्वत है मनुष्य नश्वर। चूकि मनुष्य अपनी इस नश्वरता के प्रति सचेत होता है और आत्मपरक होकर विचार करता है इसलिए उसके विचार की प्रवृत्ति दु खमूलक हो जाती है। दार्शनिको, कवियो न समय-समय पर इसी निराशा, वेदना के तत्वबोध की मीमासा की है।

जब जीवन ही सघष-प्रक्रिया का पर्याय है तो यह सघष एक विशिष्ट काल और स्थान की यात्रा का द्योतक हो जाता है। मनुष्य जब अपने सदर्भों को प्रमुख बनाकर अथवा अपनी वैयक्तिक इच्छा, मनोभावना के आधार पर इस यात्रा का मूल्याकन करता है तथा सफल और असफल होने की स्थितियो को विभक्त करता है, तो असफलता का बोध ही वेदना, करुणा का पर्याय बन जाता है। इसीलिये दार्शनिक निर्लिप्त होने, तटस्थ होन की बात करता है, वह वैयक्तिकता से मुक्त होन की बात करता है किन्तु कविता का ससार विराग का, मुक्त होने एव तटस्थ होने का नही है, वह रागात्मक ससार है। वह जुड़ने एव सपृक्त होने का, तादात्म्य और तदाकार होने का समार है।[१]

अत मनुष्य यात्रा की सफलता और असफलताओ का गणित अपना अर्थ रखता है। इसीलिये आदिकाल से आज तक भावना और सवेदना के क्रिया-कलाप मे दु ख, वेदना, निराशा पर नये-नये रूपा म, नयी-नयी शैलिया म बराबर कुछ-न-कुछ कहा जाता रहा है। वाल्मीकि से छायावाद तक, ग्रीक त्रासदो से शेक्सपियर और इलियट के 'वेस्टलैंड' तक वेदना एव निराशा के विविध रचनात्मक सदर्भ दिखाई देते हैं। अत वेदना हो करुण रसमयी चेतना म रूपान्तरित हो जाती है। इस तरह वेदना-मूलक सृष्टि ही रचना का सहज नियम है। इस वेदना के भौतिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक सदभ म जिनको समझकर ही रचना और वेदना के समग्र सौंदर्य रूपा का उद्घाटन किया जा सकता है।

---

१ जीवन अनुभूतियो की सहति है। मानव का अपने परिवेश से सम्पर्क किसी-न-किसी सुखात्मक या दु खात्मक अनुभूति को जन्म देता है और इन सवेदना पर बुद्धि का क्रिया-प्रतिक्रिया मूल्यात्मक चिन्तन के सस्कार बनाती चलती है। विकास की दृष्टि स सवेदन चिन्तन के अग्रज रहे हैं क्योकि बुद्धि की क्रियाशीलता स पहले ही मनुष्य की रागात्मक वृत्ति सक्रिय हो जाती है। महादेवी वर्मा—साधिना, पृ० ११।

जैसा कि ऊपर कहा गया है—वेदना के भौतिक, लौकिक सदर्भ, स्यात सापेक्ष और सामाजिक हुआ करते हैं। इनकी मीमासा बौद्धधर्म दर्शन म हुई है। वहा दु ख, दु ख का कारण, दु ख का निवारण और निवारण के मार्ग पर दीघ चिन्तन हुआ है। बौद्ध दार्शनिको ने ससार की नश्वरता, क्षणिकता, क्षणभगुरता पर गहन विचार किया।[१] वेदान्त मे प्रकृति, माया तथा मनुष्य के नैराश्यमूलक दशन एकदम गौण नही है।[२] यद्यपि वेदान्त वदनामूलक दशन नही आनन्दमूलक दशन है।[३] फिर भी प्रवृत्ति और निवृत्ति के दो अवधाना म निवृत्ति का सदर्भ अत्यन्त तीखा और दु खपूर्ण है। बौद्धा ने इस निवृत्तिमूलक विवेक की सस्कृति को स्पष्ट किया जो एक युग के विशिष्ट दशन के रूप म विकसित हुआ।[४]

वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर सामान्यत दु ख को दो रूपा म विभक्त किया जा सकता है। प्रथम सामाजिक विषमता से उत्पन्न विषाद, द्वितीय व्यक्तिगत असफलता से उत्पन्न विषाद। प्रथम को दु ख और द्वितीय को वेदना की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।[५] जीवन की विषमता से उत्पन्न दु ख के तीन रूप होते ह—

(१) स्वय के जीवन की विषमता की असफलता से उत्पन्न विवाद।

(२) बाह्य जगत के कारण उत्पन्न जो कि प्राय करुणा या सहानुभूति के रूप मे व्यक्त होता है।

(३) जीवन की क्षणभगुरता से उत्पन्न विषाद जो सम्पूर्ण सृष्टि को ही दु ख, निराशा से ओत-प्रोत दखता है।[६]

सामान्य दु ख और काव्य की वेदना मे अन्तर

सामान्य दु ख और काव्य की वेदना म अन्तर होता है। सामान्य दु खो की पृष्ठभूमि अभावात्मक होती है। ये अभाव बाह्य एव व्यावहारिक जीवन से सबधित

१ कोनु हासो किमानन्दो निच्च पज्जलित सति
अधकारेन ओनद्धा पदीप न गवेस्सथ ॥१॥
(जब नित्य जल रहा है, तो हँसी कैसी ? आनन्द कैसा ? अधकार से घिरे प्रदीप को खोज क्या नही ?)
भिक्षुधर्मरक्षित धम्मपद—जरावग्गो, पृष्ठ ५२, १९५८।

२ उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण रामचद्र दत्तात्रेय रानाडे, द्वि० स०, पृ० १९२।

३ ईशावास्योपनिषद् १।

४ भिक्षुधर्मरक्षित धम्मचक्कप्पवतन सुत्त, पृ० ४-५।

५ पद्मा अग्रवाल प्रतीकवाद—पृ० ३३, प्र० स०, सवत २०५५ वि०।

६ जानकीवल्लभ शास्त्री चिन्ताधारा, पृ० ६८।

भी हो सकते हैं तथा आतरिक और मनोवैज्ञानिक भी। अभाव की प्रकृति प्रतिक्रिया-मूलक होती है, इसलिए तनाव की, विश्राम की क्रिया या चेष्टा बनी रहती है। यह अभावात्मक प्रतिक्रिया जब वहिर्मुखी और व्यावहारिक धरातल पर होती है तो उससे उत्पन्न मानसिक असतुलन अपराध, क्रूरता, हिंसा और द्वेष, ईर्ष्या की ओर प्रेरित करता है किन्तु जब यह अभावात्मक प्रतिक्रिया मानसिक धरातल पर होती है तो या तो उन्माद की स्थिति पैदा होती है या इच्छाओ, आकाक्षाओ के रूपान्तरण का द्वार खुलता है। इच्छा के रूपान्तरित होने की दृष्टि ही काव्य और कला की दृष्टि है। रूपान्तरण की प्रक्रिया से पुन भावात्मक समृद्धि होने लगती है। रूपान्तरण से पूर्व जो सामान्य अभावजनित दुख या वेदना है वह रूपान्तरण की प्रक्रिया मे विशिष्ट और भावात्मक होता है अर्थात् इस रूपान्तरण के द्वारा क्षतिपूर्ति होती है और एक सामान्य भाव की उपलब्धि होती है जिसे कविता या कला म 'उदात्त' कहा गया है।

अरस्तू ने अपनी 'ट्रेजेडी' के विवेचन म इस अभावात्मक और भावात्मक प्रक्रिया का उल्लेख किया है।[1] वह कहता है कि रूपान्तरण के बाद जो कलात्मक परितोष होता है वह एक भावोपलब्धि है एव यह कलात्मक परितोष को प्रगट करने वाली भावोपलब्धि आध्यात्मिक अन्तर्दर्शन (Metaphysical vision) से परिपूर्ण होती है। भारतीय रसदृष्टि से विचार करने पर लौकिक ज्ञान तिरोहित हो जाता है। हमारी वैयक्तिकता विलीन हो जाती है और एक सामान्य लोकभाव की सृष्टि होती है। यह है रूपान्तरण के माग स पुन प्राप्त भावात्मक समृद्धि का सिद्धात।

काव्य मे करुण रस की सस्कृति

सामान्य भाषा म जो दुख है, वेदना है, वस्तुत कविता या कला मे वही तो करुण है किन्तु दुख निजी, सीमित, निश्चित, क्षणिक है और करुण की एक सस्कृति होती है अर्थात् करुणभाव समूचे भाव व्यक्तित्व की मूल प्रेरक दृष्टि के रूप मे उपस्थित होता है, तभी वह रसज्ञान का पर्याय है। जब कोई भावना अपने वैयक्तिक और लौकिक आधार से मुक्त होकर निर्वैयक्तिक और सामान्य भावभूमि को प्राप्त नही कर लेती तब तक उसका कलात्मक परितोष देश, काल, वातावरण से परिबद्ध रहेगा। वह शाश्वत भावबोध की अभिव्यक्ति तभी कर सकेगी जब वह भावना सामान्यीकृत हो जाती है तो उसका आशय होता है कि वह रचनाकार या कलाकार के समग्र व्यक्तित्व की अर्थात् अधिकतम मनोवृत्तियो के समीकृत रूप का आधार ले चुकी है और यही पर रचनाकार के मन म मानवीय अस्तित्व के अधिकतम रूपो और गुणो का प्रकाशन होता है।

करुण रस क मूल म यही दृष्टि विद्यमान है। अत कविता की वेदना जीव-

---

१ डा० नगेन्द्र अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० ८१ एव ८१, प्रथम सस्करण, स० २०१४ वि०।

शास्त्रीय नही होती । वह जीवन के मनोदार्शनिक स्तरो का उद्घाटित करती चलती है तभी तो काव्य या कला म जीवन का नैरतय बना रहता है,-उसकी सभावनाये कभी कम नही होती और तभी तो कालिदास, शेक्सपियर, भवभूति एव मिल्टन की चिताधारा हमे आज भी प्रभावित करती है ।

अत जब तक करुण रस के मनोविज्ञान का कलाशास्त्रीय आधार प्रस्तुत नही होता तब तक दु ख या वदना के सौदय उपादाना की समथ नही हो सकती, इसके अतिरिक्त करुण रस की व्यापकता का बाध भी नही हो सकेगा । इसलिए बौद्ध दशन, ईसाई दशन मे वदना की तत्व दाशनिकता का विराग और निर्वेद की आध्यात्मिकता का विवेचन हुआ है, दाना धर्मों ने इसी के आधार पर एक विशिष्ट नैतिक आचरण की मान्यता पर बल दिया किन्तु काव्य या कला के सदभ मे वेदना की तत्व-दार्शनिकता का अर्थ बदल जाता है । उसमे न तो आचरण की नैतिकता का पाठ मिखाया जाता है और न ही तत्व दर्शन के बधन लागू होत हैं बल्कि शातरसोमुख करुण रस मे वदना की तत्व दार्शनिकता का अर्थ रहस्यमूलक होता है ।

तत्व दशन एक Logic है जबकि कविता एक Intuition । अत तत्व दर्शन की तार्किकता कविता मे सहजानुभूतिय हो जाती है, सहजानुभूतिय का विषय सवेदनात्मक होता है । इसीलिये काव्य या कला मे दार्शनिकता रहस्योन्मुख भावना की पर्याय हो जाती है । इसी रहस्यवाद के द्वारा मनुष्य और प्रकृति के सम्बधो मे जो रागात्मकता दिखाई दती है उस ही सौंदर्य कक्ष मे रखा जा सकता है । अत, वेदना और निर्वेद की तार्किकता दशन का विषय है । वेदना और सहजानुभूति का रहस्यात्मक रूप कला या काव्य का विषय है । प्राचीनकाल से आज तक इस वेदनामूलक भावयोग की महत्ता को स्वीकार किया गया है । वाल्मीकि से लेकर प्रसाद, महादेवी तक इसकी युग साक्षेप विशिष्टता बराबर बनी रही । आदि कवि बाल्मीकि ने क्रौच बध के सदर्भ म जिस वेदना-प्रसूत भाव से छद की रचना की वह शोक-श्लोक मे परिणित हा गया ।[1]

शोक-श्लोक का सौन्दर्य-शास्त्र

भारतीय काव्यचिन्ता आनदवादी है और पश्चिम से प्रभावित हिन्दी के समीक्षकों ने इस आनदवाद के सही और व्यापक अर्थ को न समझकर आलोचना की है । पश्चिम की 'एरिस्टाटेलियन ट्रेजडी' के द्वारा व स्वीकार करते हैं कि जीवन के यथाथ का जैसा विशद विश्लेपण वहाँ हुआ है, भारत मे नहीं हुआ किन्तु यदि भारतीय

१ मा निपाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत् क्राचमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ॥१४-१५॥
—श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सग, पृ० ३१ । गीता प्रेस गोरखपुर, प्रथम सस्करण, स० २०१७ ।

काव्यचिंता के समाजशास्त्रीय एव मनोवैज्ञानिक आधारा को स्पष्ट किया जाये, आनन्दमूलक रसभाव की सम्पूर्ण प्रक्रिया का विकासात्मक आधार प्रस्तुत किया जाये तो स्पष्ट होगा कि भारतीया का आनन्दवाद भी जीवन के भौतिक, लौकिक आधारा से असम्पृक्त नही, वल्कि वह तो जीवन के अतिम उद्देश्य के रूप म, जीवन की निष्पत्ति के रूप मे उपस्थित हुआ है।

क्या कभी किसी काव्यचिन्तक समीक्षक न इस निष्पत्तिद्योतक आनन्द और रस की पूर्व अवस्थाआ पर विचार किया है ? यदि इस रस-निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेपण करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि जीवन यथार्थ की विपमताआ से बचकर इस आनन्दवाद की निष्पत्ति को प्राप्त नही किया गया। भारतीय काव्य-चिंतन म नाटक और महाकाव्य की दृष्टि प्रमुख रही है। आधुनिक समीक्षक ये कैसे भूल जाते हैं कि नाटक सामाजिक प्रत्यक्षानुभूति की विधा है, वह प्रदर्शनात्मक दृश्यविधा है। उसम भाव-व्यवहार का आरोपण होता है और महाकाव्य कर्ता-कर्म सापेक्ष विधा है। इसम युग और समाज की गतिशीलता का, आरोह-अवरोह, उन्नति और अवनति का सशक्त चित्र उपस्थित होता है। अत जागतिक सदर्भों से बचकर आनन्द की निष्पत्ति हो ही कैसे सकती है ? इस नैसर्गिक काव्य मार्ग को न समझ सकने के कारण ही आनन्दवाद पर आक्षेप किये जात रहे जिससे तरह-तरह के भ्रमों की सृष्टि हुई।

यदि वाल्मीकि की रामायण के सदर्भ म ही शोक एव आनन्द की चर्चा करे तो स्पष्ट हो जायेगा कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन कितने विपम और तनावपूर्ण थे। लगता है कि श्रेष्ठ होने के लिए जीवन सघर्ष मे उन्हे उतरना पडा और जो विजय हुई वही तो आनन्द है किन्तु इस आनन्द को प्राप्त करन मे कितना खोना पडा, इसका वेदना पक्ष मानवीय मनोविज्ञान के अनुकूल है। राम सघर्परत है और यह सघर्ष इतिहास-सम्मत है, लौकिक है। इस सघर्ष मे राम को जिस अभावात्मक भूमि से गुजरना पडा है न चाहते हुए भी सबको छोडना पडा है। इस वैपम्य का एहसास ही तो क्रौंच-वध का प्रतीक है। क्रौंच-वध काव्य के रचना सिद्धात का एक दृष्टात है, वह काव्य के प्रेरणा स्त्रोत का एक सिद्धात है। वाल्मीकि ने इसी को समूचे युग के परिप्रेक्ष्य मे उपस्थित किया है। जहाँ व्यक्ति एक कर्ता है, जाति का नियामक है, आचरण का निर्धारक है तभी तो व वेदना और करुण की सस्कृति का आधार ले सके हैं और तभी तो वह (रामायण) 'करुण रस' जैसे लौकिक अभावो की कलातुष्टि का निचोड है जिसे भवभूति के समान प्रतिभा-सम्पन्न कवि ने रस श्रेष्ठ माना है।

उस स्थिति के सौन्दयशास्त्र को समझना चाहिए। जब शोक-श्लोक छद के रूप म मुखरित हो उठे, जीवन गीत बन जाये, क्या इसी को हम 'अश्रु-स्मित नही कह सकते। दुख अपनी वैयक्तिकता से मुक्त होकर ही रागात्मक परितोप का आधार हो सकता है। दुख अपनी कायिक-लौकिक उत्तेजनाआ से मुक्त होकर ही रागात्मक

छ॰ बन सकता है, गेय हो सकता है। इसीलिए प्रत्येक श्लोक में छन्द का आनन्द-वैभव हमे वाल्मीकि में मिलता है।

वस्तुत शोक-श्लोक की सौन्दर्य-दृष्टि में रचना-प्रेरणा का मनोविज्ञान और रचना-प्रक्रिया की प्रकृति का आधार स्पष्ट हो सके है। शोक बीज रूप मन स्थिति है, जिसकी भावात्मक क्रियाशीलता रचना का विषय है। इस प्रकार आदिकवि ने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से काव्य की उत्तेजना के कारण स्रोतो की खोज की है। उनकी रामायण म राम-वन-गमन के समय दशरथ की मन स्थिति और रानियो के साथ उनका विलाप,[1] नगरवासियो की शोकाकुल अवस्था,[2] दशरथ और कौशिल्या का मूर्च्छित होना[3] आदि दृष्टान्तो या सन्दर्भो मे मार्मिक भावो की अभिव्यक्ति हुई है।

समूची रामायण मे यदि उत्तरकाण्ड को छोड दें तो एक प्रकार की जैविक एकता दिखाई देती है अर्थात् महाकाव्य के विशाल वस्तु-फलक की रचना-योजना कितनी निस्पृह, नैसर्गिक व सहज है। कही भी किसी अतिरिक्त अलकार की सृष्टि नही हुई। समूची रामायण की कला सर्वनागमित रूप-वैभव स युक्त है। सस्कृत की छद सरचना मे लय का जैसा सहज प्रवाह समूची विशालकृति म दिखाई देता है वह रचनाकार की भाव-सम्पन्नता का उत्कृष्ट उदाहरण है। कही भी कोई कलाकारिता नही, कही कोई सदर्भविच्युति नही। सर्वत्र ही प्रकृति जीवन की सृजनशील उत्कर्ष विधायक स्थितियो का उतार-चढाव दिखाइ देता है। इसीलिए तो राम समूचे आर्यत्व की प्रतीक दृष्टि रूप मे उपस्थित होते हैं। जो आर्यत्व है, वही रामत्व है तथा यह रामत्व ही आर्य जाति की मूल्यात्मक निष्पत्ति है।

भवभूति का एकोरस करुण एव मनोविश्लेषणात्मक सौंदर्यशास्त्र की समस्या

वाल्मीकि की शोक-श्लोक धारणा का विस्तृत और व्यापक रूप हम भवभूति म दिखाई पडता है, जिन्होंने 'करुण रस' को सवश्रेष्ठ माना तथा 'एकोरस करुण ऐव' कहा।[4] वैसे कालिदास की भावदृष्टि मे 'करुण रस' की गभीर अभिव्यक्ति हुई है किन्तु भवभूति के उत्तर रामचरितम् के तृतीय अक म राम के विलाप का जो भव्य-चित्र अंकित किया गया है वह अपूर्व है। प्रारभ मे ही भवभूति कहते हैं कि—

---

१ अयोध्याकाण्डे—द्वादश सर्ग (पृ० २१४) से
एकोनचत्वारिंश सर्ग (पृ० २६६) तक।

२ अयोध्याकाण्डे—सप्त चत्वारिंश सर्ग, पृ० ३१४-३१५।

३ अयोध्याकाण्डे—चत्वारिंश सर्ग पृ० ३०० से त्रिचत्वारिंश सर्ग, पृ० ३०६ तक। श्रीमद् वाल्मीकि रामायण (प्रथम भाग) प्र० स०, स० २०१७।

४ एकोरस करुण एव निमित्त भेदाद् भिन्न पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त बुद्बुद तरग मयान्विकारा—नम्भोयथा सलिलमेव तु तत्समग्रम ॥ ४७ ॥
- (३।४७१) पृ० ३१४—उत्तर रामचरितम्, तृतीय अक—प्र० स० १९६३।

'गाम्भीर्य के कारण गाढ वेदना वाला राम का करुण रस, पुटपाक के सदृश्य है।'[१] सम्पूर्ण तृतीय अक मे राम के विलाप की अनेक स्थितिया का मनोवैज्ञानिक एव काव्यात्मक चित्रण हुआ है। भवभूति मे वेदना की पकड इतनी सूक्ष्म है कि लयात्मक छद की रचना करते समय आत्म-सम्पूर्णता का भाव उपस्थित हो जाता है अर्थात् एसा लगता है कि जैसे पक्ति पक्ति म, प्रत्यक पद मे वेदना की रागात्मक गेयता का मूतरूप उपस्थित हो गया। राम के विलाप क्षणा म अवधानता या सनाहीनता की स्थिति वह है जिससे उन्माद और विक्षिप्तता पैदा होती है। राम की स्थिति कुछ इस तरह की है जैसे बछड के मर जाने पर गाय के रम्भान की होती है।

भवभूति ने इस तृतीय अक म स्थान-स्थान पर करुण रस की परिभाषाए दी हैं। कभी वे उस देहधारिणी वेदना कहते हैं,[२] और कभी हृदयपुष्प का मुरझाने वाला कठोर दीघकालीन ग्रथ।[३] राम एक प्रकार के व्यामोह या सम्मोहन की स्थिति म आ जाते हैं। फ्रायडियन मनोविज्ञान के आधार पर व्यामोह या सम्मोहन की स्थिति अतृप्ति के उन्मादात्मक अवस्था के लक्षण हैं जा मन म दिवास्वप्ना की सृष्टि करते हैं। भवभूति ने इस अक म वासन्ती के द्वारा आपातग्रस्त करिकलभ की ओर ध्यान आकर्षित कर राम की रक्षा की जो प्रार्थना की है उसम राम थोडी देर के लिए चमत्कृत हो उठते हैं और उनकी स्मृति तरगा म उद्वेलन उत्पन्न होन लगता है। वासन्ती जानती है कि राम का वियोग प्रगाढ है वह उनकी स्थिति का वणन 'विकल-करण पाण्डुच्छाय शुचा परिदुबल कथमपि से इत्युनेतत्य'' कहकर करती है और पचवटी की प्रकृति भी उनकी उनके मन की उन्माद अवस्था को बढाने मे सहायक रहा है। एसी स्थिति मे राम की सीता के लिय तडफन का जो भाव काव्य कलेवर मे उपस्थित हुआ है वह अप्रतिम है।[४]

---

१ अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तगूढघनव्यथ ।
पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणारस ॥ १ ॥
—उत्तर रामचरितम्, तृतीय अक, प्र० स० १९६३।

२ करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी।
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥ ४ ॥
—उत्तर रामचरितम्, तृतीय अक, पृ० २२०।

३ किसलयमिव मुग्ध बन्धनाद्विप्लूनम् ।
हृदय कुसुम शोषी दारुणो दीघशोक ॥ ५ ॥
—उत्तर रामचरितम्, तृतीय अक, पृ० २२१।

४ उत्तर रामचरितम्—पृ० २६५-३१२२।

५ भवभूति न इसकी ओर सकेत करते हुए एक श्लोक मे कहा है—
जनस्थान शून्ये विकल करणैराय चरितैरीप।
ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥ २८ ॥
—उत्तर रामचरितम् प्रथम अक, प्र० स० १९६३।

मनोविश्लेपणशास्त्र की दृष्टि स अवचेतन मे निहित अगणित भाव-ग्रथियो का, स्मृतियो का, मानस तरगो का सहसा सक्रिय हो उठना वेदना के मन स्ताप का द्योतक होता है और फ्रायड ये मानता है कि रचनाकार मन स्तापी होता है। अत मन स्ताप की अगणित अवस्थाओ का जैसा उद्घाटन भवभूति ने किया है वह 'एकोरस करुणऐव' को चरितार्थ करने वाला है।

हरबर्ट मारक्यूस न अपनी पुस्तक Eros and Civilization मे प्रेम, काम और सभ्यता के जटिल सबधो पर जो विचार किया है उसका आशय यही है कि बीज रूप मे निहित कामवासना जीवन के विविध सदर्भों मे रूपान्तरित होकर प्रेम की सस्कृति का कारण बनती है। उसी मे मनुष्य की स्थिति है और उसका सामाजिक भाव है।[1] वास्तव मे प्रेम उस बीज रूप कामवासना की रूपान्तरित उदात्त दृष्टि है। कविता के सदभ में यदि पात्र सस्कारो है तो उसकी बीज रूप कामवासना का उद्घाटन इसी उदात्त एव भव्य रूप म होगा। इसीलिए प्रेम-सम्बन्धो के टूटन स उत्पन्न वेदना या वियोग क मूल म जो कामभाव है वह प्रेम की सस्कृति के रूप म अथवा करुण रस क रूप म उद्घाटित होता है। द्रष्टव्य है कि वेदना एक भाव है जिसकी निष्पत्ति करुण मे होती है। वदना या व्यथा चि तामूलक, दु खबाधक क्रियाओ को उत्पन्न करता है और इन क्रियाओ का समाहार अथवा निष्पत्ति रस की सस्कृति म होता है जिसे करुण रस को सज्ञा दी गयी है।

भवभूति ने बीज रूप कामवासना के बिछोह अथवा टूटने, खडित होन का जो रसात्मक उत्कर्ष राम के वियोग मे उतारा है वह विश्व के शोक-छदस' की श्रेष्ठतम देन है। वे कहते हैं—'गाढी व्यथा वाला हृदय फटता है, किन्तु दो खण्डो मे विभक्त नही होता। शोक से दुबल शरीर मूर्च्छा को धारणा करता है किन्तु चेतना (सज्ञा) को नही छोडता, मन स्ताप शरीर को जला रहा है किन्तु पूण रूप स भस्मीभूत नही करता, मर्म को बीधन वाला दैव प्रहार करता है किन्तु जीवन को काट नही डालता।[2] दु ख कुछ इसी तरह का होता है। भवभूति न करुण रस की सस्कृति के विविध उतार-चढावो का जैसे साक्षात्कार किया था और यह साक्षीकृत करुण-बोध ही बिन्दु रसिकता के रूप मे मोतियो की माला के समान रचित हुआ है।

---

१ Herbert Marcuse Eros And Civilization, P 200, 1969 Alleh Lane The Penguin Press, London

२ दलति हृदय गाढोद्वेग द्विधा तु न भिद्यते
रहित विकल कायो मोह न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाह करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिमर्मच्छेदी न कृतन्ति जीवितम्॥ ३१॥

उत्तर रामचरितम्—तृतीय अक, प्र० स० १६६३।

करुण भाव के आनन्द का मनोविज्ञान और कालिदास का मेघदूत

जिस कवि की रचना मे समूची जाति के जीवत अतद्वन्द्वो का इतिहास रचनात्मक रूप धारण कर ले वह कवि निश्चय ही विश्व-दृष्टि-सम्पन्न होता है और उसकी कविता मे एक युग के गतिशील इतिहास की मूल चेतना एव सौन्दय दृष्टि निर्मित होती है। कालिदास सहज रूप से महान कवि थे अर्थात् उनकी सम्पूर्ण रचना दृष्टि आवयविक रूप चेतना से सम्पन्न थी, जिसमे जीवन के नैसर्गिक मूल्यो का समाहार दिखाई देता है। विश्व म धर्म निरपेक्ष मानव जीवन का इतना बडा कोई दूसरा नही हुआ। सस्कृत भाषा की प्रकृति के अनुरूप भाव के उतार-चढाव का जितना मार्मिक और प्रभावोत्पादक प्रारूप कालिदास न निर्मित किया, दूसर कवि नही कर सके।

शब्द का अपना स्वच्छन्द जीवन होता है और उसम अथ के अनेक स्तर (अभिधात्मक, लक्षणात्मक, व्यजनात्मक) उनकी उत्कष विधायक अवस्थाओ की ध्वनियो का निरतर उद्रेक होता रहता है। कालिदास इस उद्रेक-नरतय के पारखी थे। अत "भाव और रस की जितनी सूक्ष्म और भव्य दशाओ का उद्घाटन कालिदास म हुआ है अ यत्र दुलभ है।"[१] आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी न ठीक ही कहा है—'व जीवन के मागल्य और सौभाग्य के कवि थ।'[२] 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और मेघदूत' म वन्ना प्रसूत करुण भाव की मूत-अमूत दशाओ का उद्घाटन हुआ है।

कालिदास ने लासद्भाव की सूक्ष्मातिसूक्ष्म मर्म दशाओ का आवेगपूण चित्रण 'मेघदूत' मे किया है। जिसमे विरही यक्ष का वेदना का प्रकाशन हुआ है। विरही यक्ष की वेदना द्वारा कालिदास ने मानव-मन मे निहित प्रेम की पीडा की सरस रचना की है। मन्दाक्रान्ता छद मे कालिदास न यक्ष की आतुर विह्वलता के रूप मे वियोग की अगणित लयो का समीकृत रूप विधान निर्मित किया है जो भव्य और उदात्त है।

मेघदूत के प्रकृति दर्शन का अवलोकन करें तो स्पष्ट होगा कि 'काम सम्पूण प्रकृति की स्पदन गति का कारण है। इस काम ऊर्जा के छिटकने से जो उद्वेलन होता है वह उद्वेलन ही करुण रूप मे 'मघदूत' का विषय बन गया है। शैवदशन मे शिव और शक्ति के विलगाव और समागम की जिस दाशनिक भूमिका का निर्माण हुआ है उसम प्रकृति और पुरुष की, पदार्थ और ऊर्जा की सम्पूर्ण दशाओ का उद्भासन निष्पत्ति का विवरण है। कालिदास न इसी पृष्ठभूमि पर मेघ' जो काम पुरुष है, प्रकृति पुरुष है, जो जीवन सत्र है और जिसम जीवन की स्थिति है एव उसी स्थिति म क्रीडा कलाप है—महान काव्य की रचना की है और सम्पूण रचना म इद्रिय सवेदना के गतिपूण बिम्बो का निर्माण हुआ है।

---

१ डा० शशिभूषणदास गुप्त " उपमा कालिदासस्य, पृ० ११ प्र० स० १९६२।
२ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कालिदास की लालित्य योजना, द्वि० स० १९७०।

आपाढ के प्रथम दिन के पीछे बदलते हुए मौसम का शरीर और मन पर पडे हुए प्रभाव का चित्रण हुआ है, जिसमे काम-भावना की प्रतिच्छाया है। जब सम्पूर्ण प्रकृति ग्रीष्म के बाद पुन आप्लावित होने को आतुर होती है, आपाढ का प्रथम दिन आतुरता के उस छिपे भाव की व्यजना करता है। पर्वत शिखरो पर काले-काले बादलो को लिपटते देखकर विरही यक्ष के मन मे आतुर प्रेम जागृत हो जाता है तथा उन्मुक्त सा होकर अतीत की स्मृतिया मे खो जाती है। अपनी सुध-बुध खोकर मन स्तापी की हालत म प्रलाप करता है। कालिदास ने विरही यक्ष की दशा का जो चित्रण किया है उसमे उन्होंने इस मन स्ताप की ओर सकेत किया है कि धूम, ज्योति, पानी, हवा से निर्मित मेघ को दूत बनाने के पीछे काई विवेक नही है।[1] फिर भी विरह की दशा म वह मेघ को सम्बोधित कर आकुल भाव से निरन्तर कुछ न कुछ सदेश देता रहता है। यक्ष की स्मृति म उसके सम्पूर्ण देश का भूगोल है और उसके मन म जन कल्याण की भावना है। 'मेघदूत' म प्रेयसी के विरह के साथ-साथ जनकल्याण के भाव की जो पुष्टि हुई है वही तो इस कविता का मागल्य है।

कालिदास ने 'मेघदूत' के प्रत्येक पद म विरही की आनन्दपूर्ण उमगा का जो चित्र निर्मित किया है वह रसानुभूति का उत्कृष्ट नमूना है। 'मेघदूत' का वियोग विपरीत अवस्था से उत्पन्न दु ख की व्यजना है किन्तु इस दु ख की परिणति नैराश्य-मूलक नही बल्कि उमगपूर्ण है, आनन्दपूर्ण है। वह वियोग अथवा वेदना जो निराश करके जीवन की घनीभूत विरलता मे सिकुड जाय वह महान् नही हो सकती। वह वियोग जो जीवन के विविध और अनेक पहलुओ का स्पर्श करके उसके विविध पहलुआ को आच्छादित करते हुए सम्पूण मानवता को अपने मे समेट ले वह निश्चय ही महान् है। कालिदास ने इसी भूमिका पर 'मेघदूत' के करुण-भाव एवम् उसकी आभ्यातरित समृद्धि का उद्घाटन किया है।

भारतीया की आनन्द दृष्टि पर पश्चिमी चितका ने आक्षेप किये हैं। ये आक्षेप कभी-कभी तो इतने छिछले और गम्भीर हैं कि आश्चर्य होता है साहित्य के पारखी समीक्षको ने भारतीय आनन्द दृष्टि के मूल म निहित जीवन की गम्भीर चिन्ता को अनदेखा कैसे कर दिया। भारतीय आचार्यों ने रस की आनन्दपूर्ण स्थिति के मनोविज्ञान का, रसनिष्पत्ति और साधारणीकरण का पर्याप्त विश्लेपण किया है। डा० नगेन्द्र ने कहा है कि—'काव्य की सृष्टि नियतिकृत नियमो से रहित नाना चमत्कारमयी है। काव्य रस अलौलिक होता है (वैयक्तिक और भौतिक नही)। अत

[1] धूमज्योति सलिलमरुता सनिपात क्व मेघ।
सन्देशार्था क्व पटुकरणे प्राणिभि प्रापणीया।
इत्यौत्सुक्याद परिगणय मुह्यकस्त ययाचे।
कामाता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेपु ॥५॥

कालिदास—मेघदूत—पूर्वमेघ पृ० ५, तृतीय सस्करण, १६३०।

लौकिक कार्यकारण सम्बन्ध उसके लिए अनिवार्य नहीं है। दुःख से दुःख की उत्पत्ति तो लौकिक नियम है, किन्तु कवि की अलौकिक प्रतिभा के स्पर्श से काव्य में दुःख की अभिव्यक्ति सहज सम्भव हो जाती है।[1]

साहित्य दर्पणकार और पंडितराज जगन्नाथ ने शोकपूर्ण पदार्थ के आनन्द रूप में बदल जाने की अलौकिकता का निर्देश किया है। डा० नगेन्द्र कहते हैं कि—'कवि के पास दुःख को सुख में परिणित करने के दो साधन हैं। काव्य-कौशल या कल्पना का चमत्कार और साधारणीकृति-कल्पना या चमत्कार से साधारणीकृत होकर शोकादि की विशिष्टता नष्ट हो जाती है—व्यक्ति सम्बन्ध से मुक्त होकर उसके स्थूल लौकिक सम्बन्ध नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् उसका रूप सामान्य जीवनगत अनुभूति की अपेक्षा अधिक उदात्त और अवदात हो जाता है। भारतीय दर्शन की शब्दावली में व्यक्तिगत 'अल्प' की चेतना में सुख नहीं है, किन्तु व्यक्ति की सीमाओं से मुक्त 'भूमा' की चेतना में परम सुख की उपलब्धि है।[2]

'मेघदूत' में कल्पना और साधारणीकरण का मौलिक आकार रचा गया है।

'मेघदूत' के अतिरिक्त 'अभिज्ञान शाकुंतल' में वियोग अथवा त्रासद् भाव की मनोदशा का जो मार्मिक चित्रण हुआ है, वहाँ भी वियोगजनित मानसिक पीडा का रूपान्तर हुआ है और समूची प्रकृति त्रासद्भाव की प्रतिकृति हो गयी है। इस प्रकार कालिदास ने शकुंतला की मनोदशा को सम्पूर्ण परिवेश पर आच्छादित कर दिया है। यह परिवेश भौतिक प्रकृति और अन्तरंग चेतना का है। भौतिक प्रकृति के रूप में शकुंतला का मधुर सम्बन्ध वन के पौधों, पुष्पों, हिरणों, पक्षियों आदि से था। इन सबको वह अपना सहचर मानती थी, वे सभी दुष्यन्त के छली होने की ओर संकेत करते हैं, सूचना देते हैं। पत्तियाँ हिल-हिलकर दुष्यन्त से सम्बन्ध का निषेध करती है। पक्षी असाधारण रूप से चीख को ध्वनित करते है। यह सब कुछ प्रकृति की ओर से हुआ है किन्तु प्रेममग्न शकुन्तला अपनी दिन-प्रतिदिन की संगी प्रकृति की उपेक्षा करती है और वियोग का आख्यान निर्मित होता है। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि शकुन्तला से अधिक प्रगाढ एवं द्रुतिपूर्ण वियोगदशा प्रकृति के मानवीकृत रूपों में उद्घाटित हुई है।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' की सम्पूर्ण प्रकृति रागमय है, वह शकुंतला की क्षण-क्षण बदलने वाली मनःस्थिति के सादृश्य है। शकुन्तला का वियोग विश्व क्लासिक में अप्रतिम है। कालिदास ने त्रासद्भाव की रसभीनी समृद्ध दशाओं का, जिनमें मनुष्य का संस्कार शुद्ध और परिष्कृत होता है, जिनमें मानव सामान्य की विश्व-दृष्टि निर्मित होता है का आधार प्रस्तुत किया है। कालिदास का त्रासद् भावना Secular है।

1 डा० नगेन्द्र—रस सिद्धांत, पृ० १२१, प्र० सं० १९६४।
2 डा० नगेन्द्र—रस सिद्धान्त, पृ० १२३, प्र० सं० १९६४।

वह मानवीय अध्यात्म की ऊँचाईयों को स्पर्श करती है। वेदना के लौकिक कारण को दर्शाकर उसकी जीवन्त निष्पत्ति जिस अलौकिक या आध्यात्मिक परिवेश मे हुई है, वह मानवीय संस्कृति के उत्तमोत्तम गुणो और विभूतियो से युक्त है। कालिदास ने त्रासद् के एकान्त भाव को नहीं बल्कि उसके संस्कृत भाव का उद्घाटित किया है। चाहे यक्ष का विरह हो चाहे शकुन्तला का वियोग। दोनों की प्रकृति म मनुष्य की नैसर्गिक भावनाओं का उतार-चढ़ाव दिखाई देता है।

भारतीय काव्यचिन्तन मे शृङ्गार, करुण और शांत की त्रिकोणात्मक प्रक्रिया का महत्व

सम्पूर्ण प्रकृति काम मूला है और सृष्टि के सम्पूर्ण उपादान इसी काम भाव की अभिव्यक्ति मे अपनी सोद्देश्यता प्रगट करत हैं। यह काम ही है जो प्रकृति की विविधरूपा विषमताओ को एकनिष्ठ बनाये हुए हैं। काम सृष्टि का हेतु है, वह मूल स्रोत है जहाँ से प्रकृति क्षण-प्रतिक्षण उद्वेलित, उन्मेषित और प्रफुल्लित होती है। इस काम ऊर्जा के रिक्त होने पर उसका ह्रास होता है। उन्मेषण, विकसन और पतन की इस जैविक क्रिया को हम प्रकृति मे देख सकते हैं।

उद्वेलन एव उन्मेषण की प्रकृति उच्छृङ्खल होती है, उमगपूर्ण, उल्लासपूर्ण होती है। जीवन का समूचा शृगार इसी उमगपूर्ण, उल्लासपूर्ण स्थितियो मे सन्निहित है। ये काम ऊर्जा की क्षण-क्षण निर्बाध बढ़ती हुई शक्ति का महाच्चार है किन्तु विकास के जैविक क्रम से, विक्षोभ से नूतन स्रोतो की, नूतन छवियो की पहल होती है। यह शृङ्गार की ही एक विपरीत अथवा बदली हुई अवस्था है जो उसी तरह उच्छृङ्खल और आनन्दपूर्ण होती है। विक्षेप प्रकृति सघटना मे भी होता है तथा अनुकूल प्रभाव प्रतिकूल परिणामो को उपस्थित करने लगता है। भारतीय रस चिन्ता मे इस विक्षेप को प्रवृत्तिमूलक ही माना गया है बल्कि प्रवृत्ति के अमूत, अज्ञात पहलुओ को अधिकाधिक रूप मे प्रकट किया जाता है। अत सयोग और वियोग काम ऊर्जा के निरन्तर उन्मेषित होन की अवस्थाओ को प्रकट करत हैं। ये शृङ्गार है कि जिससे प्रकृति मे सजीव आकर्षण, सौन्दय का भाव निहित है, ये शृङ्गार भाव है कि जिसमे तादात्म्य और तदाकार होने की इच्छा प्रबल होती है। ये शृङ्गार है कि जिससे जीने के प्रति एक आस्था एव विश्वास जन्म लेता है, जिससे जीवमात्र अपने स्वय के प्रति सवेदनशील बना रहता है चाहे सयोग हो या वियोग म सवेदनशीलता उसे सदैव सक्रिय बनाये रहती है।

भारतीय रसचिन्ता म शृङ्गार के एस ही सदर्भों म मनुष्य के जीवन की सार्थकता का उपाख्यान प्रस्तुत किया गया है। शृङ्गार की प्रकृति मन की उच्छृङ्खलताओ का उद्भासित करती है किन्तु जब ये वृत्ति परिपक्व अवस्था को पहुँचता है

अथवा जब इस वृत्ति में जीवन विवेक[1] का आधार स्पष्ट होने लगता है तब एक प्रकार का अनुशासन आने लगता है, मानवीय अनुशासन (जिसे दूसरे शब्दो म मर्यादा कह सकते हैं) उपस्थित होने लगता है। इसे हम जीवन विवेक का पर्याय मान सकते हैं और यही से जीवन लीलामय नही बल्कि चितनमय हो जाता है। राग के साथ-साथ विलाप का, निर्वेद का आविर्भाव होता है। चूकि जीवन काम-ऊर्जा की क्रीडा है। अत यही काम अध्यात्म का अध्याय प्रारम्भ होता है, जिसे दूसरे शब्दो म 'मानवीय अध्यात्म' कह सकते हैं।

अत शृङ्गार एव शात परस्पर विरोधी नही बल्कि जीवन के अपरिपक्व और परिपक्व भाव-बोध की परिपूर्णता के द्योतक हैं। जीवन एक उच्छृङ्खल क्रीडा है, एक उल्लास है। इस अवस्था तक काम ऊर्जा निरतर समृद्ध होती है किन्तु समृद्धता के चरमबिन्दु पर पहुँचकर उसके धीरे-धीरे रिक्त होने और चूक जाने का क्रम प्रारम्भ होता है। यही से जीवन एक चिन्ता बन जाता है और उसका विवेक उपस्थित हो जाता है, विवेक एक अनुशासन है।

अत जीवन की शृगारिक चेष्टाओ के बाद जीवन के विवेक का अनुशासन उसकी स्थिति और उसके अस्तित्व की चेतना का द्योतक है। यही है प्रवृत्ति भूमि पर उपस्थित शातरस और यही है काम अध्यात्म का मनोविज्ञान। यही पर जीवन की निष्पत्ति होती है जिसे भारतीय रसचितको ने समग्र रूप से उद्घाटित किया है। अत शृगार स्रोत है जीवन का और शात निष्पत्ति है जीवन की।

उदात्त की आनन्दमूलक सौन्दर्य-दृष्टि का इतिहास-दर्शन

ऋग्वेदीय, औपनिषदिक और शैवागमिक अद्वैत की मीमासा यदि सस्कृत भाषा की ध्वन्यात्मक प्रकृति के सदर्भ म की जाय तो स्पष्ट होगा कि भारतीयो का रसचिता के मूल्यपरक आधार कितने प्रकृत थे। भारतीय रसचिता म मानव के नैसर्गिक मूल्यो का क्षय दृष्टिगत नही होता बल्कि जीवन के आवर्तिक लक्ष्य को केन्द्र म रखकर रसचिता का कलेवर निर्मित हुआ है। अत भारतीयो की रसदृष्टि खडित नही है उसम जीवन की पूर्णता को लक्षित किया गया है। इस प्रकार रस मानवीय सस्कृति के उच्चतर मानसिक मूल्यो का पर्याय है।

भारतीय जीवन दर्शन अद्वैतमूला है और यह अद्वैत केवल तत्वदर्शन का विषय नही इसम भारतीयो की भौतिक, वैज्ञानिक तथा उसकी अनेक शाखा प्रशाखाओ की तार्किकता निहित है। भारतीयो का अपना सृष्टि विज्ञान है, जिसम ब्रह्माण्ड रचना की विशेष समझ दिखाई देती है। प्रकृति, जीव अथवा जड चेतन के सम्बन्धो

---

१ जीवन विवेक का तात्पर्य उस मनोभाव से है जो विभिन्न मूल्यो को आनुपातिक महत्व के तारतम्य म व्यवस्थित करके देखता है।

—डा० देवराज भारतीय सस्कृति, पृ० १४९, द्वि० स० १९६१।

पर भारतीयो ने पदार्थ और ऊर्जा के दृष्टिकोण से विचार किया है तथा दोनों की समय-समय पर बदलती हुई अवस्थाओं के कारण अभिनव रूपाकृतियों का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया है। इसी सदर्भ मे सम्पूर्ण मानवीय सस्कृति का मूल्याकन हुआ है।

अत भारतीयो की इतिहास धारणा भौतिक विज्ञान की दृष्टि से अद्वैतमूला है। जीवन की समूची क्रियाओ की परिणति इसी अद्वैत बोध म होती है। जीवन चेतन क्रिया है जो पदार्थ के विक्षेप से अभिनव रूपो और शैलियो म प्रोद्भासित होती है और अ तत पदार्थ और चेतन के व्यापक समाहार मे लीन हो जाती है। भारतीयो न जीवन के मूल्यो की रचना म इसी तथ्य को उद्घाटित किया है। अत जीवन विकास के स्तर पर उदात्त होने की चेष्टा है, यह औदात्य निर्विकार और निर्दोष है। निर्विकार होना, निर्दोष होना किसी नैतिक आधार से सचालित नही बल्कि रस की दृष्टि से नैतिकता का अर्थ प्रकृति व्यापार के निर्विकार तथा निर्दोष होने का द्योतक है। यही निर्दोषता प्रकृति की शुद्धावस्था है, मनुष्य की उदात्तावस्था है, इसी शुद्ध उदात्त अवस्था म सौन्दर्यमूलक आन द की प्रतीति होती है।

सस्कृत के सम्पूण रचना साहित्य म इसी शुद्ध अथवा उदात्त सौन्दर्यमूलक आनन्द की व्याप्ति दिखाई देती है। मुख्य रूप से कालिदास की रचना-दृष्टि का आधार यही है। सस्कृत साहित्य मे भारतीय इतिहास दर्शन की यही उदात्त और सौ दयपरक दृष्टि पल्लवित हुई है।

पश्चिम की त्रासद् धारणा—स्वरूप विश्लेषण

ग्रीक कला चि तन मे त्रासदी एक Form या विधा है, जिसका विश्लेपण अरस्तू ने किया है। दु खान्तकी के गम्भीर एव उदात्त पहलुओ का विवेचन उद्देश्य के रूप मे भी अरस्तू ने किया है।[1] इस विवेचन के नैतिक, दाशनिक एव कलात्मक आधार पुष्ट रहे हैं। अरस्तू ने अपने त्रासद् विचार मे दाशनिक अ तर्दृष्टि की अनिवार्यता पर बल दिया है। यह दाशनिक अन्तर्दृष्टि समूचे युग के जीवन दशन की आत्मिक एवम् आध्यात्मिक उपलब्धि के रूप म दिखाई देती है।

त्रासदी समग्र जीवन की चेतना को व्यक्त करने वाली परिपूर्ण धारणा रही है, जिसमे ग्रीक सभ्यता और सस्कृति की मूल चेष्टाओ, इच्छाओ एव उद्देश्यो की अभिव्यक्ति हुई है। हम कह सकते है कि ग्रीक सस्कृति की समूची गभीरता त्रासदी म फलीभूत हुई है। जहाँ तक इसके नैतिक एव दार्शनिक पहलुओ का प्रश्न है अरस्तू और उसके परवर्ती समीक्षको न बराबर टिप्पणियाँ की हैं और य कहा है कि जीवन म

1 Tregedy F L Lucas, 1961
The Hograth Press, London

त्रासदी के जो प्रारूप बनते हैं, जो Pattern's बनते हैं उनमें नैतिक आधार स्पष्ट होता है।[1] इसीलिए त्रासद कला का जीवन विशद् और गहन रहा है।

इस त्रासद कला के सम्बन्ध में सोफोक्लिस और ईस्किलस ने अनेक प्रयोग किये और उसका नाट्यकला से सम्बन्ध निर्धारित किया।[2] यूरिपाइडीज ने तो त्रासदी को सामूहिक नृत्य, सामूहिक गान तथा अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक चेतना में उतारकर नाटकों का मानवीयकरण किया था, फलतः ऐसे नाटकों की रचना हुई जिनमें मनुष्य के दुःख और उसके प्रति संवेदना का स्पन्दन था।[3] समूची कथावस्तुओं की मूल प्रेरणा त्रासदी से अनुप्रेरित रही है। ग्रीक नाटकों में महाकाव्यों में अन्य अनेक नाम भी जुड़े हैं जिन्होंने त्रासदी के दर्शन को विश्लेषित किया है।

सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थानकाल में जो विस्तार होता है उसमें जो विविधता होती है उसकी आत्मिक समग्रता का क्या किसी कलाकार ने त्रासद्भाव के अतिरिक्त किसी अन्य भाव में व्यक्त किया है। दुनिया की श्रेष्ठतम रचनाएँ चाहे वे किसी भी रस की हों उनकी पूर्णतम अभिव्यक्ति शांत एवं करुण रस में हुई है। इस दृष्टि से त्रासदी की कला शाश्वत व चिरंतन जीवन को व्यक्त करने वाली है। करुण रस इतना व्यापक है कि शेष सभी रस उसमें समाहित हो जाते हैं, अन्य अनेक अनुभूतियाँ उसमें विलीन हो जाती हैं। इस तरह पश्चिम में दुःखान्त की इतनी शैलियाँ, इतनी विधाएँ दिखाई देती हैं कि उनका विश्लेषण गंभीर एवं विशद् रूप में होना चाहिए। वहाँ दुःखांतकी के दैवीय आधार, नैतिक, धार्मिक, पौराणिक आधारों के अतिरिक्त सामाजिक आधार भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहे हैं।

ग्रीक त्रासदी के मूल में ईश्वर-मनुष्य, प्रकृति और मनुष्य के अंतर्द्वन्द्वों का समाहार दिखाई देता है। ग्रीक त्रासदी जब कभी उद्देश्य के स्तर पर मृत्यु केंद्रित हो जाती है तो उसका दार्शनिक मन्तव्य स्पष्ट होने लगता है। कुछ विद्वानों का मत है कि बगैर मृत्यु के त्रासदी की रचना असंभव है, कारुणिक दृश्यों का उद्घाटन असंभव है,[4] किन्तु मृत्यु की सत्ता को दिखाकर ही दुःखांतकी की अभिव्यक्ति हो, यह आवश्यक

---

१ शेल्डान चेनी रंगमंच पृष्ठ ५७।
अनुवाद—श्री कृष्णदास, प्रथम संस्करण १९६५
प्रकाशक—हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।

२ वही पृष्ठ ४४ से ६५ तक।

३ वही पृष्ठ ६८।

४ सिद्धान्त रूप से, मृत्यु दुःखांतकी का मूलाधार है। बिना मृत्यु के दुःखांतकी का निर्माण असंभव है। यह मृत्यु ही दोष अथवा अवगुण पर विजय पाने का सर्वोत्तम साधन है। 'नाटक की परख'—पृ० ३२६, डा० एम० पी० खत्री, प्रथम संस्करण १९४८, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

नही है। जीवन के समूचे व्यापार मे ही दुख की सत्ता इतनी विषम है कि उसके चिन्तन से ही त्रासदी के जीवन प्रसगो की सृष्टि हो जाती है। ये सही है कि मृत्यु दुख का मूल आधार है किन्तु जीवन मे ही दुख की बहुमुखी अभिव्यजना होती है और रचनाकार मृत्यु की नही, बल्कि जीवन की त्रासदी को व्यक्त करता है। जहाँ दार्शनिक मृत्यु और अस्तित्व की समस्या पर त्रासदी के दर्शन को उपस्थित करता है वहीँ कलाकार विविधता मे बिधे जीवन की अमूर्त, अज्ञात स्थितियो को, मूर्त और ज्ञात अवस्थाओ को आकस्मिक एव अनिवार्य कारणो के तहत त्रासदकला को जन्म देता है। अत कला की त्रासद अवधारणा म मृत्यु अनिवार्य नही है। ग्रीक दुखातकी के साथ मध्ययुगीन नैतिक, धार्मिक, दुखातकी के दृष्टिकोण से भी यही स्पष्ट होता है।

न केवल ग्रीक कला चिन्तन ने त्रासदी को महत्त्व दिया गया बल्कि परवर्ती युगों म भी त्रासदी को पश्चिम के समूचे ललित कला चिन्तन की कसौटी मान लिया गया है। प्लेटोनस के दार्शनिक विचारो से लेकर सेनेका, एस्चाइलस, ईस्किलस एव नीत्शे, शापेनहावर तक निर्वेद और दुख की व्याप्ति दिखाई देती है। अब तो विद्वानो ने भी स्वीकार कर लिया है कि ईसाई धर्मदर्शन पर बौद्धधर्म के दुखवाद, करुणावाद और कल्याणवाद का प्रभाव रहा है।[१] दाते ने 'डिवायन कामेडी' मे भी स्वर्ग-नर्क के मार्ग से दुखातमूलक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति की है।

यूरोप के समूचे साहित्य का मेरुदण्ड ही त्रासदी है। समस्त विधाओं मे यहाँ तक कि सगीत एव चित्रकला मे भी उसकी व्याप्ति दिखाई देती है। शेक्सपियर की महत्ता उसकी दुखातकियो के कारण ही है। जहाँ ग्रीक चिन्तन की दुखातकी की प्रकृति शास्त्रीय रही है वहीं शेक्सपियर की दुखातकी की प्रकृति स्वच्छदतावादी रही है। इतिहास में जब कभी समाज की अपेक्षा व्यक्ति महत्वपूर्ण हो जाता है, और रचनाकार जब कभी उस व्यक्ति को नायक-नायिका म रूपान्तरित करके उसकी नियति का लेखा-जोखा लेने लगता है तो समूचा सघर्ष व अन्तर्द्वन्द्व स्वच्छदतावादी प्रकृति का हो जाता है और स्थान, स्थिति के सन्दर्भों म नियति की व्याख्या अधिकतर निराशामूलक दर्शन को जन्म देती है। शेक्सपियर की रचनाओ में व्यक्ति और उसकी नियति के निर्माता सन्दर्भों का नाटकीय चित्रण हुआ है। अरस्तू ने तो त्रासदी के सिद्धान्त दिये, एस्चाइलस[२], सोफोक्लिस ने तो त्रासदी की भव्यता को उद्घाटित किया

---

१ The Tragic Philosopher By F A Lea, P 20, 1957

२ Aeschylean tragedy, says Wagner, was the fine Flower of Greek religion, and that the religion of free man
—F A Lea - The Tragic Philosopher, P 26,
First Published in 1957

किन्तु मध्य युग के बाद शेक्सपियर ने उस त्रासदी को राष्ट्रीय जीवन की चेतना में उतार दिया। न केवल शेक्सपियर ने बल्कि उसके समकालीन मिल्टन ने भी स्वर्ग और नर्क, देवता और शैतान के चित्रण में त्रासदी को केन्द्र में रखा। शेक्सपियर ने लौकिक जीवन में त्रासदी की व्याप्ति दिखाई। मिल्टन ने उसकी अलौकिक भूमिका को भी स्पष्ट किया।

इतिहास में जब कभी भी नायक अपने युग की समूची गतिविधि का केन्द्र हो जाता है तो नायक की नियति को ही युग और इतिहास की नियति मान लिया जाता है। इस दृष्टि से शेक्सपियर की त्रासदी मे एक युग की चेतना नायक की गतिविधियों मे उतर जाती है और समूचा युग नायक की नियति को अपनी नियति के सन्निकट मान लेता है। इस तरह शेक्सपियर ने त्रासदी के यथार्थ, आदर्श, मनोविज्ञान व सामाजिक पहलुओं को स्पष्ट किया। शेक्सपियर के हाथों पश्चिम की त्रासदी का स्वच्छदतावादीकरण हुआ और त्रासदी के एक युग का सूत्रपात हुआ, जिसका प्रभाव ब्रिटेन से बाहर निकलकर जर्मन, फ्रास, स्पेन, इटली आदि सभी देशो के साहित्यकारों, रचनाकारो पर पडा। कौन सा ऐसा रचनाकार था कि जिसने शेक्सपियर को आत्मसात् नही किया? कौन-सा ऐसा रचनाकार था कि जो किंगलियर, मेकबेथ, ओथेलो और सीजर की द्वद्वात्मक नियति से आत्मविभोर न हुआ हो? क्या शेक्सपियर ने शापेनहावर, नीत्शे जैसे दार्शनिकों मे सृजनात्मक वैभव को विकसित नही किया? क्या शेक्सपियर ने अपने समय की दार्शनिक रुचियो को प्रभावित नही किया? पश्चिम की राष्ट्रीय व लोकजीवी चेतना में शेक्सपियर इतना गहरा उतर गया था कि यूरोप के प्रत्येक उच्छ्वास मे उसकी कल्पना को देखा जा सकता है।

पश्चिमी स्वच्छदतावादी युग भी त्रासदी केन्द्रित है जिसमे प्रकृति एव मनुष्य के सम्बन्धों के द्वारा नियति के शाश्वत् रूप को अभिव्यक्त किया गया है। यदि स्वच्छदतावादी कविता की चेतना को ही उद्घाटित किया जाये तो लगेगा कि समूचा अनुभूतिपरक काव्य त्रासदी केन्द्रित होता है, समूचा रहस्य दर्शन त्रासदिक होता है। इसीलिए शली ने Oh World, Oh Life, Oh Time (ससार, जीवन और समय) के त्रिकोण में मनुष्य व उसके अस्तित्व की समस्या पर विचार किया।[1] विलियम ब्लेक से लेकर वर्ड्सवर्थ, कालरिज, शली, कीट्स आदि कवियों का श्रेष्ठतम अनुभूतिपरक काव्य दु खातमूलक, करुणामूलक है। इस तरह पश्चिमी सौन्दर्यदर्शन मे अथवा काव्यदर्शन मे त्रासदी की व्याप्ति रही है।

शेक्सपियर के बाद के सभी दार्शनिकों पर त्रासदी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। विकलमन व लेसिंग ने सगीत और चित्रकला द्वारा दु:खातमूलक अनुभूति के

1 Carlos Baker The Selected Poetry & Prose of Shelley P 290, 1951 The Modern Library, Random house INC

अभिव्यंजना पक्ष को स्पष्ट किया तथा शिलिंग, शिलर और फिक्टे ने शेक्सपियर के प्रभाव को आत्मसात कर त्रासदी को मनुष्य की सृष्टि से लेकर उसकी परिणति तक व्याप्त माना। जीवन के उत्कृष्टतम क्षणों में मनुष्य गम्भीर होकर अपनी समूची नियति का साक्षात्कार करता है। साक्षात्कार के ये क्षण पूर्ण होते हैं और ये पूर्णता निर्वेदमूलक होती है। कान्ट, हीगेल, शापेनहावर, नीत्शे और आधुनिक अस्तित्ववादियों ने युगानुरूप बदलते सन्दर्भों में त्रासदी के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलुओं की व्याख्या की है।

कान्ट ने उदात्त और सुन्दर के सन्दर्भ में त्रासदी का मूल्यांकन किया और उसकी निर्वैयक्तिकता को उपस्थित किया[1], तो हीगल ने दार्शनिक अन्तर्दृष्टि के निर्माण में त्रासदी की भूमिका को स्पष्ट किया। कान्ट की तुलना में हीगल का चिंतन अधिक व्यक्तिवादी व स्वच्छन्दतावादी है। जहाँ कान्ट के दर्शन में समूचे ब्रह्माण्ड की द्वैत-अद्वैत अवस्थाओं को मानवीय सन्दर्भ में स्पष्ट किया गया है।[2] वहीं हीगल ने अद्वैतमूलक अखण्ड-चेतना (विश्व चेतना) के द्वारा 'अहम् ब्रह्मास्मि' जैसे मन्तव्य को स्पष्ट किया है।[3] इसीलिए त्रासदी के विशद् रूप को हीगल ने प्रतिपादित किया। कान्ट की अपेक्षा हीगल ने काव्य और कलाओं का भी विशद् विश्लेषण किया। 'क्रिटिक ऑफ जजमेंट' में कान्ट ने जहाँ उदात्त और सौन्दर्य की मूल समस्या को ध्यान में रखा वहीं हीगल ने अपनी चार जिल्दों में लिखी पुस्तक 'फिलासफी ऑफ फाइन आर्ट' में सौन्दर्य पक्ष को विश्वचेतना और व्यक्तिचेतना के सामंजस्य में देखा। कान्ट ने निर्वैयक्तिकता का प्रतिपादन किया, हीगल ने आत्मपरक काव्य का।

इस तरह त्रासदी की विचारधारा हीगल से होती हुई शापेनहावर और नीत्शे में अधिक घनत्वपूर्ण हो जाती है। ये दोनों ही घोर निराशावादी दार्शनिक थे। शेक्सपियर से लेकर हीगल तक त्रासदी की जो धारा विश्वचेतना में व्याप्त दिखाई देती है, जिसमें प्रकृतित्व को अस्वीकार नहीं किया गया था, शापेनहावर, नीत्शे जैसे दार्शनिकों के हाथ में एकान्तमूलक, निराशामूलक और निषेधात्मक हो जाती है।[4]

वास्तविकता यह है कि इन दोनों ही दार्शनिकों ने उद्योग व विचार की

१ Bernard Bosanquet : A History of Aesthetic, P 261, 1959, George Allen and Unwin LTD Ruskin House Museum Street, London

२ डॉ० सुरेन्द्रनाथदास गुप्त सौन्दर्य तत्व-भूमिका (डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित) पृ० २४, प्र० स० २०१७ वि० भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद।

३ A C Bradley Oxford Lectures on Poetry, P 71, 1959

४ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, नये साहित्य का तर्कशास्त्र, पृ० ११६, प्र० स० १९७५।

जीवन दृष्टि की यान्त्रिकता को देखा और घबराकर उसका नकारात्मक विश्लेषण कर दिया। जब कभी इतिहास नये मोड पर आता है तो दार्शनिक या तो छटपटाहट मे उसे पूर्णतया नकार देते हैं या भावुक होकर उसे स्वीकार करते हैं। इन दोनो ही दार्शनिको ने उद्योग व विज्ञान के विकास के ऐतिहासिक मोड़ को सतुलित दृष्टि से विश्लेषित नही किया। फलस्वरूप एक निषेधात्मक जीवन दृष्टि के रूप मे त्रासदी ऐकान्तिक हो गयी, ऐसा करने से पश्चिमी कलाचिन्तन भी अन्तर्मुखी हो गया। कुछ इतिहासकारों का तो यहाँ तक कहना है कि नीत्शे की अत्यन्त ऐकान्तमूलक निराशा-मूलक दृष्टि की प्रतिक्रिया के स्वरूप ही अधिनायकवादी राजनीति का विकास हुआ और हिटलर जैसे क्रूर, अहकारी, निरकुश और अराजकतावादी व्यक्ति का जन्म हुआ। गेटे के 'फाउस्ट' और नीत्शे के 'जरस्थुष्ट' ने जर्मन राजनीति को प्रभावित किया है। वह त्रासदी जो मध्य युग मे ललित कलाओ मे ही सीमित थी, उद्योग और विज्ञान के युग मे राजनतिक, सामाजिक और आर्थिक शलियो मे अपना स्थान बना बैठी।

पश्चिम की इस व्यक्तिवादी निराशामूलक जीवन-दृष्टि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, मनोविश्लेषण-शास्त्रियों ने किया है। फ्रायड ने 'कामदमन' को केन्द्र में रखकर व्यक्तित्व के तीन स्तर निर्धारित किये। Id, Ego और Super Ego। इन तीन स्तरों में उसने मनुष्य की समूची प्रवृत्तियो का विश्लेषण किया। उसने माना कि समूची ऊर्जा का स्रोत है अवचेतन, जिसकी अभिव्यक्ति स्वत स्फूर्त होती है। पश्चिमी त्रासदी को फ्रायड के इस मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन से बल मिला। फ्रायड ने सामाजिक तत्व की अपेक्षा व्यक्ति को केन्द्र में रखा और त्रासदी मे भी यही व्यक्ति स्थित रहा है। फ्रायड की विचारधारा ने अनेक प्रकार की शलियो और आन्दोलनों को जन्म दिया। चित्रकला में विशेष रूप म क्यूबिज और अतियथार्थवाद व अमूर्तकला पर फ्रायडियन विचारधारा का प्रभाव रहा है। उपन्यासो पर एडलर की क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर चरित्रो की सृष्टि हुई और जैसा कि सब जानते हैं कि युग ने फ्रायड की मनोचिकित्सात्मक शली का दार्शनीकरण किया। इस तरह फ्रायड, एडलर, युग की मान्यताओं म पश्चिम की त्रासदी को एक नया आयाम मिला। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पश्चिमी सभ्यता और सस्कृति में गिरावट आयी, सकट पैदा हो गया, फलस्वरूप अस्तित्व की चिन्ता और त्रासदी के अनेक रूपो का चित्रण हमें यहाँ की ललितकला मे मिलता है।

त्रासदी और अस्तित्ववाद

निराशावादी दशन की जो परम्परा नीत्शे से मिलती है।[1] वह फ्रायडियन मनोविश्लेषण के मार्ग से होती हुई अस्तित्ववादियों तक पहुँचती है। अस्तित्ववाद त्रासदी केन्द्रित जीवन दर्शन है जिसने कीर्केगार्द और कीकमिग के तत्वों और एब्सर्ड व

1 Friedrich Wilhelm Nietzeche The Birth of tragedy, P 498

एक्जिस्टेंशियलिज्म के सम्बन्धो पर विचार होता है। अस्तित्ववादी विचारधारा मे अविवेकात्मक निराशा (इर्रेशनल डेस्पेयर) के अनुभव का सौन्दर्यबोधशास्त्र प्रस्तुत हुआ। अस्तित्ववाद एक 'जीवित स्व' (लिविंग सेल्फ) के स्वय प्रकाश्य ज्ञान पर तो केन्द्रित है किन्तु यह चर्चा करता है एक 'मर्त्यमाणस्व' की प्रज्ञा की।[1] एक ओर तो अस्तित्ववादी विचारक ईसाई धर्मदर्शन के विश्वकल्याणवाद को नकारता है, दूसरी ओर वह व्यक्तित्व की अन्तर्मुखी आत्ममुखी चेतना को प्राथमिकता देता है।

वस्तुत द्वितीय विश्वयुद्ध मे योरोप के जीवन का सारतत्व ही नष्ट हो चुका था, इसलिए अस्तित्ववादी विचारकों ने 'व्यक्ति' के भीतर उस सारतत्व को स्पष्ट करने की कोशिश की। यद्यपि किर्केगार्द, कामू पर ईसाई दर्शन का प्रभाव रहा।[2] किन्तु यह प्रभाव उनकी अस्तित्ववादी मूलदृष्टि मे विशेष महत्व नही रखता। निराशा के अभाव के क्षणो मे वे जिस मोक्षावस्था को वरदान के रूप मे प्राप्त करना चाहते हैं, वही पर ईसाई धर्मदर्शन के कल्याणवाद की छाया प्रगट होती है। काफ्का से लेकर सार्त्र तक के विचारको ने इस बचे-खुचे ईसाई धर्मदर्शन के प्रभाव को नकार दिया और विशुद्ध रूप से व्यक्तिमुखी आत्मचिन्तन की समस्या को अपना लिया। अस्तित्ववादी चिंता मे हीगल की तरह विश्व आत्मा की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति तो नहीं है उसमें व्यक्ति आत्मा की स्थिति का और उसकी गति का निरूपण अवश्य हुआ है। 'हीगेल' ने यथार्थ और विवेकशील का समीकरण बनाया, तो किर्केगार्द ने यथार्थ-अविवेकशील का तर्कशील का तिरस्कार करने पर वैयक्तिक स्वय प्रकाश्य ज्ञान ही संस्कृति तथा समाज के ऊपर प्रतिष्ठित हो गया।[3]

वास्तव में देखा जाय तो अस्तित्ववाद द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की घुटन का दर्शन था, जिसका प्रभाव वहाँ की साहित्यकला पर पड़ा किन्तु यूरोप इससे काफी आगे बढ़ चुका था। इस तरह पश्चिम मे त्रासदी की एक विशद् परम्परा दिखाई देती है। हर युग की त्रासदी मे नई नई शैलियो का जन्म हुआ और उसमे प्रत्येक युग की समग्रता को चित्रित किया गया। त्रासदी मूलत एक नियतिवादी तत्व दर्शन का विषय है किन्तु साहित्य व कला मे रचनात्मक परिवेश के माध्यम से उसकी सौन्दर्याभिव्यक्ति होती रही है। कलाकार स्वभावत नियति चिन्तक और नियतिदर्शी हुआ

---

१ रमेशकुन्तल मेघ अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा, पृ० ४३६, प्र० स० १९७७।

२ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से बडा नही है, पर सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् निश्चय रूप से हर मानव अस्तित्व की चीजें हैं और ये तीनों किसी 'एक' अस्तित्वमान व्यक्ति मे ही एकाकार समन्वित हो सकती है। —किर्केगार्द
—डॉ० शिवप्रसाद सिंह आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृ० ७ पर उद्धृत।

३ रमेशकुन्तल मेघ अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा, पृ० ४३४ से ४३५।

करता है। यह समूची जाति की गतिविधि के प्रति संवेदन होता है। जाति के उत्थान और ह्रास की समस्याओं से सीधा संघर्ष कलाकार का होता है। इसीलिए नियति सापेक्ष त्रासदी कलाकार की अनुभूति व अभिव्यक्ति का विषय है।

भारतीय चिन्तन मे भी करुण रस की प्राथमिकता रही है। बौद्ध धर्मदर्शन मे भी त्रासदी की व्याप्ति दिखाई देती है। इस तरह आत्मस्थचिन्तन प्रक्रिया अनिवार्य रूप से त्रासदिक होती है।[1] इसीलिए हम समूचे स्वच्छन्दतावादी, छायावादी काव्य को दुखात्मूलक पाते हैं। इन सभी रचनाकारो ने दुख को सार्वजनिक प्रवृत्ति में रूपान्तरित किया है, सार्वजनिक उद्देश्य तक पहुँचाया है और इस तरह नियति की केन्द्रीय स्थिति मे त्रासदी के उत्तरोत्तर विकास क्रम को उपस्थित किया है।

---

१ दुख की तीव्र उपलब्धि आनन्दकर है, क्योंकि वह निविड अस्मितासूचक है, केवल अनिष्ट की आशका आकर बाधा देती है। उस आशका के न रहने पर दुख को मैं सुन्दर कहूँगा। दुख हमें स्पष्ट बना देता है, अपने पास अपने को अस्पष्ट नहीं होने देता। गम्भीर दुख भूमा है, ट्रेजेडी में वह भूमा है, वह 'भूमव सुखम्' है। —रवीन्द्रनाथ टगोर साहित्येरपथ-भूमिका

स्वच्छन्दतावादी वेदना

पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी त्रासद् काव्य की परम्परा काफी सम्पन्न रही है। शेक्सपियर ने अपने स्वच्छन्दतावादी नाटकों में त्रासदी के व्यक्तिपरक, आत्मपरक पहलुओं का गम्भीर और व्यापक चित्रण किया है। स्वच्छदतावादी त्रासदी मूलत चरित्र प्रधान है और चारित्रिक स्वभाव के भीतर से ही उसकी अभिव्यक्ति होती है। शेक्सपियर ने मनोगत भावनाओं का जितना विशद् विषम विश्लेषण किया है उससे पश्चिमी साहित्य में त्रासदी की उस नूतन मान्यता का विकास हुआ जो अरस्तू की शास्त्रीय त्रासद् धारणा से अलग थी। स्वच्छन्दतावादी त्रासदी गीतात्मक (Lyrical) है, जबकि शास्त्रीय प्रकृति की त्रासदी महाकाव्योचित रही है। इस स्वच्छदतावादी त्रासदी में भव्यता और औदात्य के बदले स्वत स्फूर्त सहज प्रवाह की अधिकता है। इसीलिए उसकी अभिव्यक्ति Grand style में नहीं हो सकती, यहाँ क्षिप्रता का भाव प्रबल है।

शेक्सपियर ने अपने चार महान् त्रासद् नाटकों (किंगलियर, मैक्बेथ, हैमलेट और ओथेलो) में स्वच्छदतावादी दु खान्तकी के सिद्धान्तों या प्रतिमानों की रचना की, जिनसे बाद में स्वच्छदतावादी रचनाओं की निर्धारणा हो सकी। 'मैक्बेथ' में आत्मघातक प्रवृत्ति और अपार्थिव तत्वयोजना तथा प्राणी चिकित्सात्मक विभ्रम (Biopathological Hallucination) का चित्रण तथा 'ओथलो' मे अनिश्चयात्मक व अविश्वास की भूमिका मे त्रासद भावो की सघनता का तथा आकस्मिक रूप से त्रासद कारणो का सग्रहीकरण दिखाई देता है। 'हैमलेट' तो त्रासद् दृष्टिकोण की माइयालाजी ही बन गया है।[1]

इस तरह शेक्सपियर में मन स्तापी अनिश्चयात्मकता और अपार्थिवता से उत्पन्न विभ्रम की अतिसूक्ष्मधारा दिखाई देती है। शेक्सपियर की यही अन्तर्मुखी प्रवृत्ति बाद की त्रासद-प्रधान अंग्रेजी रोमांटिक कविता का आधार बनी। शेक्सपियर के बाद अंग्रेजी के पूर्ववर्ती स्वच्छन्दतावादी कवियों में त्रासदी का विकास दिखाई देता है। जिस पर मिल्टन और प्लेटो जैसे दार्शनिक विचारों का स्पष्ट प्रभाव रहा। इसीलिये स्वच्छन्दतावादी कवियो में एक ओर अपार्थिव तत्वो की ओर रुझान रहा, रहस्यात्मकता आयी, वहीं दूसरी ओर इसी त्रासदी के कारण कविता मोम्मोन्मुखी

1 G Wilson KNIGHT The WHEEL of Fire, P 28, 1954, Methuen & Co LTD, London

(Life divine) वस्तु बनती गयी। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावादी कविता एकाकी और अन्तर्मुखी जीवन की व्याख्या बनती गयी।

तीसरी ओर यही त्रासदी अभिधा से अलग लक्षणा, व्यंजना की अनेकार्थमूलक सूक्ष्मताओं में अमूर्तता को आमन्त्रित करती गयी, फलस्वरूप प्रतीक शैली का विकास हुआ। चौथी ओर इसी त्रासदी के कारण गम्भीर, क्षणभंगुर और नैराश्यमूलक जीवन-दर्शन की नियोजना हुई जिसकी परिणति 'प्लेटोनिक यूटोपिया' में हुई।

पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी कवियों में कालरिज, शैली, कीट्स तथा बायरन का काव्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। त्रासद् भाव का जितना सौन्दर्यबोध शैली और कीट्स में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं। एडगर ऐलन 'पो' ने एक स्थल पर लिखा है—"मेरी कविता का क्षेत्र सौन्दर्य है। सौन्दर्य की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति का स्वर क्या है ? अनुभव ने यह बताया है कि ऐसा स्वर विषाद का होता है। प्रत्येक प्रकार का सौन्दर्य अपनी उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति में अनिवार्य रूप से संवेदनात्मक आत्मा को करुणा से विगलित कर देता है। इसलिए सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए करुणा का स्वर सम्पूर्ण काव्य स्वरों में सर्वाधिक उपयुक्त है।

शैली ने इसीलिए सबसे मधुरतम गीत उन्हीं को माना जो निविडतम दुःख की अनुभूति करवाते हैं,[1] यही अनुभूति करुणात्मक होकर निष्काम सौन्दर्य का सृजन करती है। शैली को 'The singer of endless sorrow' कहा गया है। वेदना, करुणा और निराशा के बीच ही उसका काव्य सृजन होता है। प्रोमेथियस अनबाउण्ड (The Prometheus Unbound), अलस्टर, एडोनाइस (Adonais) में अनिर्वचनीय टीस, विवशता और आंतरिक करुणक्रंदन है। 'जूलियस और माडलो' तो उसकी असफलताओं का प्रतिबिम्ब ही है।[2]

शैली पर गाडविन के दर्शन का प्रभाव था किन्तु वह प्लेटोनिज्म में भी रुचि रखता था इसीलिए जीवन संघर्षों से गुजरते हुए भी उसके काव्य में अटूट आशावादिता है। उसके आत्मपरक गीतों में इसीलिए मानवीय जीवन के प्रति गहरी आस्था और विश्वास है।[3] आध्यात्मिक चिंतनशीलता, सहज मानवीय संवेदन, कल्पनाशीलता आदि के द्वारा शैली ने स्वच्छन्दतावाद को नयी दिशाएँ दीं। अपने आत्ममोही

1 Our sweetest songs are those, that tells our saddest thought

2 Most wretched men
Are cradled into poetry by wrong
They learn in suffering what teach in song
—Julian and Madelo, P 37

3 Carlos Baker The Selected Poetry and Prose of Shelley, P xii, 1951—The Modern Liberary, Random House, INC

व्यक्तित्व के बावजूद शैली अपने काव्य को उन्नयन की भूमि पर प्रतिष्ठित कर सका, उसने स्वच्छन्दतावादी काव्य की गीतात्मक सम्भावनाओं को उनके शीर्ष पर पहुँचा दिया। उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही गीतात्मक अथवा लयात्मक कहकर सम्बोधित किया जा सकता है।[1]

कीट्स स्वच्छन्दतावादी काव्य का एक जिज्ञासु कवि और सौन्दर्य उपासक था। उसने सौन्दर्य को सत्य की चरम परिणति माना। कीट्स ने विषाद मिश्रित आनन्द की अभिव्यजना की है।[2]

वस्तुत आनन्द और विषाद का ऐक्य पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी त्रासद् भावना का मूलाधार था। यीट्स ने तो जीवन को ही त्रासदी माना और दुख या वेदना को मानव के अन्तरिम सम्बन्धों की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण माना।[3] बायरन ने 'चाइल्ड हैराल्ड्स पिल्ग्रिमेज' शीर्षक कविता मे जीवन की त्रासदी को चित्रित करते हुए लिखा—

> Our life is a false nature, tiesnot in the harmony of things
> —this hard decree, uneradicable taint of sin,
> And worse, the worse we see not which throb through,
> This immedicable soul, with heart aches everhow [4]

क्रिस्टिना रोजेटी पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी त्रासदी काव्य की ऐसी कवियित्री है, जिसका सम्पूर्ण जीवन ही अस्वस्थ त्रासदी और आत्मग्लानि से भरा हुआ था।[5] हृदय की अन्तरिम भावभूमियों से निःसृत क्रिस्टिना के गीतो म प्रणय की मधुर वेदना के साथ नियति क्रूरता की अन्तर्वेदना सहज रूप से अभिव्यक्त हो उठी है।[6]

---

1 डॉ० प्रेमशकर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ५१।

2 Harold Edger Briggs The complete Poetry and Selected prose of Keats, P 294, The Modern Liberary, New Yark, 1951

3 "Tragady must always be a drawning and preding of the dykes that separate man from man, and it upon these dykes comedy keeps house "—Yeats.

4 The Poetrical works of hard Byron, P 244

5 The Fall and decline of Romanticism, F L Lucas, P 11

6 Weep, sick and tonely
Bow they heart to tears
For none shall guess the secret
Of the griefe and tears
Weep, till the day down
Refreshing dew

वेदना की अभिव्यक्ति में क्रिस्टिना का काव्य महादेवी वर्मा के काव्य से सादृश्य रखता है किन्तु क्रिस्टिना के काव्य में जहाँ भावनाओं की उद्दाम छटपटाहट, नियति सापेक्ष विवशता और भावों की स्थूलता मिलती है वहीं महादेवी का काव्य आत्मपरक होते हुए उदात्त पृष्ठभूमि पर है। क्रिस्टिना के काव्य में 'नियति' की क्रूरता, अदृश्य और अविश्वास की भूमिका प्रमुख है।[१] जबकि महादेवी का काव्य आस्था और विश्वास का है। प्रियतम की खोज में वे लौकिक स्तर से अलौकिक स्तर तक की यात्रा करती है।

कुल मिलाकर स्वच्छन्दतावादी शाखा में एक 'व्यक्तिनिष्ठ आत्मसम्पूर्णता' जिसे काव्य शास्त्र की शैली में 'Intution' कहते हैं, का सहज विकास हुआ है। शैली, कीट्स, बायरन ने अपनी काव्य-रचनाओं में प्रकृति और मनुष्य के दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं का जो उद्घाटन किया है उसके मूल में रोमांटिक शाखा ही है।

हिन्दी के छायावादी काव्य पर रवीन्द्र की रहस्यपरक भावनाओं के साथ ही वैदिक, औपनिषदिक और बौद्ध-दर्शन की भावनाओं का स्पष्ट प्रभाव रहा है। अतः छायावादी रचनाकार के स्वभाव की निर्मिति में दार्शनिक चिन्ता की एक विशेष भूमिका रही है। छायावाद के अधिकांश कवियों ने अंग्रेजी की स्वच्छन्दतावादी कविता का भी अध्ययन किया था और चूंकि छायावादी कविता भी अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावाद की तरह व्यक्तिवादी रचना का विद्रोह था—इसलिए एक ओर छायावादी रचना में वेदान्त की अद्वयवादी भूमिका, दूसरी ओर बौद्ध धर्मदर्शन की नराश्यमूलक अभिव्यक्ति, तीसरी ओर औपनिषदिक रहस्यवाद तथा चौथी ओर रचनाकार की व्यक्तिगत मान्यताओं, परिस्थितियों की गहरी छाप दिखाई देती है अतः छायावादी कवि स्वभावतः ही दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं।

जयशंकर प्रसाद छायावाद को वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति मानते हैं—कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया।[२] छायावादी काव्य के अन्तर्गत 'वेदना' की व्यापक स्थिति केवल प्रसाद ने ही स्वीकार की है। महादेवी जी की वेदना में सिद्धान्त पक्ष प्रबल है, वे साधना सत्य को ही चरम परिणति मानती है किन्तु प्रसाद जी की वेदना की आनन्दवादी व्याख्या में जिस स्वानुभूति का प्रकाशन करते हैं वह काव्य की समस्त शक्तियों की प्रेरिका शक्ति है।

---

1 C M Bowra The Romantic Imagination, P 262, 1961, Oxford University Press London

२ जयशंकर प्रसाद काव्य, कला और अन्य निबन्ध, पृ० १२३।

उनकी चेतना में काव्य की प्रक्रिया ही विषय भूमि बन जाती है। वेदनातत्व का स्वरूप निर्माण प्रसाद जी काव्य की प्रक्रिया तथा उसके विषय रूप दोनों में ही करते हैं। प्रक्रिया के रूप मे वेदना—(१) सकल्पात्मक शक्ति को स्वानुभूति अभिव्यक्ति देती है। (२) उसकी गहन भावधाराओं को, वस्तुचेतना को तथा अन्तर्मन की भावदृष्टियों को तीव्र एव सजग रखती है। (३) काव्य विषय की भूमि में वेदना का प्रसार रहता है। विषय की भूमि पर से वेदना की व्याख्या करते हुये वे बतलाते हैं कि—

(१) यह (विषय) वेदना का दूसरा रूप है जो विषय को उसकी चेतना से देखती है।

(२) इसमे रहस्यवाद का स्वरूप निर्माण होता है जो अनुभूति की आवश्यक दशा है।

(३) उदात्त भूमि पर यही (वेदना) रसवती हो जाती है, जहाँ आनन्द की स्थिति है[1]

प्रसाद जी मूलत आनन्दवादी हैं, रस की व्याख्या से यही तथ्य स्पष्ट होता है किन्तु फिर भी वे मानते हैं कि—'वर्तमान युग बुद्धिवादी है, अपातत् उसे दुख को प्रत्यक्ष सत्य भी मान लेना पडता है।'[2] इसी आधार पर वे यथार्थवाद का मूल भाव वेदना को स्वीकार करते हैं।[3]

अत प्रसादकाव्य में दुख साधन और आनन्द साध्य है। दुखवाद की उत्पत्ति वे तीर्थकरों स मानत हैं और दुखवाद को तर्कवाद या विवेकवाद पर आधारित मानते हैं जिसका सम्बन्ध बाह्य पदार्थ से है किन्तु काव्य की सकल्पात्मक अनुभूति आनन्दवाद अर्थात् रसवादी सिद्धान्त पर पूर्ण प्रतिष्ठित है जो काव्य की प्रकृत दिशा है। अत प्रसाद की त्रासदी आनन्दवाद में पूर्ण होती है। प्रसाद वेदना अथवा त्रासदी को उस उच्च भूमिका पर प्रस्तुत करते हैं जहाँ सौन्दर्य विषाद से अलग नहीं हो पाता।[4]

१ डॉ० राजेश्वरदयाल सक्सेना छायावादी काव्य स्वरूप और व्याख्या, पृ० ११६।

२ जयशंकर काव्य, कला और अन्य निबन्ध, पृ० ८४।

३ वस्तुत यथार्थवाद का मूल भाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना छिन्न भिन्न होकर पीडित होने लगती है, तब वेदना की विवृत्ति आवश्यक हो जाती है। व्यापक दुख सवलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। —काव्य, कला और अन्य निबन्ध, पृ० ११६, १२१।

४ मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का
दुख सुख दोनो नाचेंगे
है खेल आँख का, मन का। —प्रसाद आँसू, पृ० ४६।

छायावादी काव्य का अपना एक जीवन दर्शन है। सामान्य छोटे क्षणों को भी छायावादी कवि आंतरिक गहराई विशिष्ट बनाते हैं। यद्यपि मानव जीवन क्षण-भंगुर, नश्वर है किन्तु किस प्रकार इस क्षणिक जीवन को आनन्दमय बनाया जा सकता है? वेदना के सौन्दर्यबोध के द्वारा छायावादी कवि इसी उद्देश्य की प्राप्ति की ओर सचेष्ट है और इसीलिए वेदना इस समूचे विश्व का सार बन जाती है—

> वेदना से ज्वलित उडुगण
> गतिमय, गतिमय समीरण
> उठ, बरस मिटते सजल घन
> वेदना होती न तो यह सृष्टि जाती ठहर
> नभ में वेदना की लहर।[1]

निराला की काव्य वेदना की दृष्टि न्यून भले हो किन्तु सर्वथा अछूता नहीं है। 'सरोज स्मृति' वेदना के वैयक्तिक भाव को किस प्रकार सामाजिक धरातल पर प्रसरित किया जा सकता है, इसका अप्रतिम उदाहरण है। इसके अतिरिक्त 'राम की शक्ति पूजा' में व्याख्यायित राम की वेदना क्या निराला की स्वानुभूत वेदना नहीं है?

पंत की वेदनापरक दृष्टि में निराशा, छटपटाहट के अतिरिक्त कहीं-कहीं अति गम्भीरता और असंतुलन दिखाई देता है। आँसू, उच्छ्वास और परिवर्तन में पंत व्यक्तिगत और दार्शनिक दोनों ही रूपों में अपनी अन्तर्व्यथा को अभिव्यक्त करते हैं। उनके काव्य पर शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ और टेनीसन के काव्य की छाया यत्र-तत्र स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है। पंत ने वेदना को ही संसार का 'सत्य' और 'आँसू' को संसार का काव्य कहा।[2] उनके काव्य में वर्ण-वर्ण उर का कम्पन, शब्द शब्द में सुधि का दंशन और चरण चरण में आह है।[3] सुख दु ख, हर्ष विषाद को सापेक्ष दृष्टि से देखने पर भी वे यह निश्चित नहीं कर पाते कि यह वरदान है अथवा अभिशाप?[4] 'परिवर्तन' को निराला ने पंत की पूर्ण कविता कहा है। इसमें कवि मानवीय जीवन को दार्शनिक दृष्टि से देखकर उससे समझौते का प्रयास करता है।

---

१ हरिवंशराय बच्चन एकांत संगीत, पृ० ८७।

२ सिसकते हैं समुद्र से मन। उमड़ते हैं नभ से लोचन॥
विश्व वाणी ही है क्रन्दन। विश्व का काव्य अश्रुकण॥

३ आह यह मेरा गीला गान। वर्ण-वर्ण है उर की कम्पन॥
शब्द शब्द है सुधि का दंशन। चरण चरण है आह॥

४ विरह है अथवा यह वरदान
अश्रु कल्पना में जीता, सिसकता गान है
शून्य आहों में सुरीले छन्द
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है?
—सुमित्रानन्दन पंत पल्लव, पृ० ६४, ६५, ७१।

निराशामूलक होते हुए भी इस रचना मे एक औदार्य और दर्शन की तटस्थता है। अवश्यभावी परिवर्तन के चिरचक्र मे पड़ा हुआ क्षुद्र मनुष्य अपने सुख दुख पर क्या आस्था करें ? परिवर्तन में मानवीय सुख दु ख का यही निराकरण, जीवन का यही आश्वासन हम प्राप्त होता है। 'साधना ही जीवन का सार' परिवर्तन की विधायक शक्ति कही जा सकती है।[1] पल्लव की अन्य रचनाओ मे जैसे छाया, स्वप्न, बालापन आदि मे करुणा, निराशा की झलक है किन्तु गुजन मे आकर पत हर्ष विषाद, सुख-दु ख के बीच सामजस्य स्थापित कर लेते हैं और एक व्यापक दृष्टिकोण से विवादपूर्ण जीवन को आनन्द रूप बनाने का आग्रह करते हैं।[2] वस्तुत पत के काव्य का कलेवर मानव जीवन के अश्रुहास के तारो से बुना है, उनके गीत विश्ववेदना के आँसू से धुले और आत्मानुभूति की मुस्कान से स्नात और विश्वसगीत से झकृत है।

महादेवी का वेदना-दर्शन

महादेवी का काव्य उनके अतरग और बहिरग सघातो का प्रतिफल है। उनके निजी जीवन और काव्य रचना के बीच एक दोहरा सामजस्य स्थापित करने की लगातार कोशिश है और सघातों से उत्पन्न पीड़ा ही उनकी कविताओ का मूलपक्ष है। उनकी सम्पूर्ण कविता इसी पीडापरक आत्मदर्शन की अभिव्यक्ति है, जो उनके अह से सचालित और प्रेरित है।

महादेवी की काव्य-रचना प्रेरणा को समझने के लिए उनके रचना सस्कारों के ऐतिहासिक विकास को देखना आवश्यक है। प्रथम तो बचपन के आर्यसमाजी परिवार की गहरी छाप उन पर थी और इसी समय सस्कृत भाषा एव साहित्य का अध्ययन उन्होंने किया, वेद उपनिषद् और गीता की वेदातिक दृष्टि को समझा। इसके अतिरिक्त बौद्ध-धर्म दर्शन के दु खवाद का प्रभाव, एकनिष्ठता और गम्भीरता ने कविता मे रहस्यानुभूति का विकास किया।

विवाहोपरात के जीवन की प्रतिक्रिया ने उनको पूर्णतया दार्शनिक मनोवृत्तियों का कलाकार बना दिया। बाह्य जीवन की सुख-सुविधाओ मे आसक्ति न रहने के

---

१ आचार्य नददुलारे वाजपेयी—सुमित्रानन्दन पत, पृ० ४०, स० इन्द्रनाथ मदान।

२ यह साँझ-उषा का आँगन। आलिंगन विरह-मिलन का।
यह हास-अश्रुमय आनन। रे इस मानव जीवन का।
अस्थिर है जग का सुख दु ख
जीवन ही नित्य चिरतन। —गुजन, पृ० १७।

कारण अन्तर की खोज का अध्याय शुरू होता है और पारिवारिक संसार के रूप में स्थिर वेदान्त का ब्रह्म कभी बौद्धो जैसी विश्वकरुणा-भावना के रूप में तो कभी भक्तो जैसी रागानुगा भाव मे, तो कभी सूफियों जैसे प्रकृत रहस्यवाद में वे अपने भीतर के देवता को रूपायित करने लगी। इसी तरह से उनके भीतर का मनुष्य, जिसका साक्षात्कार उन्होंने समूचे भारतीय दर्शन और व्यक्ति परम्परा मे किया, वह उनकी रचनादृष्टि को आध्यात्मिक कलेवर में बाँधने लगा।

महादेवी वर्मा ने वेदना के मार्ग से जीवन की पूर्णता की व्याख्या की। वेदना को मानवीय सवेदना का व्यापक पर्याय मानकर वे उसके माध्यम से मानवीय सस्कृति के आचरण और उसके मूल्यो को निर्धारित करती है। इनके वेदना दर्शन पर पाश्चात्य साहित्य की अपेक्षा भारतीय साहित्य में परपरा स्वीकृत करुणा का प्रभाव व्यापक रूप मे उपलब्ध होता है। वदिक काल से लेकर छायावाद तक के बीच की करुणा की विवृत्ति करते हुए उन्होंने लिखा है—'करुणा हमारे जीवन और काव्य से गहरा सबध रखती है। वदिक काल में एक ओर आनद-उल्लास की उपासना होती थी और दूसरी ओर एक करुण-भाव भी विकास पा रहा था। एक ओर यज्ञ सम्बन्धी पशुबलि प्रचलित थी दूसरी ओर 'मा हिंस्यात सर्वभूतानि' का प्रचार हो रहा था। इस प्रवृत्ति ने आगे विकास पाकर जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों को रूपरेखा दी। बुद्ध द्वारा स्थापित ससार का सबसे बडा करुणा धर्म भी इसी प्रवृत्ति का फल कहा जा सकता है।

भारतेन्दु युग में भी हम एक व्यापक करुणा की छाया के नीचे देश की दुर्दशा के चित्र बनते बिगडते देखते हैं। पौराणिक चरित्रों की खोज करुण-भावना की सामान्यता लिए होती है और देश, समाज आदि का यथार्थ चित्रण व्यक्तिगत विषाद को विस्तार देता है। खडी बोली के कवि सस्कृत साहित्य के और अधिक निकट पहुँच जाते हैं। 'प्रिय प्रवास' की राधा और 'साकेत' की उर्मिला का नये वातावरण म पुनर्जन्म इसी सनातन करुणा की प्रेरणा है और राष्ट्रगीतों और सामाजिक चित्रण मे व्यक्तिगत विषाद को समष्टिगत अभिव्यक्ति मिली है और छायावाद तो व्यथा का सवेरा है, अत उसके प्रभाती गीतों की सुनहली आभा पर आँसुओं की नमी है।'[1] अपने दु खवाद के सम्बन्ध मे वे कहती हैं—'सुख और दु ख की धूपछाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दु ख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है ? यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या को सुलझाने डालने से कम नहीं है। ससार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा मे सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दु ख की छाया नहीं पडी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। इसके अतिरिक्त बचपन से

१ महादेवी साहित्य पृ० २१०-२११।

ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखमय समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही इस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं, जिससे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती।[1]

जहाँ तक दुःख का सम्बन्ध है उसके दो रूप हो सकते हैं—एक जीवन की विषमता की अनुभूति से उत्पन्न करुण भाव, दूसरा जीवन के स्थूल धरातल पर व्यक्तिगत असफलताओं से उत्पन्न विषाद।[2] दुःख-सुख से अधिक व्यापक होता है। सुख तो दुःख के नीचे दब जाता पड़ता है। दुःख के सामने सुख जब अट्टहास करता हुआ निकलता है तो केवल उपहास मात्र है। इस प्रकार का सुख तो अशिष्टाचार है।[3]

मैं दुःख और करुणा दोनों में अन्तर मानती हूँ—"दुःख भौतिक अभाव है। मैं दुःखी हूँ, अभावग्रस्त हूँ ऐसी कोई स्थिति नहीं है और जो करुणा है वह वास्तव में अभाव की स्थिति नहीं है, बल्कि दूसरे के अभाव से तादात्म्य करने की स्थिति है तो करुणा की जो हमारी भावना है जैसा कि भवभूति कहता है कि "रस एक ही है, जल एक ही है, उसमें आवर्त्त हैं, तरंगें हैं, पर जल एक ही है। भवभूति भी यही मानता है कि करुण ही मात्र रस है। दूसरे से तादात्म्य करने की स्थिति करुणा से ही सम्भव है, दुःख से सम्भव नहीं। करुणा तो जीवन की गहरी अनुभूति है।[4]

मुझे ऐसा लगता है कि जो लोग दुःखवाद की बात बार-बार कहते हैं, वे शायद समझते हैं कि मैंने बौद्धधर्म बहुत पढ़ा है। भगवान बुद्ध संसार को दुःखमय मानते हैं, पर मैं संसार को दुःखमय बिल्कुल नहीं मानती हूँ। मैं तो ईश्वर को भी मानती हूँ, आत्मा को भी मानती हूँ। उसमें धरती के भाव-स्नेह का सम्बन्ध तो आता नहीं, जैसे मायावाद में नहीं आता है। भई कोई कवि उसका क्या करेगा? हम तो निरन्तर मायावी हैं। हमारे लिए तो छोटा-सा फूल भी सत्य है, छोटा-सा गाने वाला पक्षी भी सत्य है, छोटा-सा अंकुर भी सत्य है। हमारे लिए असत्य कहाँ गया है? जो दर्शन के लिए असत्य है वो कवि के लिए परम सत्य है। हम तो महाराग के उपासक हैं। संसार को दुःखमय मनुष्य बना देता है अपनी भूल से। वह जो सचमुच तादात्म्य

---

१ महादेवी वर्मा यामा, अपनी बात, पृ० १२।

२ महादेवी साहित्य पृ० २३०।

३ शिवचन्द्र नागर महादेवी : विचार और व्यक्तित्व, पृ० १६५।

४ यदि मनुष्य करुणा को अपना धर्म बना ले और अपने स्नेह की परिधि में विश्व को समेटने का प्रयास करे, तो वह जीवन में सुखी रह सकता है।—शिवचन्द्र नागर—महादेवी वर्मा विचार और व्यक्तित्व, पृ० ६।

करने लगे तो जितनी विषमताएँ हैं सब दूर हो जाये। तादात्म्य के लिए करुणा ही मानसिक स्थिति है और दुःख तो बहुत ही परिस्थिति से बँधा है।[1]

उपर्युक्त दुःखवादी मान्यताओं के अनुरूप ही महादेवी के काव्य में वेदना के विविध विषय और सोपान दिखाई पड़ते हैं। महादेवी के सम्पूर्ण काव्य में वेदना की वह रागात्मक उदात्तता मिलती है जिसमे हृदय की प्रेमिल भावनाओं का उन्नयन होता है। इश्क मिजाजी का 'इश्क हकीकी' में उन्नयननिष्ठ रूपान्तरण होता है। उनके प्रारम्भिक काव्य मे वेदना की लौकिक और शृंगारिक अभिव्यक्ति हुई है—

(१) शून्य को छूकर आये लौट,
मूक होकर हैं रे निश्वास,
बिखरती है पीड़ा के साथ,
चूर होकर मेरी अभिलाष।[2]

(२) मुख जोह रहे हैं मेरा,
पथ मे कब से चिर सहचर,
मन रोया ही करता क्यों,
अपने एकाकीपन पर।[3]

नीहार की लौकिक भावनाएँ क्रमशः रश्मि में अलौकिक रूप मे परिणत होने लगती है। उनमे जीवन, मृत्यु, अमरत्व आदि भिन्न भावों का एकत्व है।[4] नीरजा में 'चिन्तन और अनुभूति' के बीच वेदना की अलौकिकता व्यंजित होती है। नीरजा में वेदना व्यथा की तीव्रता की परख संवेदना और चिन्तन की पृष्ठभूमि पर होती है। 'सान्ध्यगीत' मे इस वेदना को और अधिक व्यापकता मिलती है और सुख-दुःख के बीच सामंजस्य स्थापित होता है। दीपशिखा की वेदना में लोक हृदय से एकाकार होने की कामना विद्यमान है।[5] दीपशिखा करुणा की आत्म-विकीर्ण ज्योति है, जो

---

१ डा० मनोरमा शर्मा महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, पृ० २२।
—महादेवी वर्मा से भेंट वार्ता के अन्तर्गत।

२ महादेवी वर्मा नीहार, पृ० ५८।

३ महादेवी वर्मा यामा, पृ० ८६।

४ दुःख के पद छू बहते झर-झर,
कण-कण के आँसू से निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस मे वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता।
—महादेवी वर्मा—रश्मि, पृष्ठ १६।

५ पथ न भूलें एक पग भी,
घर न खोये लघु विहग भी,
स्निग्ध लौ की तूलिका में,
लिख सबकी छाँह उज्ज्वल। —महादेवी वर्मा—दीपशिखा, पृ० ७४।

जड-चेतन के अणु-अणु मे प्रकाश भर देना चाहती है। 'दीपशिखा' म लोकहृदय मे एकाकार होने एव विश्व चेतना या सवात्म चेतना को अनुभूत करने का जो भाव है वह गीताजलि के निकट ही रखा जा सकता है।[1]

महादवी वमा के अनुसार वेदना के दो रूप है—एक वैयक्तिक विषाद और दूसरा सामाजिक करुणा। उनके अनुसार यह करुणा ही भारतीय काव्य-जीवन से व्यक्ति को जोडती है। वैयक्तिक अथवा पार्थिव रूप मे वेदना मे घुटन, कुठा व असतोष का तीखापन सम्मिलित होता है। इसका उत्पत्ति प्राय सुख के अभाव, भौतिक सघष, अतृप्ति, प्रेम के परमरम्य आस्वाद की अप्राप्ति से होता है, यह वदना जहाँ व्यक्ति को कुठित, चिताग्रस्त बनाती है वही आत्मसतोष और आत्मविश्वास का अभाव पलायनवादी भी बना देता है। सामाजिक करुणा के रूप मे यही वेदना सवदना और सहानुभूति के रूप मे व्यापक आधार ग्रहण कर लेती है और मानव सम्पूर्ण विश्व से तादात्म्य स्थापित करता है और तब विश्व की छोटी से छोटी घटना भी उसे उद्वेलित कर जाती है तथा करुणा की असख्य लहरिया उठाने मे समर्थ हो जाता है। व्यक्तिगत परिवेश से मुक्त जब ऐसी वेदना समष्टि का स्पर्श करती है तो उसमे मानवतावाद का प्रादुर्भाव होता है और वह लोक जीवन के लिए वरेण्य हो जाती है और तभी वह करुणा, आनन्द या सौन्दय का पर्याय बनती है।

महादवी वर्मा ने वेदना को ज्ञान और भाव की जिस भूमिका पर प्रस्तुत किया उसम मनुष्य को आत्मोपलब्धि अथवा आत्मसप्राप्ति की ओर ले जाने की क्षमता है। उनकी दृष्टि मे व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना मे घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुख विश्व के सुख मे घुलकर जीवन को अमरत्व[2] और इसलिए वे चाहती है—

> निर्धन के धन सी हास रेख
> जिसको जग ने पाई न देख
> उन सूखे ओठो के विषाद-
> मे मिल जाने दो हे उदार।[3]
> अथवा—मेरे हँसते अधर नही जग
> की आँसू की लडियाँ देखो

---

१ काव्य का स्वरूप डॉ० धनजय वर्मा, पृ० १११।
२ महादेवी वर्मा रश्मि, पृ० १।
३ महादेवी वर्मा नीहार, पृ० ४८।

मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलियाँ देखो ।[1]

उनकी इस मानवतावादी विचारधारा के लिए बुद्ध की महामैत्री और महाकरुणा का भी श्रेय है—'बुद्ध ज्ञान का प्रयत्न करने वाला बोधिसत्व है और बोधिसत्व के लिए दो गुण आवश्यक होते हैं—महामैत्री और महाकरुणा। महामैत्री उसे अन्य प्राणियों के लाभ के लिए अपना सर्वस्व त्यागने की शक्ति देती है और महाकरुणा के कारण वह सबको दुःख से विमुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।[2] इसीलिए महादेवी वर्मा वेदना को उच्चतम भूमिका पर स्वीकार करती हैं—"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।[3]

अतः वेदना के मार्ग से जीवन की पूर्णता को व्यक्त करना महादेवी का काव्य-प्रक्रिया का एक सहज रूप है। इस मार्ग पर वेदनावाद और आनन्दवाद का अंतर समाप्त हो जाता है। प्रसाद ने आनन्दवाद की भूमि पर जिस समरसता का प्रचार किया, उसी आनन्दवाद का प्रचार महादेवी वर्मा सुख-दुःख के सामंजस्य से वेदना अथवा दुःखवाद की भूमि पर करती है। वेदना के मार्ग से महादेवी की भूमि ने जिन मूल्यों को उद्घाटित किया है, वे अपने शुद्ध और सार्वजनिक रूप में जीवन की शाश्वत अभिव्यक्ति करने वाले हैं।

---

१ महादेवी वर्मा नीरजा, पृ० ३३।
२ महादेवी वर्मा क्षणदा, पृ० १५।
३ महादेवी वर्मा यामा, पृ० १२५।

काव्य-वेदना के मनोदार्शनिक आयाम

वेदनाजन्य काव्य को विश्वकाव्य म श्रेष्ठतम काव्य के अतर्गत रखा गया है फिर भी शास्त्रीय कविता मे वदना की अभिव्यक्ति का स्वरूप छायावादी कविता की वदना से भिन्न रहा है। जब कभी वेदना महाकाव्य का विषय होती है अथवा नाटक का विषय होती है अथवा किसी आख्यान के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति होती है तो वह वस्तुपरक, निर्वैयक्तिक तथा युगीन सामाजिक, सास्कृतिक आधारा से पुष्ट होती है, लेकिन जब वदना प्रगीतकाव्य का विषय होती है तो वह वैयक्तिक, आत्मपरक अथवा स्वानुभूतिपरक होती ह।

ग्रीक त्रासदी के जो वेदनामूलक आधार है वे भव्य हैं और एक समूची सस्कृति की मनोदृष्टि के द्योतक है। उससे हमे एक जाति के मनोभावो का प्रकाशन मिलता है जबकि स्वच्छदतावादी त्रासदी और करुणा के जातीय आधार प्रमुख नही होते, वह वैयक्तिक होती है तथा रचनाकार की निजी अभिरुचि पर आधारित होती है। हम कह सकते हैं कि वह रचनाकार की जीवनदृष्टि से सम्बन्धित होती है। अत स्वच्छदतावादी रचना म वेदना तत्व की प्रकृति स्वानुभूतिपरक और सौदयमयी होती है।

पश्चिम के स्वच्छदतावादी काव्य म जो दार्शनिक गाभीर्य दृष्टिगत होता है, जो नियतिवादिता दिखाई देती है, उसका परिप्रेक्ष्य दुखान्तमूलक है। शेली, कीट्स की कविता की मूलध्वनि ही निराशा और दुख की रही है, हिंदी की छायावादी कविता तो वदना का व्यक्तिपरक जीवनदशन है। प्रसाद, पत, निराला, महादेवी तथा अन्य अप्रमुख कवियो की रचनाओ मे वेदना की लौकिक, आध्यात्मिक, प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक भूमिकाओ मे ही छायावादी काव्यान्दोलन की अभिव्यक्ति हो सकी है। चूकि छायावादी कवि वदना का वरण करता है और उसकी वेदना के रचनात्मक आधार स्वानुभूतिपरक होत है इसलिए छायावाद की मूल भावना को समझने के लिए कलाकार की मनस्विता का अध्ययन आवश्यक है। कलाकार के वैयक्तिक जीवन, परिवेश, परिस्थितियो के आकलन से उसकी वेदना के मनोवैज्ञानिक आधार ढूढे जा सकते हैं।

काव्य और कला के अध्ययन मे रचना-प्रक्रिया वह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो कवि के मानस और कृति के नैसर्गिक गुणा पर प्रकाश डालता है। काव्य और कला का उद्गम क्या है? इस प्रश्न का सम्बन्ध कवि की प्रेरणा से है। साहित्य के क्षेत्र मे प्रेरणा के स्वरूप व उसकी पद्धति के सम्बन्ध मे अनक रूपों म विचार किया

गया है, परन्तु मनोविश्लेषकों ने इस विषय पर नये रूप में विचार किया। मनोविश्लेषण के अनुसार सृजन के क्षणों में अवचेतन ही सर्वोपरि होता है।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषक फ्रायड ने कलाकार को मूलतः मनस्तापी माना है उसके मतानुसार—कलाकार की मनोवृत्ति अन्तर्मुखी होती है वह सम्मान, शक्ति, सम्पत्ति, यश और नारी प्रेम प्राप्त करना चाहता है, किन्तु इन परितुष्टियों की प्राप्ति के साधनों से वंचित है। इसीलिए असंतुष्ट कामवासना के कारण दूसरे व्यक्तियों के समान ही वह वास्तविकता से हट जाता है और अपनी सारी अभिरुचि तथा कामोत्तेजना को रम्यकल्पना के जीवन में अपनी इच्छाओं की सृष्टि की ओर लगा देता है। जिससे मनस्ताप उत्पन्न होता है यह सुविदित है कि कलाकार अधिकतर अपनी शक्तियों की प्रबलता और मनस्ताप से ग्रस्त होता है। संभवतः उसकी संरचना में उदात्तीकरण की सबल शक्ति होती है। वह जानता है कि अपने दिवास्वप्नों का किस प्रकार विस्तार करे।[1] फ्रायड के कथनानुसार 'हमारा अचेतन दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो निष्क्रिय है, किन्तु उसमें चेतन बनने की क्षमता है और दूसरा वह जो दमित है और साधारण रूप में चेतन बनने में असमर्थ है। जो निष्क्रिय और गत्यात्मक अर्थ में नहीं बल्कि वर्णनात्मक अर्थ में ही अवचेतन है, उसे हम 'पूर्वचेतन' कहते हैं। अवचेतन शब्द का प्रयोग हम उनके लिए करते हैं जो गत्यात्मक रूप से अचेतन हैं अर्थात् दमित है।'[2]

कलाकार का सम्बन्ध 'पूर्वचेतन' से है जो उन विचारों और बिम्बों का भंडार है जिनमें उसकी पहले-पहल अभिरुचि हुई होगी किन्तु तत्काल वह उनका उपयोग नहीं कर सका। जब वह किसी प्रबल आवेग से प्रेरित होता है तो वे सुरक्षित विचार और बिम्ब अपने तमरछन्न स्थान से बाहर निकल आते हैं और चेतन द्वारा उपयोग के योग्य बन जाते हैं। इनमें से सभी विचार या बिम्ब बाहर नहीं आते बल्कि वे ही जो किसी रागात्मक सम्बन्ध से परस्पर सूचित होते हैं।[3] फ्रायड के मतानुसार कलाकृति से वास्तविक आनन्द प्राप्त होने का कारण है कि वह मानसिक तनावों से हमें मुक्त करती है। फ्रायड ने 'अवचेतन' के महत्व के साथ ही 'स्वप्न' का भी महत्व स्थापित किया है। उसने 'स्वप्न' को अर्थहीन, आकस्मिक न मानकर मनुष्य की दमित इच्छाओं, लालसाओं की अभिव्यक्ति माना। जिसकी व्याख्या से अवचेतन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी हो सकती है और इसीलिए फ्रायड देवकथा (मिथ),

---

१ क० अहमद मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन, पुरोवाक
अनु०—देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्र० सं० १९६९।

२ Simund Freud The Ego and the Id P 12

३ क० अहमद मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन, पृ० ११४।

स्वप्न और काव्य के मूल म एक ही प्रकार की प्रवृत्ति मानता है क्योंकि तीनो के स्रोत और लक्ष्य एक ही हैं।[१]

राबट ग्रेव्म ने काव्य की सृजन प्रक्रिया के विषय मे कहा—'काव्य रचना का शरीर विज्ञान कोई रहस्य नही है। कवि अपने को किसी व्यग्र करने वाली सवेगात्मक समस्या मे फँसा पाता है, जिसे टाला नही जा सकता और जो उसे समाधि की अवस्था मे डाल देती है। इस समाधि की स्थिति म उसका मस्तिष्क तत्काल अनेक काल्पनिक स्तरो पर अद्भुत साहस और सूक्ष्मता के साथ सक्रिय हो जाता ह। कविता ऐसी स्थिति म या तो उस समस्या का व्यावहारिक समाधान होती ह अथवा वणन और एक समस्या का स्पष्ट वणन उसका आधा समाधान है।'[२] इन्ही विचारो स मिलते-जुलते विचार नात्शे ने अभिव्यक्त किये—'कलाकार किसी उच्चतर शक्ति का माध्यम या प्रवक्ता मात्र है वह सुनता भर ह, स्वय शोध नही करता, वह केवल ग्रहण करता है, यह नही पूछता कि कौन देता है। विचार विद्युत के समान कौंध जाता है और एक आवश्यकता की भाति प्रतीत होता है। चुनाव की स्वतन्त्रता मेरे लिए कभी नही रही।'[३] इस प्रकार के चिन्तन का सम्बन्ध स्पाशाट न अवचेतन की सक्रियता से जोडा।[४] यह कौंध या दमक पूर्वचेतन अवस्था का विस्फार है। सृजन की स्वतन्त्रता होती है तथा सभी नियन्त्रण विलुप्त होने हैं। शताब्दियो के दौर म इस सस्कृत परम्परा म वाग्देवी का प्रताप, दैवी प्रेरणा आदि तथा यूरोपीय परम्परा म कलादेवी (म्यूज) का वशीकरण, 'एम्नासिस', डैमानिक वाणी (गोएथे) कल्पनासर्जक पक्ष (इमजिनेशन क्रियेट्रिक्स-कालरिज), पूर्वानुमान (प्रिहूमन-ह्वाइटहैड) आदि सज्ञाओ से अभिहित किया गया है। कौंध म एक नए विचार का जन्म हो जाता है, अचानक एक नया आयाम खुल पडता है, अवचेतन की शारीरिक मनोवैज्ञानिक अव्यवस्था एक अपूर्ण रूपाकार का निर्माण कर देती है। कौंध एक अनिवचनीय अन्तर्दृष्टि (इसाइट) को दीप्त कर देती है। कौंध के सकेत (सिग्नल) प्रतीक (सिंबल) म रूपातरित हो उठते हैं। प्रतीक स्वय मे सृजनात्मक होते है।[५]

कौंध की यह गतिशील स्थिति ही शास्त्रीय भाषा मे प्रेरणा कहलाती है। प्रेरणा की स्थिति मे ही चेतन अचेतन से पृथक होता है और सृजनात्मक कल्पना

---

१ Simund Freud New Introductory Lectures in Psychology, P 48

२ एफ० ई० स्पाशार्ट द स्ट्रक्चर आफ एस्थेटिक्स, पृ० ४१३।

३ डा० निर्मला जैन रस सिद्धात और सौन्दर्यशास्त्र, पृ० ४१७ पर उद्धृत।

४ एफ० ई० स्पाशाट द स्ट्रक्चर आफ एस्थटिक्स, पृ० ४०८।

५ रमेशकुन्तल मेघ अथातो सौन्दय जिज्ञासा, पृ० २१०-२११।

सक्रिय होती है। उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि काव्य प्रक्रिया के अन्तगत व्यक्तिगत अनुभूति चिन्तन और अनुभवो का महत्व होता है। चूंकि काव्य अनुभव प्रसूत है अत वैयक्तिकता उसमे समाहित है जैसा कि मुक्तिबोध का कथन है—'जीवन मूल्य और कलात्मक साहित्यिक मूल्या मे आवयविक सम्बन्ध है, यह न भूलना चाहिए। जो परिवार के मूल्य होंगे, वे जीवन मे होंगे ही और ये साहित्य मे भी उतरगे। हाँ, यह सही है कि साहित्य मे आकर उनकी रूपरेखा बदल जायेगी, किन्तु उनके तत्व कैसे बदलेंगे ? जिन्दगी के जो रुख हैं, जो रवैये हैं, जो ऐटीट्यूडज है, व साहित्य म अवश्य प्रगट होगे[1]। किन्तु यदि यह भूमिका आत्मपरक और वस्तुपरक है अर्थात् इन दोनो से समन्वित जीवनपरक दृष्टि से तैयार की गई है तो उस कवि का क्या कहना, वह निस्सदेह समृद्ध करती है। इस सतह पर मुख्य प्रश्न दृष्टि का है, मानवता के कवि की दृष्टि विश्वजनता के उद्देश्यो से एकाकार है अर्थात् कवि की भावनाओं का ज्ञानात्मक आधार विस्तृत, व्यापक और अद्यतन है तो ऐसी स्थिति उस कवि की दृष्टि ही उसके अत करण म एक वातावरण का निर्माण करेगी, एक काव्यात्मक मनोभूमिका तैयार करगा।[2]

जहा तक छायावाद की वैयक्तिकता का प्रश्न है, उसकी व्यक्तिपरक वेदना का प्रश्न है, उसके मूल म उनकी व्यक्तिगत, सामाजिक राष्ट्रीय और सास्कृतिक परिस्थितिया प्रमुख थ। जहा तक व्यक्तिगत स दर्भो का प्रश्न है, छायावाद के चारो ही प्रमुख कवियो का क्रमश माता-पिता, पुत्र, पति, पिता आदि का वियोग सहना पडा, आर्थिक स्तर पर भी महादवी को छोडकर शेष तीनो कवियो का जीवन कठिनाइयो स जूझने और उबरने म व्यतीत हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन स य कवि प्रभावित अवश्य हुए तथा सामाजिक भाव-बोध को उन्होंने प्रतिपादन भी किया फिर भी इन कवियो की सौंदय चेतना का केन्द्रबिन्दु आत्मपरक वेदना ही रही। इसीलिए द्विवदीयुगीन आदर्शात्मकता, इतिवृत्तात्मकता का विरोध और पूजीवादी आर्थिक स्थिति के प्रभाव के बीच वैयक्तिक आकाक्षाये अत्यन्त तीव्र थी। इस वैयक्तिकता को तीव्र करने म एक कारण और था विदेशी शासन व्यवस्था और समाज मे प्रचलित नैतिक मान्यताए और नीतियाँ।

छायावादी काव्य म वेदना और करुणा प्रत्येक पग पर है किन्तु उसका स्वरूप सौम्य कुठावादी पलायनवादी नही है। छायावाद मे वेदना, निराशा, करुणा, क्षोभ की अभिव्यक्तियो के आधार पर डा० नगेन्द्र ने समूचे छायावादी काव्य को कुठावादी घोषित किया—बाह्य अभिव्यक्ति म निराश होकर जो आत्मबद्ध अन्तर्मुखी

---

1 गजानन माधव मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी, पृ० ७७-७८, १११, १२३।

2 गजानन माधव मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी, पृ० १४६।

साधना आरभ की वह काव्य मे छायावाद के रूप मे अभिव्यक्त हुई।[1] किन्तु छायावादी काव्य वदनापरक होते हुए भी कुण्ठा अथवा पलायन का काव्य नही है। केवल दमित भावनाओ की अभिव्यक्ति रीतिकाल मे हुई, छायावाद उससे कही आगे का काव्य है। छायावादियो न वैयक्तिक बोध के माध्यम से मानव के अन्तर को पहचानने का प्रयास किया। उनकी व्यक्तिवादी दृष्टि ने जिस उदात्त सौन्दर्य को प्रस्तुत किया वह मानवीय रागात्मक दृष्टि का सामान्य गुण है।

छायावाद सौन्दय चेतना का काव्य है और सौन्दय की चेतना व्यक्तिसापेक्ष होती है। छायावादी कवियो न अपने निजी जीवन की अनुभूतियो को प्रेरणाधार के रूप म ग्रहणकर जिन भावनाओ की अभिव्यक्ति की वे सकीणवद्ध न होकर उन्नयन क उस स्तर का छूती है जहा औदात्य का समावेश है। उनकी वदना और करुणा की भावना लौकिक-अलौकिक भावो मे बँधी समष्टि से भावात्मक साम्य स्थापित करती है। उनकी इस भावना म निराशा नही आशा का सगीत है, जो चेतना की गरिमा का उज्ज्वल वरदान है।

फ्रायड की कला-सम्बधी विचारधाराएँ उसकी चिकित्सात्मक रुचियो स प्रभावित थी। फ्रायड मानता है कि कला मे व्यक्त अवचेतन की अभिव्यक्ति व्यक्तित्व के तीनो (Id, Ege, Super Ego) पक्षो से सम्बधित होती है जिसके मूल मे कामग्रथि रहती है। फ्रायड ने अपनी दिवास्वप्न व अवचेतन सम्बधी धारणा के आधार पर यह निष्कष दिया कि कला का समूचा क्षेत्र वैयक्तिक काम कुण्ठाओ तक सीमित है। फ्रायड के इस चिन्तन न कला के क्षेत्र व उद्देश्य को सकुचित करके कलाकार क सामाजिक व सास्कृतिक पक्ष को ही समाप्त कर दिया। किन्तु छायावादी कवियो की वैयक्तिक भूमिका के साथ-साथ उसकी सामाजिक और सास्कृतिक भूमिका भी पुष्ट है। जयशकर प्रसाद व महादेवी वमा ने इस काव्य का मूल भारतीय सस्कृति म प्रमाणित किया।[2]

अत फ्रायडियन प्राणीशास्त्रीय दृष्टि के आधार पर छायावाद का विवेचन सभव नही है। फ्रायड के दृष्टिकोण स भिन्न एडलर ने अधिकार भावना अथवा अह भावना को काव्य व जीवन की प्रेरणा स्वीकार किया। उनके अनुसार मनुष्य को तीन क्षेत्रो

---

१ डा० नगेन्द्र आस्था के चरण, पृ० २२८।

२ प्राचीन साहित्य मे यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी मे जब इस तरह के प्रयोग हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढग को ग्रहण करना पडा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्म स्पश, काव्य जगत के लिए अत्यन्त आवश्यक थे।

—जयशकर प्रसाद काव्य, कला और अन्य निबन्ध, पृ० १२५।

मे प्रमुख समायोजन करने पड़ते हैं और वे हैं समाज, कार्य तथा प्रेम। इस समायोजन में बचपन के अनुभव साधक या बाधक बनते हैं। प्रत्येक शिशु असहाय रूप में जन्म लेता है जीवन धारण से लेकर प्रत्येक कार्य के लिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस तरह पग-पग पर उसे असहायता का बोध होता है, यह भावना तीन स्थितियों में और भी तीव्र हो जाती है—(१) अनुचित व्यवहार, (२) विषम परिस्थिति, (३) आंगिकहीनता। इस भावना की प्रतिक्रिया भी तीन रूपों में होती है—(अ) असफल क्षतिपूर्ति, (ब) पराजय व आत्मकेन्द्रित होकर कार्य से विमुखता, (स) समझौता या अति क्षतिपूर्ति।

एडलर के अनुसार इस असहायता की भावना के कारण हीनग्रंथि का निर्माण होता है जो शैशव की शारीरिक असफलताओं के कारण पैदा होता है। इस हीनग्रंथि का उद्देश्य सदैव श्रेष्ठतर की ओर रहता है। एडलर के अनुसार चेतना का अर्थ है हीन और उच्चमानता के बीच निरन्तर द्वन्द्व। यही द्वन्द्वात्मकता व्यक्ति की जीवन शैली और व्यवहार का निर्माण करती है। एडलर ने कलाकार को बहुत ऊँचा स्थान दिया। वह लिखता है कि कलाकार और प्रतिभाशाली व्यक्ति निस्सन्देह मानवता के नेता हैं और जो ज्वाला उन्होंने अपने बचपन में जलायी थी उसमें जलकर उन्हें अपने साहस के लिए दण्ड भोगना पड़ता है। कवियों ने हमें बोलना अनुभव करना और सोचना सिखाया। हम कलाकारों, प्रतिभाशालियों विचारकों, अनुसंधायकों, आविष्कारों की अमर उपलब्धियों पर परजीवियों के समान जीते हैं। वे मानवता के सच्चे नेता हैं, वे संसार के इतिहास की प्रेरक शक्ति हैं।[1]

एडलर के सिद्धान्तों का उपयोग कथा साहित्य के चरित्रों में किया गया है फिर भी हर सफलता को क्षतिपूर्ति की आकांक्षा का फल मानना गलत है। हर व्यक्ति में कोई न-कोई कमी होती है जो प्रेरक का कार्य कर सकती है। यह दृष्टिकोण संशयात्मक है कि स्नायु दुर्बलता और क्षतिपूर्ति के कारण कलाकार दूसरे व्यक्तियों से अलग होते हैं। व्यक्ति के रूप में कलाकार और कलाकार के रूप में व्यक्ति के बीच पार्थक्य स्थापित करने का श्रेय कार्ल जुंग को है। जुंग के मतानुसार प्रत्येक सृजनशील व्यक्ति अभि प्रेरणाओं का द्वैत अथवा समन्वय होता है। एक ओर वह वैयक्तिक जीवन से युक्त मनुष्य है तो दूसरी ओर वह निर्वैयक्तिक सृजनशील प्रक्रिया है। चूँकि मनुष्य के रूप में वह स्वस्थ या अस्वस्थ हो सकता है, इसलिए उसके व्यक्तित्व के निर्धारक तत्वों को ठीक से जानने के लिए उसके मानसिक निर्माण को देखना आवश्यक है किन्तु कलाकार के रूप में उसे हम तभी समझ सकते हैं जब उसकी सृजनशील उपलब्धियों को देखें। मनुष्य के रूप में उसकी व्यक्तिगत भाव दशायें, इच्छायें सत्य हो सकते हैं किन्तु कलाकार के रूप में वह उच्चतर अर्थ में मनुष्य है—वह सामूहिक मनुष्य है

१ क० अहमद मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन, पृ० १६।

जो मानवजाति के अचेतन मानसिक जीवन को आगे बढाना ही नही उसे खास साचे म ढालता भी है। इस कठिन कार्य के लिये उस सुख तथा उन समस्त उपकरणो का जो साधारण मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक है, बलिदान करना आवश्यक हो जाता है। जुग के अनुसार मनस्ताप कारण नहीं बल्कि सजनात्मक शक्ति का परिणाम है जो मानवीय आवेगो का इस अश तक निस्सारित कर देता है कि वैयक्तिक अह सभी प्रकार के दुगुणो का विकसित कर लेता है।

फ्रायड ने 'कामग्रथि' एडलर न 'महत्वाकाक्षा' को केन्द्र म रखा तो जुग ने इन दोनो की मिली-जुली शक्ति के समान 'लिबिडो' की कल्पना की। फ्रायड ने लिबिडो को उन शक्तियो का भण्डार माना जो दमित और कुठित ह, जिसकी प्रवृत्ति यौनपरक होती ह किन्तु जुग न इसे जातीय वशानुक्रम से सचित अनुभवो मे तबदील करके एव मिथकीय लाक प्रदान किया।[1] उसके अनुसार सृजनात्मक आवेश इसी जातीय अवचेतन या सामूहिक अवचेतन मे निसृत होता है। जुग ने व्यक्तित्व को भी दो रूपो म विभाजित किया—बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी। जुग का कहना है कि व्यक्तित्व के य भेद मान कार्यक्षमताओ के कारण उत्पन्न होते हैं।

जुग की विवेचना समष्टि व्यक्तित्व अथात् व्यक्तित्व का सामाजिक व सास्कृतिक भूमिका को सुदृढ करता है। जुग न कवि-कर्म को चेतन-व्यापार बनाया है। बाह्य सामग्री का आत्मसात करके ही कवि काव्यानुभूति को व्यक्त करता ह। कवि और पाठक की चचा स जुग ने यह सिद्ध किया कि कृति का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है तथा उसके मूल्याङ्कन की भी इतनी ही आवश्यकता है जितनी कवि की। जुग ने सृजन-प्रक्रिया को नारी-सुलभ गुण बताते हुए कहा ह कि सृजनात्मक कृति अवचेतन की गहराइयो से उत्पन्न होती ह, जिसे मातृत्व क्षेत्र भी कह सकते है।[2]

वस्तुत कला प्रक्रिया वैयक्तिक होती है और काव्य-दशन के भीतर कलाकार की वैयक्तिक धारणा पर ही बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता आधारित होती है अत कलाकुण्ठा नही हो सकती। कला के साधारणीकरण मे, उसकी सार्वजनिकता म समष्टिमूलक भावो का प्रतिफलन होता है। अत कला उदात्त होती है। कलाकार अपने प्रति उत्तरदायी है इसका अथ है कि वह उस ईकाई की जिम्मेदारी से सजग है जिसके भीतर सम्पूण समाज की चेतना रहती है। व्यष्टि की सम्पूणता का दशन स्पष्ट रूप से समझ लेने पर काव्य म व्यक्ति और समाज के अलगाव की बात समाप्त हो जाती है। कवि का वैयक्तिक चिंतन उसी का है क्योंकि वह ईकाई के सम्पूण रूप मे

1 G G Jung The Integration of Personality p 52-53
2 Ibid p 73-75

है और वह उसका नही, समाज का है क्योंकि उसमे सभी तत्व और प्रेरणा स्रो
वातावरण तथा समाज के हैं।[१]

छायावादी काव्य-चिन्तन म रचना प्रक्रिया का सम्पूर्ण मनोविज्ञान औ
दार्शनिकता दृष्टिगत होती है। एक ओर जहाँ इसमे द्विवेदीयुगीन नियमानुशासि
बाह्यपरकता का खडन दिखाई देता है वही अन्तर का काव्य होते हुए भी इस
कुठा का कोई स्थान नही है। प्रसाद जी के अनुसार, 'छायावाद के दो लक्षण हैं—ए
तो यह कि उसमे वस्तुओ का बाह्य वर्णन न होकर आतरिक रूप ही वर्णित होता
और दूसरा लक्षण है वेदनाप्रियता।' छायावाद के सभी कवियों ने वेदना' का महत्
दिया। मनुष्य को मापदण्ड बनाकर वे 'काव्य' रचना करते हैं और व्यक्तिमुक्ति व
अपेक्षा 'समष्टिमुक्ति' उनका लक्ष्य है, जिसके लिए निवृत्ति की अपेक्षा प्रवृत्ति त्या
की अपेक्षा ग्रहण का मार्ग उन्हे श्रेयस्कर प्रतीत होता है। मानव पीडा के प्र
सहानुभूति और विश्वबंधुत्व के आगे किसी ज्ञाताज्ञेय और निविड आलोक की कल्प
छायावादी कवियो ने नही की।

प्रसाद ने वेदना का उच्च, उदात्त और आनन्दपूर्ण आध्यात्मिक पहलू प्रस्तु
किया। झरना आसू, लहर, कामायनी मे वेदना-आनन्द की एकरसता का प्रतिपाद
हुआ। आंसू मानवीय विरकाव्य होते हुए वेदना की विश्वव्यापी व्याख्या है। लह
मे वेदना का दार्शनिकरण, बौद्ध धर्मदर्शन के सदर्भ म प्रस्तुत हुआ। कामायनी
'आनन्द' की व्याख्या शैवदर्शन के सदर्भ म हुई। प्रसाद की वेदना और करुणा
निर्माण की अपेक्षा प्रवृत्तिमूलक, सुखोपलब्धि की आकाक्षा है।

दुखात्मक ससार से भागकर सीमित सुख की उपलब्धि वास्तव म आनन्द
मादमय भूमा की उपलब्धि नही है—बल्कि हृदय की रम्य विभूतियो के सह
योग्यतापूर्वक आत्मशक्ति की पहिचान से दुख को भी सुखात्मक रूप म परिणत
आनन्द की, भूमा की उपलब्धि ही मानव का लक्ष्य है।[२] प्रसाद का काव्य करुणा
सभी पहलुओ से निकलता है और शात रस की भावविभूतियो का स्पर्श करता है।

महाकवि निराला की काव्य वेदना जीवन की, यथार्थ की भोगी हुई वेदना है
सुमित्रानन्दन पन्त तो काव्य का सृजन ही 'आह' से मानते है। ग्रथि म पत कमव
दैन्य और करुण भावो के बीच वेदना और व्यथा का दार्शनिकरण प्रस्तुत करते हैं—

वेदना ! कैसा करुण उद्गार है।
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह

---

१ डा० राजेश्वर दयाल सक्सेना स्वच्छदतावादी समीक्षा और साहित्य चिं
पृ० ५१५।

२ डा० राममूर्ति त्रिपाठी हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०४।

तुहिन मे, तृण मे, उपल म, लहर मे
तारको मे, व्योम है वेदना।
वेदना! कितना विशद यह रूप है!
यह अंधेरे हृदय की दीपक शिखा
रूप की अंतिम छटा और विश्व की
अगम चरण अवधि, क्षितिज की परिधि सी!

महादेवी का काव्य तो वेदना की साकार मूर्ति ही है। वेदना की जितनी भगिमाये, रूप हो सकते हैं सभी महादेवी के काव्य मे दृष्टिगत होते हैं।

छायावादी इसी वेदनाप्रियता के कारण कतिपय आलोचको ने उसे पलायनवादी घोषित किया। तोड दो यह क्षितिज मैं भी देख लू उस पार क्या है, अथवा पत 'हम जाना है उस पार' तथा प्रसाद 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे' कहते हैं तो वहाँ पलायन की भावना नही है। छायावादी कवि अनुभूतियो को सूक्ष्म रूप मे व्यक्त करता है। भावो की अमूर्तता के कारण उसकी अनुभूतिया म रहस्यात्मकता अथवा आध्यात्मिकता का समावेश हो जाता है किन्तु इस आधार पर उन्हे पलायनवादी कहना उचित नही है। यदि छायावादी कवि पलायन करते भी है तो जीवन से नही बल्कि अपनी वैयक्तिकता से करते है। जैसा कि पत का कथन है—'छायावादी पलायन वर्तमान की सकीर्ण विघटित होती हुई ह्रासोन्मुखी वास्तविकता से एक नवीन उच्च वास्तविकता से एक नवीन उच्च वास्तविकता की खोज के लिए पलायन था—यदि उसे पलायन कहना आवश्यक ही है तो।'[1]

महादेवी को आधार बनाकर छायावादी काव्य को पलायनवादी, कुठावादी कहा जाता है किन्तु महादेवी का काव्य उनकी व्यक्तिपरक भावनाओ से सबधित होकर भी कुठावादी नही है। भावो की तीव्र सत्ता के कारण वहाँ कला का अस्तित्व निरपेक्ष नही है। महादेवी ने वस्तुजगत का मूल्याकन आत्मशक्तियो से इस प्रकार किया है कि वह रूप-गुणहीन होकर उन्ही मे डूब गया। महादेवी ने छायावादी पलायनवादिता का खण्डन करते हुए लिखा—'*पलायनवृत्ति यथार्थ का सामना न कर* सकने के कारण पैदा होती है, यह धारणा सही नही है। लोक को छोडकर लोकोत्तर, सामान्य जगत को छोडकर दृष्टि और गति मनुष्य के स्वभाव म है। उपनिषदो का ऋषि जब चिन्तन के नवीन लोको म भटकने लगा, तब उसकी प्रेरणा अपार्थिव या जागतिक विषमता नही थी। सिद्धार्थ भी जब तत्वज्ञान के गभीर क्षेत्र म थे तब उनकी प्रेरणा भी कोई भौतिक सघर्ष न था। इसके विपरीत ये लोग तो सुख-समृद्धि की अतिशयता से ऊबकर उस रहस्यमय लोक मे प्रविष्टि हुए। यही बात हम दैनदिन

१ सुमित्रानन्दन पत छायावाद पुनर्मूल्याकन, पृ० १६।

जीवन मे भी पाते हैं। बहुत खिलाडी बालक भी कभी-कभी पुस्तकों के लिए विकल पाया जाता है। मचान पर बैठा हुआ रखवाला और चक्की पीसती हुई दरिद्रा भी जब सुख स्वप्न और विरह मिलन के गीत गाते हैं, जिनमे उनके जीवनगत दुःख दारिद्रय का लेश भी नही रहता—इसे चाहे हम यथार्थ की पूर्ति कहें, चाहे उससे पलायन की वृत्ति पर तु वह परिभाषातीत मन की एक आवश्यक प्रेरणा तो है ही।

छायावादी को वायवी अथवा काल्पनिक मानने वालो को उत्तर देते हुए वे लिखती हैं—छायावाद सूक्ष्म है तो इसी अर्थ मे कि उसने जीवन को दृश्य के अतिरिक्त भी कुछ माना है और काव्य का वस्तु के शरीर का नहीं आत्मा का चित्र समझा है कि तु उसने हमारी सवेदना और सौन्दर्य दृष्टि दोनो का विस्तार किया है। उसकी यथार्थवादिता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उसने सामयिक समस्याओं की उपेक्षा नही की है—राष्ट्रीय भावना तथा सामाजिक समस्याओं पर लिखी हुई उसकी लोकप्रिय मार्मिक कविताओं की कौन उपेक्षा कर सकता है ?[1]

वास्तव मे छायावाद को वायवीय कहना एक भूल ही होगी क्योंकि कवि की विकासशील काव्य-प्रेरणा मे तत्व और यथार्थ की अनकपक्षीय विवेकशीलता भी रहती है जो काव्य कल्पना को आकाशीय नही होने देती। उसमे अनुभूति का और अनुभूति मे जीवन का वजन होता है। यह वजन कवि के अनुभव का है इसमे इच्छायें और रुचियाँ होती हैं। यही कलात्मक इच्छाओं की स्फूर्तिमत्ता कलासृष्टि को स्थिर नही होने देती। इसमे भावना का नैरन्तर्य बना रहता है।[2] इसीलिए रचना मे हम मानव-जीवन की पूर्णता और प्रकृत रूप दृष्टिगोचर होता है। रचनाकार जीवन और कर्म मे पलायन न करके उसे अधिक सार्थक ढग से पकडता है। अत कलाव्यक्ति इकाई को पूर्णता देने का माध्यम है।

छायावादी काव्य प्रगतिपरक है और प्रगीतो मे कवि की सवेदना का स्वरूप उदात्त होता है। स्वानुभूति की स्थिति मे कवि का साधारणीकरण हो जाता है और अनुभूति की सम्पूर्णता प्रथम कवि मानस मे तत्पश्चात् कृति और पाठक से जुड़कर व्यापक और उदात्त हो जाती है। क्रोचे ने कलासृजन मे दो बातो पर महत्व दिया—वस्तु की अपेक्षा व्यक्ति की महत्ता और भावमूलक प्रगीतशैली। इसीलिए क्रोचे ने कला को परिभाषित करते हुए लिखा—अतरग का बहिरंग होना कला है। वह ऐसी सृजन प्रक्रिया का परिणाम है जो अनुभूति के आवेग से सचारित होती है, वह कवि के पर्यवेक्षण विचार और अनुभूति की सम्मिलित उपज का मूर्तिमान रूप है। क्रोचे ने

१ महादेवी साहित्य पृ० २१६, स० ओंकार शरद।

२ महादेवी साहित्य पृ० २१२, स० ओंकार शरद।

३ डॉ० राजेश्वरदयाल सक्सेना स्वच्छदतावादी समीक्षा और साहित्य चिंतन, पृ० २८३।

इस प्रकार कवि के उस आन्तरिक आवेग को महत्व प्रदान किया जो अभिव्यक्ति के लिए आकुल अनुभूतियो से उत्पन्न होता है।

क्रोचे की दृष्टि आत्मवादी है जिसमे मन की सभी शक्तियो पर विचार किया गया है लेकिन यह विचार दर्शन और उदात्त की भूमिका पर हुआ है। इस सौंदर्यपरक दृष्टि मे कल्पना या अन्तर्दृष्टि का महत्व प्रतिपादित हुआ है जिसमे सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से दार्शनिकता दृष्टिगत होती है और व्यवहार दृष्टि से देखने पर मानवतावादी दृष्टि का उच्चतर रूप दिखाई देता है। छायावादी काव्य को यदि इसी दृष्टि से देखा जाये तो छायावाद मानवीय मूल्य बोधो का काव्य है। छायावादी कवियो ने विश्व के आस्तिक और वैज्ञानिक चेतना सम्पन्न मूल्यो को अपनी निजी चेतना म सश्लिष्ट किया, इस आत्मचेतना ने उनके वैयक्तिक चिन्तन को उस स्तर पर पहुँचाया जहा स्थूलता की सीमाये टूट जाती है। उसम बिखराव को समेटकर व्यापक धरातल पर सचरण की क्षमता आ जाती है। जैसा कि पत ने लिखा है—"उसका व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण वास्तव म मूल्य केन्द्रित होने के कारण छायावाद ने सामूहिक जीवन सचरण को बहिर्मुखी अर्थ मे ग्रहण न कर उसके वैश्वमूल्य या अन्तर्मूल्य के अर्थ म ग्रहण किया। स्वानुभूति उसके लिए विश्वात्मा एव विश्व जीवन की अनुभूति की पर्याय बन गई।"[1]

छायावादी वेदना तत्व का दार्शनिक पहलू

हिन्दी मे स्वच्छन्दतावादी-छायावादी दर्शन का स्वतन्त्र विश्लेपण न होकर उसका अध्ययन काव्य के अन्तर्गत ही हुआ है। 'इसका प्रमुख कारण है कि भारत मे दर्शन सम्बन्धी मीमासा शास्त्रीय कोटि के चिन्तन म हुई। यहा दर्शन को शास्त्र का विपय बना दिया गया है फलस्वरूप उसकी सर्जनशील, विकासशील सभावनाओ पर कभी भी शास्त्रीय और परम्परानुमोदित दृष्टिकोण से मुक्त होकर विचार नही हो सका।

जबकि पश्चिम म स्वच्छन्दतावादी दर्शन का अपना एक विशिष्ट युग और अध्याय रहा है। श्लेगल, शिलर यहाँ तक कि काण्ट, हीगल और शापेनहावर आदि जर्मन दार्शनिको की निष्पत्तियाँ स्वच्छन्दतावादी रही है। अत हमारा प्रथम प्रयास दर्शन की स्वच्छन्दतावादी व्याख्या और उसकी विशेपताओ का अध्ययन होना चाहिए। भारत मे साख्य, योग, वेदान्त, न्याय, वैशेपिक आदि जितने भी दार्शनिक सम्प्रदाय हैं, सभी अपनी विशिष्ट विचार पद्धति और पूर्व मान्यताओ से व्याख्यायित हुए हैं। इसके अतिरिक्त मौलिक ढग से इन सम्प्रदायो का चिन्तन बन्द हो चुका है, फलस्वरूप टीका व भाष्य की शैली म हम भारतीय दर्शन का ऐतिहासिक विकास दिखाई देता है।

---

१ सुमित्रानन्दन पत छायावाद पुनर्मूल्याकन, पृ० २०।

जहाँ तक वैदिक औपनिषदिक दार्शनिक मान्यता का प्रश्न है वह पूर्णतया स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की है। उपनिषदो मे पदार्थ और ऊर्जा के रूपान्तरण की तथा उसकी प्रतीकात्मक छवियो की तथा उसके मानवीय सदर्भों की मीमांसा हुई है। वैदिक और औपनिषदिक दर्शन मे पदार्थ और ऊर्जा के बहुरूपान्तरित दृश्यो अर्थात् ब्रह्माड और प्रकृति के रहस्यो की जिज्ञासाएँ निहित है।

यदि मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति को ध्यान में रखकर उपनिषद् चिन्तन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि मनुष्य संकेन्द्रित विश्व प्रक्रिया सोद्देश्य है। तटस्थता और निरुद्देश्यता तो स्थिति मुक्त दशा है क्योंकि मनुष्य ही स्थिति का प्रतीक बोध है, आकृति चेतना है, स्पन्दन लीला की समन्वित वाली ऊर्जा सघटना है। उपनिषद् शैली सधानात्मक है, काव्यात्मक नही। तार्किक विश्लेषण और स्पष्टीकरण के द्वारा उपनिषद् के अनुसधित्सुओ ने जीवन का शोधन किया है। जीवन है स्थिति, यह स्थिति है बोध और बोध है दिक्काल की रचना, जो ज्ञानमय पुरुष है। दूसरी ओर इस स्थिति बोध का व्यापार, उसकी लीला का प्रकाशन है मनोमय कोष-स्थिति अथवा बोध का परिवेश है आनन्दमय पुरुष। वही से सृजन और वही से निष्पत्ति होती है—कुछ घटता-बढता नही। परम ऊर्जा मे सृजन और निष्पत्ति लीलामय क्रीडा के अतिरिक्त और कुछ नही है। यह लीलामय क्रीडा ही मनुष्य के लिए है, उसकी निधि है, सस्कृति है, मनुष्यता है, अत उपनिषद् विचार मनुष्य निरपेक्ष नही।[1] अत मनुष्य की नैसर्गिक दार्शनिक जिज्ञासाओ का सहज और गभीर रूप हम वेदान्त मे देखते हैं।

यह सैद्धान्तिक दृष्टि न केवल भारतीय तत्त्वचिन्ता का मूल्य रही है बल्कि भिन्न प्रकार की शैली मे पश्चिमी चिन्तन मे भी दिखाई देती है। काट और हीगल मे भाववादी आदर्श का अखण्ड और परम-आत्म का जो स्वरूप दिखाई देता है उसे वेदान्तिक सन्दर्भों मे देखा जा सकता है।

अत यदि वैदिक, औपनिषदिक दर्शन की स्वच्छन्दतावादी व्याख्या करे तो दार्शनिक चिन्ता की प्रवृत्ति आवयविक हो जायगी, उसमे व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हो जायगी। आत्मा और प्रकृति के नैसर्गिक चेतन सम्बन्धो का तारतम्य पैदा होगा और इस तरह मनुष्य और ब्रह्माड के सन्दर्भों की एक नयी शुरुआत हो जायेगी। इस प्रकार हम वेदान्त को आधुनिक भौतिक विज्ञान के निकट ला सकेंगे, तथा आधुनिक युग की चिन्तन प्रक्रिया मे उसे भूमिका भी दे सकेंगे।

जहा तक आधुनिक हिन्दी प्रदेश के जीवन दर्शन का प्रश्न है वह पूर्णतया स्वच्छन्दतावादी है अर्थात् उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी के भारतीय चिन्तन मे जितनी भी नवीनता और मौलिकता दिखाई देती है वह न केवल परम्परावादी दृष्टि

१ डा० राजेश्वरदयाल सक्सेना काव्य दर्शन और सौन्दर्यबोध, पृ० ३१।

से पृथक करने वाली है बल्कि उन तमाम शास्त्रीय नियमों, आचरणों, मिथकों और प्रतीकों से अलग करती है जिनके फलस्वरूप चिंतन रुक गया था और एक प्रकार की निष्क्रियता और जड़ता-सी आ गयी थी। यदि हम भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एक विशिष्ट आध्यात्मिक विचार एवं पुर्नजागरणमूलक आन्दोलन से प्रेरित था, ऐसा समझें तो एक ओर दयानन्द सरस्वती की आर्यदृष्टि दूसरी ओर विवेकानन्द का वेदान्तिक व्यवहारवाद, एक ओर रामकृष्ण की लोक कल्याणवादी वैष्णवी भावना, दूसरी ओर गांधी की अहिंसामूलक सामाजिक दृष्टि। एक ओर टैगोर की रहस्यमूलक जिज्ञासाएँ, दूसरी ओर तिलक में गीता के रहस्यमूलक आत्मवादी दृष्टिकोण की प्रखरता आदि भारतीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन के ऐसे पहलू हैं जिनका तत्कालीन समाज और लोक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

समूचे द्विवेदी युग में जहाँ पुर्नजागरण की नीतिमूलक आदर्शवादी मान्यताएँ फलीभूत होती हैं, जिनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी थी वहीं छायावादी युग में अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के आत्मवादी दर्शन का स्वरूप उद्घाटित होता है। अतः समूचे छायावादी आन्दोलन को यदि व्यापक आधार दें और उसके राष्ट्रीय सामाजिक पहलुओं को देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि समूचा नवजागरण स्वच्छन्दतावादी छायावादी प्रवृत्ति का था और इस अर्थ में वह मौलिक और भविष्य की संभावनाओं से परिपूर्ण था।

दयानन्द सरस्वती, टैगोर, विवेकानन्द आदि सभी ने इसी नवजागरण को आधुनिक भारतीय जीवन दर्शन के अनुकूल बनाया। 'छायावादी कविता में हम इसी स्वच्छन्दतावादी जीवनदर्शन की अभिव्यक्ति पाते हैं। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य ने अपने लिए एक मानवतावादी दृष्टि का विकास किया जिसमें उन्होंने मध्ययुगीन धार्मिकता का विरोध करते हुए एक नई नैतिकता की तलाश की। इसे वे धर्मनिरपेक्ष बनाना चाहते थे और यद्यपि उनमें आस्तिकता का भाव मौजूद है पर वहाँ भक्तिमार्गी सम्पूर्ण समर्पण का आग्रह नहीं है। उन्होंने धर्म, ईश्वर के स्थान पर एक नयी नैतिकता को पाना चाहा जिसमें आदर्शवादी आध्यात्मिक दर्शन है। इसीलिये निराला वेदान्त, प्रसाद शैव-दर्शन और पन्त अरविन्द दर्शन में विशेष रुचि लेते हैं। दर्शन में इन कवियों की रुचि साम्प्रदायिक न होकर, उसी उच्च मानवीय सदाशयता से जुड़ी हुई है, जिसका प्रकाशन भारतीय नवजागरण के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर में देखा जा सकता है।'[1]

हिन्दी के इस स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन में सांस्कृतिक चेतना के गहरे सस्पर्श हैं। (जो हमें छायावादी-रहस्यवादी विचारधारा में मानववाद के रूप में परिलक्षित होता है)। विभिन्न दर्शनों जैसे प्रसाद ने शैवदर्शन, निराला वेदान्त और पन्त ने अरविन्द दर्शन को स्वीकारते हुए भी उसे व्यावहारिक जीवन से जोड़ा और

---

१ डा० प्रेमशंकर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० १२५।

समष्टिकल्याण, मानवना अथवा सर्वात्मवाद का प्रश्रय दिया। सास्कृतिक चेतना के कारण ही ये कवि अतीत और दशन के स्वरूप रूप की ओर उन्मुख होते हैं और उसे एक नयी गति, नूतन अथ प्रदान करते हैं और इस विशेषता के साथ कि दर्शन उन पर हावी नहीं होता। छायावाद के सभी कवियों ने दर्शन और काव्य में ऐक्य स्थापित किया। दर्शन उनकी सजन प्रक्रिया में बाधक नहीं होता बल्कि रचना को और अधिक शक्तिशाली बनाकर आनत्य प्रदान करता है।

वेदान्त और बौद्धधम दशन का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। यही कारण है कि छायावादी कवियों पर वदान्त के साथ बौद्ध धर्म दर्शन का गहन प्रभाव परिलक्षित होता है। विशेषकर प्रसाद और महादेवी वर्मा पर। बौद्ध धम दशन के अनुसार सब कुछ अनित्य है यह जगत और यह सारी सृष्टि अनित्य है, इसी को क्षणिकवाद भी कहा गया है। बौद्धों के अनुसार जो सत् है वह भी क्षणिक है। इस तरह सत्तामात्र में नाश निहित है। ससार की प्रत्यक वस्तु क्षणभगुर है। बौद्ध धर्म दशन के दु खवाद के चार आय सत्य है—

१—'दु खम्' अर्थात् ससार दु खो से परिपूर्ण है।

२—'दु ख समुदय' अर्थात् इन दु खों के पीछे कारण है।

३—'दु ख निरोध' अर्थात् सासारिक दु ख का निरोध हो सकता है।

४—'दु ख निरोध-गामिनी प्रतिपत्' अथात् दु खो के निरोध का उचित उपाय या माग है। बुद्ध के शब्दों में—'जीवन दु खदायी है, प्रिय का वियोग दु खदायी है और कोई उत्कृष्ट आकाक्षा जिसकी पूर्ति न हो सके वह भी दु खदायी है।' बुद्ध पूछते हैं—हे भिक्षुओ! बताओ कि चार महासागरों में जो जल है वह अधिक है या तुम्हारे इन आँसुओं का जल अधिक है जिसे तुमने अपनी इस दीघ यात्रा में इधर-उधर भटकते हुए बहाया है और इसीलिये बहाया है कि जो तुम्हारे हिस्से में मिला है उससे तुम्हें घृणा है और जो तुम्हें प्रिय है वह तुम्हारे हिस्से में नहीं आया ।[1]

पाश्चात्य विचारदशन में जीवन को इसीलिए दु खपूर्ण माना गया कि उसका सचालन नियति की क्रूर शक्ति से होता है एक विवेकशून्य तृष्णा और अचेतन की अधप्रेरणा से उसकी गतिविधि सचालित होती है। क्षणभगुर और जीवन को दु खपूर्ण मानते हुए जमन दार्शनिक शापनहावर का विचार है कि मनुष्य अन्य प्राणियों से अधिक असतुष्ट और दु खी रहता है क्योंकि वह जीवन भर अपने मन में नाना प्रकार की इच्छाएं किया करता है। जीवन अधी चाह के अतिरिक्त कुछ नहीं है और जन्म से मृत्यु ही श्रेष्ठ है।[2] टामस हार्डी तो वेदना और दु ख को ही मनुष्य के सच्चे मित्र के

1 A B Keith Buddhish Philosophy P 56 57

2 F A Lea The tragic Philosopher, P 34

रूप मे स्वीकार करता है। क्षणभगुर जीवन की निरर्थकता की उपमा देते हुए शेक्सपियर ने एक स्थल पर लिखा है—जीवन चलती छाया है, उस बेचारे अभिनेता की भाँति जो कुछ घटे रगमच पर अपनी तडक-भडक दिखाकर विस्मृति के गर्त म समा जाता है उस मूर्ख पागल की बकवास है, जिसम न कोई सार है न तत्व।

छायावादी काव्य के अतर्गत प्रसाद ने अपनी रचनाओ मे वेदना के उदात्त और उच्चतर मूल्यो को रचा। यद्यपि प्रसाद की Tragedy आनदवाद मे पूर्ण होती है किन्तु उनका काव्य 'वेदना पकिल' है[1] और इस वेदना को बौद्ध धर्म दर्शन से और अधिक सुदृढता प्राप्त हुई। प्रसाद के नाटक अजातशत्रु, राज्यश्री आदि म स्पष्ट रूप से बौद्ध धर्म दर्शन का प्रभाव मिलता है। यद्यपि प्रसाद के सभी नाटक सुखात है किन्तु नाटक के ऊपर दु ख की छाया आदि से अत तक पडी रहती है और उसके मूल म एक करुण चेतना सुख की तह मे छिपी हुई अनिवार्यत मिलती है। प्रा० शिलीमुख के अनुसार प्रसाद के नाटको की सुखात भावना प्राय वैराग्यपूर्ण शाति होती है। इसका कारण उनके जीवन की वही करुण जिज्ञासा है, जो उनके प्राणो को सदैव विलोडित करती थी।[2] बौद्ध दर्शन के चितन ने इस करुणा को अधिक तीखा कर दिया था जिसके परिणामस्वरूप प्रसाद म नियतिवादिता अथवा भाग्यवादिता दिखाई पडती है। 'अशोक की चिंता' नामक कविता म सुख के क्षणिक होने, जीवन म क्षणभगुरता, दु ख के शाश्वत होने की व्यजना है—

इस नील विषाद गगन मे
सुख चपला सा दु ख घन मे।[3]

जब मानव जीवन वेदना, दु खो और कष्टो से परिपूर्ण है तो फिर हर मनुष्य बुद्ध की भाति जीवन से विरक्त क्यो नही हो जाता? इसका उत्तर देते हुए प्रसाद लिखते हैं—'दु खमय मानव जीवन है, उसे अभ्यास पड जाता है इसलिये सबके मन म विराग नही होता।[4] प्रसाद की प्रौढ विचारधारा मे बौद्धधर्म की इस भावना का स्थान क्रमश कम होता गया। 'एक घूट' म वे कहते हैं—'मैं उन दार्शनिको से मतभेद

१ प्रसाद का जीवन, बौद्ध विचारधारा की ओर उनका झुकाव, चरम त्याग-बलिदान वाले करुण कोमल पात्रो की सृष्टि उनके साहित्य म बार बार अनुगुजित करुणा का स्वर आदि प्रमाणित करेंगे कि उनके जीवन के तार इतने सधे और खिंचे हुए थे कि हल्की सी कम्पन भी उनमे अपनी प्रतिध्वनि पा लेती थी।

—महादेवी वर्मा स्मृतिचित्र, पृ० २१, प्र० स० १९७०।

२ डा० नगेन्द्र आस्था के चरण, पृ० ४४१।

३ जयशकर प्रसाद—लहर, पृ० ३२।

४ जयशकर प्रसाद—राज्यश्री, पृ० ६५।

रखता हूँ जो यह कहते आये हैं कि संसार दु खमय है और दु ख के नाश के उपाय सोचना ही पुरुषार्थ है।'

वस्तुत प्रसाद ने अपना द्वदवादी जीवनदर्शन का प्रतिपादन शैवदर्शन के संदर्भ में प्रस्तुत किया। आत्मा का विशुद्ध अद्वय स्वरूप आनन्दमय है और इस अद्वयता में सम्पूर्ण प्रकृति सन्निहित है, यह प्रसाद जी की सुदृढ धारणा और उपपत्ति है। आदि वैदिककाल म इस आत्मवाद के प्रतीक इन्द्र थे और यही धारा शैव और शाक्त आगमा मे आगे चलकर बही। यही विशुद्ध आत्मदर्शन था जिसमे प्रकृति और पुरुष की द्वयता विलीन हो गई थी। शैव और शाक्त आगम मे जो अन्तर है, उसे भी प्रसाद जी ने प्रगट किया है—कुछ लोग आत्मा को प्रधानता देकर जगत को 'इदम्' को 'अहम्' म पर्यवसित करने के समर्थक थे, वे शैवागमवादी कहलाये, जो लोग आत्मा की अद्वयता का शक्ति तरग जगत मे लीन होने की साधना मे थे, वे शाक्तागमवादी हुए। आगम का यही विशुद्ध अद्वय प्रवाह परवर्ती रहस्यात्मक काव्य मे प्रसारित हुआ। प्रसाद जी रहस्यात्मक काव्यधारा को ही आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति की मुख्यधारा मानते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि यह शक्ति और आनन्द प्रधान धारा थी, जिसमे आदर्शवाद, यथार्थवाद, दु खवाद आदि बौद्धिक विवेकात्मक आदि प्रसाद जी के मत से अनात्मवादी का स्वीकार नही था। दु ख या करुणा के लिए वहाँ भी स्थान था किन्तु यहा वेदना आनन्द की सहायक और साधक बनकर ही रह गयी।[1]

प्रसाद का आनन्दवाद सर्ववाद के सिद्धात पर स्थित है जो वैदिक अद्वैत सिद्धात भी कहा जा सकता है। यह सर्ववाद शकराचार्य द्वारा प्रवर्तित अद्वैत सिद्धात से, जिसमे माया की सत्ता स्वीकार की गयी है, भिन्न है। सर्ववाद प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो का आत्मसात करता है जबकि शकर का मायावाद केवल निवृत्ति पर आश्रित है। भारतीय दर्शन की वह धारा जो वेदो म समस्त दृश्यजगत को ब्रह्म से अभिन्न मानकर चली है क्रमश शैवागम ग्रन्थो म प्रतिष्ठित हुई। प्रसाद ने शैवागम से ही इस सर्ववादमूलक आनन्दवाद को ग्रहण किया है। मायावाद का लक्ष्य निवृत्ति द्वारा उतना सिद्ध नही होता जितना विश्व को कर्मस्थल मानने मे। और यह कर्म भी सम वयात्मक कर्मभूमि पर होता है।

इससे स्पष्ट है कि वेदना प्रसाद की मूल चेतना से ही सम्बन्धित है, उस पर केवल बौद्धधर्म का प्रभाव नही है। वेदना और करुणा की भावना उन्हे समष्टि से जोड़कर व्यापक और विस्तृत सन्दर्भों म उनके दर्शन का प्रस्तुत करती है। प्रसाद ने दर्शन को व्यावहारिक और काव्य भूमिका दी। वे स्वच्छन्दतावादी काव्य की मूल्यपरक सौन्दर्य दृष्टि को ज्ञान के परिप्रेक्ष्य म प्रस्तुत करते हैं।

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी काव्य कला और अन्य निबन्ध, प्राक्कथन, पृ० ६-१०।

महादेवी वर्मा पर बौद्धधर्म का गहन प्रभाव पडा। महादेवी के अनुसार दु ख ही सुख का सच्चा मापक है, यहा तक कि आखो मे व्याप्त जीवन के मधु का मोल दुखिया आँसू है। सुख अत मे स्वय ही दु ख से कहता है—

कह रहा है सुख अश्रु से तू है चिरतन प्यार मेरा।

सुख-दु ख के प्रति महादेवी की दृष्टि सतुलनमयी है—

मेरे ओ विहग से गान

सो रहे उर नीड मे मृदु पख सुख दु ख के समेटे।[१]

फिर भी दु ख के प्रति उनका आग्रह अधिक है। यह दु ख की भावना उनके काव्य म करुणा, पीडा से रूप म व्यक्त हुई। करुणा को महादेवी ने जीवमात्र के लिए स्वीकार किया। इस करुणा की खोज म सम्पूर्ण प्रकृति सलग्न है—'ढूढने करुणा मृदुल घनघोर कर तूफान हारे।[२] बौद्ध धर्म दर्शन के अतगत करुणा की लोकात्तर स्थिति का प्रतिपादन है—'उत्तम महायान अर्थात् माध्यमिक मत मे करुणा का मूल कुछ नही है अर्थात् उसकी पृथक सत्ता नही है। इस मत म शून्यता से अभिन करुणा ही बोधि का अग है। एक दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता है कि शून्यता जैस लोकोत्तर है वैसे ही करुणा भी लाकोत्तर है।[३]

महादेवी के गीतो म व्याप्त करुणा की गहराई उनके गीतो को रागात्मक लालित्य और उदास भावोमेष प्रदान करती है। महादेवी न वेदना को सापेक्ष रूप म ग्रहण किया है क्योकि वस्तुत वेदना वैश्वीन सौन्दयानुभूति का ऋणात्मक पक्ष है, जो चतना विकास की विषमताओ मे निगूढ और निगूढतर होती चली जाती है। यह दुख-मयी प्रतीति होने पर भी वस्तुत सीमाओ के उच्छेलन एव असीम की अनुभूति की मधुर प्रेरिका है। इस कल्याणी शीतल ज्वाला म मगल का चिर निवास है।[४]

गौतम बुद्ध की विचारधारा निराशावादी है। इसका खडन करते हुए महादेवी का कहना है कि बुद्ध की विचारधारा म एक निराश दु खवाद है ऐसा आक्षेप सुना जाता है। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना उचित है कि प्रत्येक कल्याण प्रतिपादक की स्थिति दोहरी होती है। वह अकल्याण की स्थिति को मानता है अयथा कल्याण की चर्चा ही व्यर्थ हो जायेगी। इस तरह अकल्याणमूलक दु ख पर केंद्रित रहने क कारण उसकी दृष्टि दु खदायिनी रहे, यह स्वाभाविक है पर यह स्थिति कल्याण म बदल सकती है—इसमे अटूट विश्वास रहता है अयथा उसके प्रयत्न मे कोई सार्थकता

---

१ महादेवी वर्मा रश्मि, पृ० १।

२ महादेवी वर्मा यामा, पृ० २३८।

३ डा० सुषमा पाल छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३०५ पर उद्धृत।

४ डा० सियाराम सक्सेना 'आह', पृ० १।

ही नही रहगी । इस तरह कल्याण पर आश्रित उसका दृष्टिकोण आशावादी रहेगा ।[१]

वस्तुत महादेवी पर बौद्ध दशन का प्रभाव सास्कृतिक दृष्टि से ही अधिक है । उनकी दाशनिक मान्यताएँ औपनिषदिक परम्परा के ही अधिक समीप है ।[२] बौद्ध धर्म अज्ञान और तृष्णा को दु ख का कारण मानता है जो उपनिषदो म मिलने वाली अविद्या और काम क रूपान्तर हैं । महादेवी बौद्धदर्शन की ईश्वरीय अनास्था भावना को स्वीकार करत हुए भी य मानती है कि उसम भारतीय सस्कृति के अश सुरक्षित हे—इश्वर क अस्तित्व म अनास्थावादी होने के कारण य दोनो (बौद्ध और जैन) दृष्टिकोण नास्तिक कहलाए, किन्तु फिर भी यह सत्य है कि जनकल्याण, सौहार्द, विश्वबधुत्व, प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा एव मैत्री का भाव पर्याप्त प्रखर रहा है और इन गुणो क रूप मे ही उनम भारतीय सस्कृति का अश सुरक्षित रहा है ।[३]

छायावादी कवियो म निराला और पन्त पर बौद्धदशन का प्रभाव नही है । 'परिमल' की 'प्रताप के प्रति' कविता म प्रताप का मानवीकरण करत हुए निराला उस पर गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व का आरोप करत है ।[४] किन्तु निराला की बौद्धदशन म आस्था नही है । बौद्धदशन का विरोधमूलक मानकर वे उसका निषेध करते है और, और धर्म तो रहे बौद्धधर्म हो क्या जड स उखड गया ? पाठक याद रखे कि यह भी विरोधमूलक था ।[५] सुमित्रानन्दन पन्त ने भी 'बुद्ध क प्रति' रचना म गौतम बुद्ध के प्रति श्रद्धा व्यक्त की—

> आओ शान्त, कान्त, वर सुन्दर, धरो
> धरा पर स्वर्णयुग चरण
> विचरो नवयुग पाथ, बुद्ध वन, जन, भू मन करता
> अभिवादन
> अणु रचना के प्रति मच पर हो, मुखान्त मानव-युग
> का रण,
> तुमसे नव-मनुष्य स्पश या विप हो अमृत मृत्यु नव-जीवन !

किन्तु पत पर बौद्धदशन का प्रभाव नही है ।

जहा तक छायावाद मे निहित रहस्य भावना का प्रश्न है उसमे निहित

---

१ महादेवी वर्मा महादेवी साहित्य, पृ० २३-२४ ।
२ डा० सुषमा पाल छायावाद की दाशनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३३८ ।
३ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, पृ ११ ।
४ सूयकान्त त्रिपाठी निराला परिमल पृ० ८७ ।
५ निराला पबध प्रतिमा पृ० २६ ।

'जिज्ञासा' वृत्ति को ही लेकर करुणा की पृष्ठभूमि पर छायावादी कवि रहस्य भावनाओं को निर्मित करता है। छायावाद और रहस्यवाद केवल काव्यशैली ही नही है—वे वस्तुत कवि दृष्टियाँ (Poetic out look) हैं। छायावाद के रूप में कवि की दृष्टि 'स्व' के आत्म तत्व पर, सृष्टि (प्रकृति) की सम्पूर्ण भूमिका मे पडती है। पहले मे वह समस्त सृष्टि (प्रकृति) को अपनी सत्ता से एकीभूत, एक प्राणतत्व से स्पन्दित देखता है और दूसरे मे वह अपनी सत्ता को, परोक्ष सत्ता का तद्रूप, तदाकार और प्रतिरूप देखता है। पहले मे द्रष्टा कवि को वर्तमान जीवन ही प्रत्यक्ष होता है किन्तु दूसरे मे अतीत और अनागत भी द्रष्टा कवि का प्रत्यक्ष हो जाता है। पहले म दृष्टि प्रत्यक्ष जगत की सूक्ष्म चेतना ही पर केन्द्रित रहती है, दूसरे म दृष्टि परोक्ष जगत के परोक्ष तत्व की भावना और अनुभूति पर। छायावाद मे प्रकृति के जड चेतनतत्व की प्रकृति आवश्यक है, ईश्वर की प्रतीति नहीं परन्तु रहस्यवाद म प्रकृति म, विश्व और मानव म परोक्ष तत्व की प्रतीति आवश्यक है।[1]

जब तक यह रहस्यवाद भावना से सम्बन्धित है तब तक वह काव्य की सीमा है किन्तु जब वह ज्ञान अथवा बुद्धिपक्ष स सम्बन्धित हो जाता है तो उसम दर्शन की प्रधानता हो जाती है। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावाद मे इसके भावात्मक रूप को प्रधानता मिली तो जर्मन के स्वच्छन्दतावाद में इसकी ज्ञानपरक भूमिका को। जहाँ तक हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद का प्रश्न है, इसमें इन दोनों रूपों को ही प्रधानता मिली। वस्तुत रहस्यानुभूति भावावेश की आँधी नही वरन् ज्ञान के अनन्त आकाश के नीचे अजस्र-प्रवाहमयी त्रिवेणी है, इसी से हमारे तत्वदर्शक बौद्धिक तथ्य को हृदय का सत्य बना सके। बुद्धि जब अपनी हार के क्षणों में थके स्वर में कहती है—अविज्ञात विजानताम् (जानने वालो को वह ब्रह्म अज्ञात है), तब हृदय उसकी हार को जय बनाता हुआ विश्वास भरे कण्ठ से उत्तर देता है—तत्वमसि (तुम स्वय वही हो)।[2]

प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद की अपनी दार्शनिक एव काव्य परम्परा है, परन्तु *मध्ययुग म मिथ्या रहस्यवाद का इतना प्रचार हुआ है कि सच्चे रहस्यवादी* पुरानी चाल की छोटी मडलियो मे लावनी गाने और चग खडकाने लगे। प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद का आधार अद्वैत धर्मभावना है। आधुनिक रहस्यवाद के सम्बन्ध मे उनका मत है कि 'वर्तमान हिन्दी मे इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यजना होने लगी है, वह साहित्य मे रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है, इसमे अपरोक्ष सहानुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से सम्बन्ध करने

---

१ डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० २८९।

२ महादेवी साहित्य, पृ० २५३।

का सुदर प्रयत्न है। हाँ विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर इसमे सम्मिलित होता है।[१]

छायावादी कवियो की ये विशेषता है कि उनके काव्य म रहस्यवाद की पृथक अस्तित्व न होकर उसकी आद्यन्त अन्तर्व्याप्ति है। महादेवी वर्मा ने 'रहस्यवाद' की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की और रहस्यवाद को छायावाद के दूसरे सोपान के रूप मे प्रस्तुत किया।[२] उनके अनुसार कविता के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उचित है या नही, इसका निर्णय व्यक्तिगत चेतना ही कर सकेगी। जो कुछ स्थूल, व्यक्त, प्रत्यक्ष और यथार्थ नही है यदि केवल वही अध्यात्म से अभिप्रत है, तो हमे वह सौन्दर्य, शील, शक्ति, प्रेम आदि की सभी सूक्ष्म भावनाओ म फैला हुआ अनक अव्यक्त सत्य सम्बन्धी धारणाओ मे अकुरित, इन्द्रियानुभूति प्रत्यक्ष की अपूर्णता स उत्पन्न उसी की परोक्ष रूप भावना मे छिपा हुआ और अपनी उर्ध्वगामी वृत्तिया से निर्मित विश्वबन्धुता मानवधर्म आदि के ऊँचे आदर्शों से अनुप्राणित मिलेगा। यदि परम्परागत धार्मिक रूढियो को हम अध्याय की सज्ञा देते हैं, तो उस रूप म काव्य मे उसका महत्व नही रहता।[३]

स्पष्ट है कि छायावाद मे जिस रहस्य भावना की व्यजना हुई वह प्राचीन रहस्यवादी परम्परा (कबीर, जायसी, अन्य सूफी भक्तो) से भिन्न स्वच्छन्दतावादी सत्वा पर आधारित है जिसमे ज्ञान और भाव की सम्मिलित भूमि है। स्वय निराला ने प्रबन्ध प्रतिमा म लिखा है—'इस वतमान धर्म' मे यह इशारा भी है कि पौराणिक रूपको या छायाओ से परे जो सत्य है वही हम रहस्यवादिया या छायावादियो का लक्ष्य है। इन छायाओ के आधार से सत्य को प्राप्त करने वाले लोग छायावादी कहे जा सकत हैं पर छाया उनका 'वाद' नही—उनका वाद सत्य है, अत वे सत्यवादी हैं।[४]

प्रसाद की रहस्यभावना मे काव्यीय सौन्दय है। उसमें एक अतीन्द्रिय आनन्दानुभूति तथा अतरगी समरसता की गहराई है। 'कामायनी' तो प्रसाद की अन्तदृष्टि का महाकाव्य ही है, इसकी रचना प्रसाद ने Comlogical vision (विश्वछदस की सहज प्रज्ञा) से की है अर्थात् समूची सृष्टि के रागरजित लयात्मक स्वरूप की एकतात्मकता को उसमे आकृतिबद्ध किया गया है, कामायनी मे एक नूतन संस्कृति और दृष्टा अर्थात् हृदय, बुद्धि और मन तथा ज्ञान और क्रिया के एकनिष्ठ

---

१ जयशकर प्रसाद काव्य, कला और अन्य निबन्ध, पृ० ६८।

२ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० २३७।

३ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० २४०।

४ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ५६।

और समन्वित रूप है। साथ ही कामायनी मे मनुष्य की जीवन यात्रा का एक नया शिल्प उद्घाटित हुआ है। मनुष्य की सार्थकता उसकी सृजनशील सम्भावनाओ मे होती है। मनुष्यत्व और कुछ नही सर्जनशील संस्कार है जो सार्वजनिक, सम्प्रदायमुक्त होता है। इस दृष्टि से प्रसाद ने एक Secular being की संस्कारशीलता का विधान रचा है जो नये युग के अनुकूल है। उनकी रहस्य भावनायें और प्रतीक तो इस विधान के रचना के मात्र एक पक्ष रहे हैं।

निराला की रहस्य भावना मे जिज्ञासा की अपेक्षा समर्पित आस्था का भाव अधिक है। अद्वैत की पृष्ठभूमि पर निराला अपनी रहस्यात्मक अथवा दार्शनिक भावनाओ को अभिव्यक्त देते हैं, पर 'दर्शन' की विवृत्ति उनके काव्य का स्थूल नही होने देती। दर्शन का व्यावहारिक पक्ष ही उनके काव्य मे प्रस्तुत हो सका है।[1] उनकी रहस्यात्मक भावनाओं मे कोरी कल्पना न होकर कर्म को प्रधानता देने वाला मानसस्पर्श प्राप्त होता है। स्वामी रामकृष्ण और विवेकानन्द का अत्याधिक प्रभाव निराला पर पड़ा, फलस्वरूप उनके प्रारम्भिक काव्य मे यह प्रभाव व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है—'परिमल' और 'गीतिका' अनामिका में निराला की आध्यात्मिक रहस्यवादी, प्रार्थनापरक दार्शनिक रचनाएँ मिलती हैं। उनके अस्ताचल रवि जल छल-छल, हुआ प्रात प्रियतम तुम जावोगे चले, तुम्हो गाती हो अपना गान व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान, आदि पदो मे रहस्यवादी संकेत हैं। निराला के अंतिम काव्य चरण 'अर्चना' (१९५० ई०), 'आराधना' (१९५३ ई०), 'गीतगुंज' (१९६४ ई०) और 'सांध्यकाकली' मे तो आध्यात्मिकता का भाव बहुत ही गहरा है।

यद्यपि वे तत्वत आत्मज्ञान के अनुभवकर्ता हैं परन्तु उनमे भावात्मकता की भी विशिष्टता रही है। 'अधिवास' शीर्षक कविता मे उन्होने करुणा की महत्ता पर

---

१ प्रत्येक दर्शन का एक तात्विक पक्ष होता है जिनमे सृष्टि की चिरंतन और आधारभूत जिज्ञासाओ पर विचार किया जाता है और बुद्धिसम्मत निष्कर्ष दिये जाते हैं। इस तत्वदर्शन के साथ उक्त दर्शन का एक व्यवहार पक्ष होता है जिसमे इन सासारिक तथ्यो का समावेश होता है जो उस तत्वदर्शन की उपलब्धि मे सहायक होते हैं अथवा जिनके द्वारा उनकी उपलब्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। इसे कुछ लोग दर्शन का साधना पक्ष भी कहते हैं परन्तु अनेक बार ये साधनाएँ इतनी वैयक्तिक हो जाती है कि उनका भावात्मक और सामाजिक पक्ष क्षीण पड जाता है। इसीलिए 'साधना' शब्द की अपेक्षा 'व्यावहारिक' शब्द का प्रयोग हमे अधिक उपयुक्त जान पडता है। इस व्यावहारिक दर्शन की सीमा मे कवि का नैतिक और मानवतावादी पक्ष सम्मिलित रहा करता है।—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी महाकवि निराला—पृ० १४१।

बन दिया। तुम और मैं' शीर्षक कविता में उन्होंने आत्मतत्व और परमात्मतत्व के सम्बन्ध की सुन्दर झाँकी दिखाई है। 'यह कहा जाता नहीं है कि निराला की निष्ठा भारतीय ज्ञानमार्ग की ओर अधिक थी अथवा भक्ति की ओर। हम यह कहते हैं कि सिद्धान्त में वे ज्ञानमार्गी थे, परन्तु व्यवहार में उन्हें आत्मनिवेदन और प्रपत्ति भी उतनी ही प्रिय थी। जगत के मिथ्यात्व की धारणा भी उन्हें ज्ञानमार्गियों से ही प्राप्त हुई थी, परन्तु यह जगत ब्रह्म की ज्योति से ज्योतित होने पर फिर सुन्दर और निरस्पृहणीय बन जाता है यह धारणा भी उनके काव्य में बार-बार व्यक्त हुई।'[1]

यही धारणा उन्हें मानवता से जोड़ती है और इसीलिए रहस्यवादी अथवा आध्यात्मिक प्रभाव के बीच भी उनकी स्वच्छन्दतावादी भावनायें सक्रिय हैं और इसी सक्रियता से वे भिक्षुक, दान, विधवा, वासन्तराग जैसी काव्य रचनाएँ करते हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त की रहस्य भावनाओं में 'अज्ञात' के प्रति जिज्ञासा का भाव अधिक है और इसीलिए पन्त सीमित ज्ञान की सीमा को तोड़कर प्रकृति और जगत के प्रति जिज्ञासु की तरह देखते हैं।[2] वस्तुजगत से उनका परिचय भी प्रकृति के माध्यम से हुआ, वे व्यक्ति, जाति और राष्ट्र की सीमाओं के बोध के पूर्व प्रकृति के व्यापक संस्कार से परिचित हो गये थे। जीवन के क्रम में प्रायः लोग छोटी इकाइयों से विस्तार की ओर जाते हैं, किन्तु पन्त-विस्तार से परिचित होकर जीवन-बोध की ओर उतरे हैं। बोध की इस उल्टी प्रक्रिया ने उनके काव्य को अधिक वस्तुमुखी बना दिया।[3] यही कारण है कि 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि तूने कैसे पहचाना' की जिज्ञासा की व्यापक परिणति 'स्वर्ण धूलि' में साधक और ईश्वर के अभेदत्व की अनुभूति में होती है—

> 'फिर न रह गए मैं, तुम, ईश्वर, जीव या कि भव बंध
> मैं सबमें, सब मुझमें—केवल मात्र परम आनन्द।'[4]

पन्त की रहस्यभावना दर्शन और चिन्तन पर आधारित है, किन्तु कवि होने के कारण उनकी समस्त भावाभिव्यंजना में भावना और कल्पना की प्रचुरता है साधना की नहीं। पन्त की रहस्य भावना में एक दुर्बलता अवश्य है कि तत्वतः रहस्यवाद केवल व्यक्तिगत अनुभूति पर आधारित होता है, कल्पना पर नहीं, पन्त के रहस्य चित्रण में कल्पना की तो नहीं संभावना का तत्व निस्सन्देह अधिक है। कतिपय स्थलों पर गम्भीर रहस्यभावना के अनुरूप उदात्तता नहीं आ सकी। रहस्यभावना

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी महाकवि निराला, पृ० १४४।

२ डा० नामवरसिंह छायावाद, पृ० ३०।

३ डा० कमलाप्रसाद पाण्डेय छायावाद, प्रकृति और प्रयोग, पृ० ८३।

४ सुमित्रानन्दन पंत स्वर्णधूलि, पृ० २४।

व्यक्ति सापेक्ष होने के कारण अनुभववर्ती की भौतिक दृष्टि से संयुक्त होता है। लेकिन पंतकाव्य मे औपनिषदिक ऋषियो की विभिन्न अनुभूतियों का तद्वत चित्रण उपलब्ध हो जाता है। पंत ने वर्तमानयुगीन मनीषिया से श्री अरविन्द की साधना सम्बन्धी अनेक उपलब्धियो को यथावत प्रस्तुत कर दिया है। भौतिकता के-अपेक्षाकृत अभाव से उनकी रहस्यानुभूति का प्रभाव क्षीण पड गया है।

वस्तुत पंत आरम्भ से ही अपने काव्य मे अधिक अन्तर्मुखी और कल्पनाशील रहे हैं और यही अन्तर्मुखता उन्हे दर्शन और अध्यात्म की ओर ले जाती है, उनकी प्रौढ रचनायें, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, युगपथ, उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, अतिमा, लोकायतन म हमे इसी दर्शन और अध्यात्म की स्वाभाविक-परिणति दृष्टिगत होती है।[1]

महादेवी वर्मा का काव्य हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की आध्यात्मिक चेतना को रहस्यवादी समापन देने की चेष्टा है और इसमे कवियित्री की वैयक्तिक अनुभूतियाँ किसी रोमानी कवि की तरह मौजूद है।[2] महादेवी मे रहस्यवादी चेतना अपने उत्कर्ष रूप मे होने पर भी उसमे स्वच्छन्दतावादी—छायावादी तत्व मौजूद हैं। जनकल्याण की लालसा वेदना करुणा की भावना को उन्होंने अपनी सौन्दर्यचेतना, प्रकृति के प्रति जिज्ञासा की भावना, मिलन विरह अनुभूतिया के बीच जीवन्त रखा है। महादेवी के रहस्यवाद मे बुद्धि की अपेक्षा हृदय की प्रधानता है फलस्वरूप उनके गीत रागात्मकता पर आधारित है जिनमे 'मैं' की सत्ता विद्यमान है और यही कारण है कि उनके गीत लौलिक-अलौलिक का भ्रम उत्पन्न करते हैं और इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी कहना पडा—'वेदना की जो अनुभूतियाँ उन्होंने रखी है—वे कहाँ तक वास्तविक अनुभूतियाँ हैं नही कहा जा सकता।'[3]

छायावाद के अन्य कवियो मे रामकुमार वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। उनका काव्य छायावादी मूल्यबोधो से अनुप्राणित है। छायावादी-रहस्य भावना, कल्पनाशीलता, वेदना-प्रियता आदि तत्वो से रामकुमार वर्मा का काव्य अछूता नही है। मानव जीवन की नश्वरता और क्षणभगुरता से कवि 'अज्ञात' की ओर उन्मुख होकर उससे सहारे की कामना करता है।[4]

---

१ डा० सुषमा पाल छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २०१।
२ डा० प्रेमशकर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ३६१।
३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२०।

४ जानता हूँ इस जगत मे
फूल की है आयु कितनी
और यौवन की उभरती
सास म है वायु कितनी
इसलिये आकाश का विस्तार
मारा चाहता हूँ
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।
—डा० रामकुमार वर्मा आकाशगगा, पृ० ११।

वस्तुत छायावादी काव्य अध्यात्म का काव्य न होकर संस्कृति का काव्य है जिसमे अलौलिकता, लौलिकता, आध्यात्मिकता और भौतिकता का नवीन मनुष्यत्व की दृष्टि से संयोजन है। जैसा कि आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है—'यदि हम मनुष्य का उसके चरम लक्ष्य के भीतर से देखें तो 'छायावादी कविता इन मानव उपलब्धियों से परिपूर्ण रही है।'' एक ओर जहाँ उनके लौलिक प्रेम मे वासना की पंकिलता का अभाव है, वही दूसरी ओर उनका अलौलिक प्रेम वायवी और निष्प्रभ नही है। यह भावना अपने उदात्त, मार्मिक और संश्लिष्ट रूप मे जुड़कर उनके काव्य को समष्टिगत व्यापकता प्रदान करता है।

महादेवी वर्मा

- काव्यानुभूति
- काव्याभिव्यजना
- रहस्यवाद

काव्यानुभूति

कार्ल जुग ने अपने निबन्ध 'मनोविज्ञान और साहित्य' (Psychology and Literature) मे अनुभूति के मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक स्तरो का विवेचन करते हुए कलात्मक सर्जन सम्बन्धी कुछ निष्कर्ष दिये हैं। कला की रूपरेखा का निर्माण किस प्रकार होता है, वे कौन से उपादान हैं जिनसे मनुष्य कला सजन मे लग जाता है आदि प्रश्नो पर विचार करते हुए जुग ने य माना कि "कला एक विपय मनोदशा की अभिव्यक्ति होती है, लेकिन वह सहेतुक और चेतन रूप मे रूपामित होती है। कला एक जीवित मनुष्य की समूची सृजनशील दशाओ को व्यक्त करती है।"

कार्ल् जुग ने कलाकार के मानस का दो स्तरो पर अध्ययन किया है—एक मनोवैज्ञानिक स्तर, दूसरा सहज प्रज्ञान का स्तर (Visionary)। मनोवैज्ञानिक स्तर म रचनाकार काव्य के स्रोतो की, प्रभावो की भूमिका पर रहता है और मानवबोध के क्षेत्र से उपलब्ध सामग्री का उपयोग करता है एव उस सामग्री को काव्यात्मक अनुभूति के उच्चतर स्तर पर ले जाता है। सहज प्रज्ञान के स्तर पर कलाकार का एक Attitude बन जाता है, उसकी एक आकृति बन जाती है तथा वह Orgaric हो जाता है। इस प्रकार जुग ने "मनोविश्लेपण की दृष्टि से काव्यानुभूति के स्त्रोत और अभिव्यजना प्रकाशन तक का वणन किया।"[1]

इसी प्रकार क्राचे ने अनुभूति की जैविक और अखण्ड दृष्टि का प्रतिपादन किया। क्रोचे ने काव्यानुभूति को दार्शनिकता पर विचार करत हुए स्पष्ट किया कि अनुभूति विशिष्ट सामान्य नही होती, उसमे प्रकाशन की पूर्व क्षमता होती है। प्रकाशन विहीन अनुभूति मानस-तरग अथवा वैयक्तिक व्यामोह होती है। प्रकाशन की सहजता से मुक्त होने पर अनुभूति सार्वजनिक हो जाती है। अनुभूति के नैसर्गिक मूल्य (Intrinsic value) स्वय प्रकाशमान हुआ करते हैं और इसीलिए अनुभूति स्वत पूर्ण, प्रभावपूर्ण एव आवेगयुक्त हुआ करती है। अत यह अखण्ड अनुभूतियोग उस रस दशा का द्योतक है, जिसमे किसी प्रकार का विग्रह या व्याघात नही होता। इसीलिए जब हम अनुभूति के मनोविज्ञान की बात करते हैं तब अनुभूति रचना की समस्त परिस्थितियाँ हमारे सम्मुख होती हैं और जब हम अनुभूति दर्शन की बात करते हैं तो उसकी सरचना, उसकी प्रकृति और उसके निर्वाह की परिस्थितिया हमारे सामन रहती ह जो अनुभूति के स्तर पर काव्य की मूलचेतना को उद्घाटित करती है।

---

1 MELVIN RADER—A Modern Book of Esthetic—P 142, 1960

स्वच्छन्दतावादी अनुभूति में कार्ल जुंग और क्रोचे की मान्यतायें घटित होती दिखाई पड़ती हैं। क्रोचे ने प्रथम बार काव्य-कला को प्रगीतात्मक अभिव्यंजना अर्थात् पूर्ण अभिव्यंजना कहा। अतः वह मानता है कि सहजानुभूति ही प्रगीतात्मक होता है। इस दृष्टि से देखने पर महादेवी की सम्पूर्ण रचनादृष्टि में अनुभूति योग का आदर्श समवाय दिखाई देता है। *क्रोचे का सिद्धांत महादेवी पर पूर्ण रूप से लागू होता* है। उनकी कविता में अखण्ड चेतना का, संश्लिष्ट भावानुभूति और जैविक कोटिय आत्मानुभूति का आग्रह रहा है। क्रोचे की अद्वैतमूलक सौन्दर्य चेतना की महादेवी के काव्य में प्राप्य है तथा क्रोचे का अनुभूति दर्शन ही महादेवी की रचनादृष्टि को बाँध सका है।

वस्तुतः महादेवी की कविता आत्ममुग्ध एवं प्रगीतात्मक है। उसमें संगीतिक लयों का सतुलित उतार-चढ़ाव तथा उनका अतरंग समाहार दृष्टिगत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे काव्य रचना के क्षणों में महादेवी का अनुभूति *योग उन्हें* उस अखण्ड भूमिका पर ले जाता है जहाँ सम्पूर्ण बाह्य जगत तिरोहित हो जाते हैं और एक प्रकार की एकचित्तता अथवा रसदशा उपस्थित हो जाती है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के समीक्षा संस्कारों पर बोसांके और क्रोचे का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है। इन दोनों ही सौन्दर्यशास्त्रियों ने अनुभूति और कल्पना के मार्ग से काव्य-सौंदर्य का विश्लेषण किया। ये दोनों ही आदर्शवादी सौंदर्यशास्त्री हैं और दोनों में ही भावमूलक आदर्शवाद तथा प्रत्ययमूलक आदर्शवाद की उत्तमोत्तम *दशाओं का उद्घाटन हो सका है। रचनाकार अपनी अनुभूति के क्षणों में जिस सत्य* का साक्षात्कार करता है, वह सार्वजनिक और सार्वकालिक होता है तथा सापेक्षित स्थितियों से मुक्त होता है, इसीलिए वह शुद्ध और परम कोटि का होता है।

स्वच्छन्दतावादी सौंदर्य चिन्तन में अनुभूति के इस परम साक्षात्कार की सर्वाधिक महत्ता है। यह अनुभूति व्यंजना भंगी होती है और इसमें अधिकतम पूर्वग्रह तथा अन्य प्रकार की धारणाओं से मुक्त होता है। इसे हम व्यक्तित्व का परिच्छालन कह सकते हैं जो व्यक्तित्व का शुद्ध रूप होता है। यह व्यक्तित्व अनुभूति के रूप में हुआ करता है। वस्तुतः यह चिन्मय अखंडता अथवा चेतन अखंडता ही आत्म-साक्षात्कार की द्योतक होती है। यही रसदशा आनन्ददशा है। इसके बाहर जो कुछ भी है वह व्यवहारदशाओं के भीतर का है, काव्येतर है। इसी अर्थ में कविता जैविक चेतना सम्पन्न ईकाई को प्राप्त करती है।

स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य में विस्तार की अपेक्षा घनत्व को महत्व दिया जाता है। अनुभूति जो विशिष्ट क्षणों को प्रकाशित करती है, लघु अथवा क्षणजीवी हुआ करती है। जिसमें द्युति, दीप्ति अथवा स्वतः प्रसूत आत्मप्रकाशन अथवा अनन्त होता है, जिसे दीर्घकालिक विस्तार में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। स्वच्छन्दतावादी

सौन्दर्य चेतना में समूचा जीवन नहीं बल्कि जीवन के कुछ क्षण मूल्यवान हुआ करते हैं। समूचे जीवन से रत्न की तरह हम अपने कुछ क्षणों को मूल्यवान बना लिया करते हैं और इन्हीं विशिष्ट क्षणों में हम अपने समूचे जीवन को सार्थक बना लेते हैं। अतः रचनाकार जितने अधिक क्षणों तक घनत्व को धारण कर सकता है, उसका साक्षात्कार कर सकता है वही उसकी उपलब्धि हुआ करता है। अतः स्वच्छन्दतावादी दृष्टि में विस्तार की अपेक्षा घनत्व अधिक महत्वपूर्ण हुआ करता है।

महादेवी वर्मा की काव्यानुभूति को यदि हम कार्लयुंग के दो स्तरों पर देखने की कोशिश करें तो स्पष्ट होता है कि उनकी रचनाओं के स्रोतों में समूची भारतीय दर्शन की परम्परा मुख्य रूप से वैदिक और बौद्धधर्म दर्शन की चिंता क्रियाशील व सक्रिय रही है तथा इसी मार्ग से उन्होंने मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और समाज के महत् तथा मूल्यपरक दृष्टिकोण को अपनाया है। स्रोतों के रूप में अनुभूति के दार्शनिक पहलू वेदान्त, बौद्ध धर्म दर्शन, सूफियों का रहस्यवाद, निर्गुण निराकार की दृष्टि, वैष्णवी रागात्मकता और व्यक्तिमूलक तथा सर्वात्मवादी रहस्यचिंतन में मिलते हैं।

काव्यानुभूति की समग्रता अथवा उसकी समूची आकृति का अध्ययन रचना में होता है जबकि रचना का अध्ययन रचनाकार के मन का अध्ययन होता है। महादेवी की रचना में उनकी अनुभूति के व्यक्त आधारों का यदि अध्ययन करें तो स्पष्ट होगा कि उनकी कविता का जीवन दर्शन क्या है और उनकी काव्यीय संस्कृति के मूलभूत आदर्श क्या हैं? वास्तव में कविता का जीवन दर्शन और उसकी संस्कृति से ही कविता के मानवीय चरित्र का निर्माण होता है। अतः महादेवी के समूचे काव्य का मानवीय चरित्र कैसा है, इसका आकलन काव्यीय संस्कृति और उसके प्रमुख दर्शन से ही हो सकता है।

अनुभूति की दार्शनिकता का अर्थ काव्य-भावना की तात्त्विकता से है, जो रचना या कृति के मनोविज्ञान में भारतीय अध्यात्म का निरूपण करती है। यही तो आत्मवादी दृष्टि का स्वरूप है जो आदर्शवादी दृष्टि के वैयक्तिक गुणों से युक्त होता है। हीगेल ने प्रगीत काव्य की चेतना पर विचार करते हुए उसे मानवीयता की वैयक्तिक चेतना (Personal spirit of humanity) कहा है वह आभ्यंतरिक जीवन को काव्यात्मक मानता है।[1] वस्तुतः हर युग में कविता और दर्शन के सम्बन्धों पर विचार-विमर्श इसलिए होता है कि कविता में जीवन अपनी सम्पूर्ण मान्यताओं के संश्लिष्ट

1 Subjective type of poetry is bound to finds its own poems, in a province of its own—the human spirit descends from the objectivity of the object into its own private it peers into its particular conscious life Hegel Philosophy of Fine Arts, Vol IV, P 193

और समाहित रूप म उद्घाटित होता है तथा दशन म ही सश्लिष्ट विचारधारा का विकास होता है किन्तु यदि युग जीवन म विषमतायें हो और उसके रचनात्मक आधार स्पष्ट न हो तब किसी भी सहज और उच्चदर्शन की सभावना नही रहती । कविता धम का विषय बनकर चिन्तन से हटने लगती है ।

प्राचीन चिन्तन मे दशन ही मूल्यचितना का विषय था । दर्शन के अन्तगत ही मनोविज्ञान, काव्य और कलाओ के अतिम सत्य को निरूपित किया गया अर्थात् मनोविज्ञान और काव्य कलायें जिनमे मनुष्य के लौकिक आचार व्यवहार तथा सौंदर्य मूल्यो की अभिव्यक्ति होती है इसकी पूर्णता और अखण्डता तक पहुँचाने के लिये दर्शन की आवश्यकता रही है परन्तु आधुनिक युग म आकर मुख्य रूप स रिनासायुग के बाद मनोविज्ञान, काव्य, कलायें स्वतत्र एव स्वायत्त होने गये और इसीनिए काव्य और कलाओ म वादो, आन्दोलना का प्रादुर्भाव हुआ ।

अग्रेजी स्वच्छन्दतावाद में आकर पुन अनुभूति, कल्पना और चिन्तन का ऐक्य हुआ और दर्शन ही काव्य का मुख्य प्रेरक हो गया है । इस युग म ब्लेक, वर्डसवर्थ, कालरिज, शेली आदि ने रहस्यवादी और दार्शनिक काव्य रचनायें प्रस्तुत की । वस्तुत स्वच्छन्दतावादी साहित्य की प्रकृति रचनाकार के मानस अनुभव की देन होती है । इसीलिय उसमे रूपगत नियमबद्धता की अपेक्षा कलावस्तु के अनियमित विस्तार की सभावना होती है और यही कारण है कि कला का रूप प्रगीतात्मक होता है । कल्पना को पृष्ठाधार बनाकर स्वच्छन्दतावादी सौदर्य का दाशनिक पृष्ठभूमि का निर्माण होता है । स्वच्छन्दतावादी कवि ने मानव जीवन की आत्मगत एव अध्यात्मपरक मनोदृष्टि का अपना भावजगत माना । सत्य को उच्चाशयी भाव म निरूपित करके रहस्यदर्शी स्वच्छन्दतावादी कवि, परोक्षानुभूति का ही आनन्द की सीमा स्वीकार करता है ।

स्वच्छन्दतावादी दृष्टि की इस उदात्तता और मानवीयता की ओर ले जाने का श्रेय रूसो की विचारधारा को है, जिससे प्रभावित होकर कवियो ने प्रकृति और मानव की एकात्मकता स्थापित की । प्रकृति को चेतन मानकर उनकी मानवीय दृष्टि का आदर्श रूप विकसित हुआ और यही पर उनका व्यक्तिगत बोध दार्शनिक आनन्द-बोध के रूप मे प्रगट हुआ ।

विलियम ब्लेक ने 'सास आफ इनोसेन्स' और [illegible] आफ एक्सपीरियन्स म
अपनी रहस्य भावनाओ की [illegible] की । उनका [illegible] था कि कवि को
अपनी शक्ति दिव्यात्माओ [illegible] और [illegible] लिए कवल
एव माध्यम के रूप मे हो [illegible] मत था [illegible] अनन्तता का
ससार है, यह एक दैविक [illegible] सब [illegible] प्रवेश
करते हैं । यह कल्पना का [illegible] है
जगत सीमि[illegible]

विद्यमान रहता है जिसकी छायामात्र हम उस प्राकृतिक प्रकृति के दर्पण में देख पाते हैं। समस्त वस्तुयें अपने अनित्य रूप में उस परमरक्षक परमात्मा के स्वरूप, अनश्वरता की अमरबेला अथवा मानवीय कल्पना में विद्यमान रहता है।"

वर्ड्सवर्थ को 'प्रकृति कवि' माना जाता है, उसका समस्त काव्य ही मानो प्राकृतिक चेतना की उपस्थापना है। उसने अपने समूचे सृजन में मानवीय अध्यात्म को प्रमुखता दी है। कालरिज ने काव्य की मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा है—कोई कवि उस समय तक महान् कवि नहीं है जब तक वह एक दार्शनिक न हो।[२] कालरिज ने मन को सक्रिय और सृष्टिकर्त्ता के प्रतिबिम्ब के रूप में स्वीकार किया और यही कारण है कि वह मन की कल्पनाशक्ति को ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति के समान मानता है।[३] उसने यह घोषित किया कि 'कल्पना' इस सीमित आत्मा में असीम ब्रह्म की शाश्वत् सृजन शक्ति की ही आकृति है।[४]

शेली का काव्य इस बात का द्योतक है कि कल्पना के सहारे कवि अनन्त और अप्रत्यक्ष जगत में प्रवेश कर सकता है। शेली यह स्वीकार करता है कि कल्पना के अनुशासित मनस्तत्व में सृजन और रूपनिर्माण की शक्ति होती है। कल्पना को वह दैवीय शक्ति मानता है, उसकी सौंदर्यधारणा प्लेटो की भाँति आदर्शवादी है जो उत्तम क्षणों में सहानुभूति में संवेदना के माध्यम से अपने को प्रकाशित करती है।[५] शेली के मतानुसार कविता जीवन के शाश्वत सत्य का प्रतिबिम्ब होती है। उसके समीप और असीम को एकसूत्र में बँधने की विलक्षण क्षमता होती है।

हिन्दी का छायावादी काव्य भी अनुभूति, कल्पना और चिन्तन की त्रिवेणी है। उसमें दर्शन विशिष्ट अनुभूति का महत्व रहा है। प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी ने छायावाद में दर्शन, समाज और कला की त्रियसन्तुलन एकता स्थापित

---

१ डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा रोमासवादी साहित्य शास्त्र, पृ० ११ पर उद्धृत।

२ "No man may yet a great poet philosopher For Poetry is the bolasson and the fragrancy af all human knowledge, human thoughts, human passions, emotions language
कालरिज 'बायोग्रेफिया लिटरेरिया', पृ० १६, भाग २।

३ वही, पृ० १६।

४ वही, पृ० २०२।

५ His haunting sense of ideal beauty unknown but manifesting itself frogmentarity through the opotures of sense and in the intitutions of his noblest moments PMLA Val II No 8 Sept 1937, P 911

धार समाहित रूप म उद्घाटित होता है तथा दशन म ही सश्लिष्ट विचारधारा का विकास होता है किन्तु यदि युग जीवन मे विषमतायें हो और उसके रचनात्मक आधार स्पष्ट न हो तब किसी भी सहज और उच्चदर्शन की सभावना नही रहती। कविता कर्म का विषय बनकर चिन्तन से हटने लगती है।

प्राचीन चिंतन मे दशन ही मूल्यचिंतना का विषय था। दर्शन के अन्तगत ही मनाविज्ञान, काव्य और कलाओ के अतिम लक्ष्य को निरूपित किया गया अर्थात् मनाविज्ञान और काव्य कलायें जिनमे मनुष्य के लौकिक आचार व्यवहार तथा सादय मूल्यो की अभिव्यक्ति होती है इसको पूर्णता और अखण्डता तक पहुँचाने के लिय दर्शन की आवश्यकता रही है परन्तु आधुनिक युग म आकर मुख्य रूप से रिनासायुग के बाद मनाविज्ञान, काव्य, कलाये स्वतत्र एव स्वायत्त होत गये और इसीलिए काव्य और कलाआ म वादा, आदोलना का प्रादुर्भाव हुआ।

अग्रेजी स्वच्छन्दतावाद मे आकर पुन अनुभूति, कल्पना और चिन्तन का ऐक्य हुआ और दर्शन ही काव्य का मुख्य प्रेरक हो गया है। इस युग म ब्लेक, वर्डसवर्थ, कालरिज शेली आदि न रहस्यवादी और दाशनिक काव्य रचनायें प्रस्तुत की। वस्तुत स्वच्छन्दतावादी साहित्य की प्रवृत्ति रचनाकार के मानस अनुभव की देन होती है। इसीलिय उसम रूपगत नियमबद्धता की अपेक्षा कलावस्तु क अनियमित विस्तार की सभावना होती है और यही कारण है कि कला का रूप प्रगीतात्मक होता है। कल्पना को पृष्ठाधार बनाकर स्वच्छन्दतावादी सौंदय का दाशनिक पृष्ठभूमि का निर्माण होता है। स्वच्छन्दतावादी कवि ने मानव जीवन की अन्तगत एव अध्यात्मपरक मनोदृष्टि को अपना भावजगत माना। सत्य को उच्चाशयो भाव म निरूपित करके रहस्यदर्शी स्वच्छन्दतावादी कवि, परोक्षानुभूति को ही आनन्द की सीमा स्वीकार करता है।

स्वच्छन्दतावादी दृष्टि की इस उदात्तता और मानवीयता की ओर ले जान का श्रेय रूसो की विचारधारा का है, जिससे प्रभावित होकर कवियो ने प्रकृति और मानव की एकात्मकता स्थापित की। प्रकृति को चेतन मानकर उनकी मानवीय दृष्टि का आदर्श रूप विकसित हुआ और यही पर उनका व्यक्तिगत बोध दार्शनिक आनन्द-बोध के रूप मे प्रगट हुआ।

विलियम ब्लेक ने 'साग्स आफ इनोसेन्स' और 'साग्स आफ एक्सपीरियन्स' म अपनी रहस्य भावनाआ की अभिव्यक्ति की। उनका यह दृढ विश्वास था कि कवि को अपनी शक्ति दिव्यात्माआ द्वारा मिलती है और वह उनकी अभिव्यक्ति क लिए केवल एक माध्यम के रूप मे होता है। उनका मत था 'कल्पना का ससार अनन्तता का ससार है, यह एक दैविक जगत है, जिसमे हम सब अपनी दैहिक मृत्यु के पश्चात् प्रवेश करत हैं। यह कल्पना का जगत अनन्त और शाश्वत है इसके विपरीत यह भौतिक जगत सीमित और नश्वर है। इस शाश्वत जगत म उस प्रत्येक वस्तु का सत्य रूप

विद्यमान रहता है जिसकी छायामात्र हम उस प्राकृतिक प्रभुत्व के दर्पण में देख पाते हैं। समस्त वस्तुयें अपने अनित्य रूप में उस परमरक्षक परमात्मा के स्वरूप, अनश्वरता की अमरवेला अथवा मानवीय कल्पना में विद्यमान रहता है।[१]

वर्ड्सवर्थ को 'प्रकृति कवि' माना जाता है, उसका समस्त काव्य ही मानो प्राकृतिक चेतना की उपस्थापना है। उसने अपने समूचे सृजन में मानवीय अध्यात्म को प्रमुखता दी है। कालरिज ने काव्य की मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा है—कोई कवि उस समय तक महान् कवि नहीं है जब तक वह एक दार्शनिक न हो।[२] कालरिज ने मन को सक्रिय और सृष्टिकर्त्ता के प्रतिबिम्ब के रूप में स्वीकार किया और यही कारण है कि वह मन की कल्पनाशक्ति को ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति के समान मानता है। उसने यह घोषित किया कि 'कल्पना' इस सीमित आत्मा में असीम ब्रह्म की शाश्वत् सृजन शक्ति की ही आवृत्ति है।[३]

शेली का काव्य इस बात का द्योतक है कि कल्पना के सहारे कवि अनन्त और अप्रत्यक्ष जगत में प्रवेश कर सकता है। शेली यह स्वीकार करता है कि कल्पना के अनुशासित मनस्तत्व में सृजन और रूपनिर्माण की शक्ति होती है। कल्पना को वह दैवीय शक्ति मानता है, उसकी सौंदर्यधारणा प्लेटो की भाँति आदर्शवादी है जो उत्तम क्षणों में सहानुभूति में संवेदना के माध्यम से अपने को प्रकाशित करती है।[५] शेली के मतानुसार कविता जीवन के शाश्वत सत्य का प्रतिबिम्ब होती है। उसके ससीम और असीम को एकसूत्र में बाँधने की विलक्षण क्षमता होती है।

हिन्दी का छायावादी काव्य भी अनुभूति, कल्पना और चिन्तन की त्रिवेणी है। उसमें दर्शन विशिष्ट अनुभूति का महत्व रहा है। प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी ने छायावाद में दर्शन, समाज और कला की नियसंकलन एकता स्थापित

---

१ डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा रोमांसवादी साहित्य शास्त्र, पृ० ११ पर उद्धृत।

२ No man may yet a great poet philosopher For Po^try is the bolasson and the fragrancy af all human knowledge, human thoughts, human passions, emotions language
कालरिज 'बायोग्रेफिया लिटरेरिया', पृ० १६, भाग २।

३ वही, पृ० १६।

४ वही, पृ० २०२।

५ His haunting sense of ideal beauty unknown but manifesting itself frogmentarity through the opotures of sense and in the intitutions of his noblest moments PMLA Val II No 8 Sept 1937, P 911

की। छायावादी की दार्शनिक भूमिका आधार राष्ट्रीय जागरण और नूतन जीवन मूल्यों की सृष्टि मे था। इस दार्शनिकता का सम्बन्ध सामाजिक मान्यताओ और राजनैतिक गतिविधियो से भी रहा है। महात्मा गांधी की अहिंसात्मक भावना से लेकर तिलक की प्रखर राष्ट्रीय भावना का योग भी इस चिन्तन मे रहा। व्यक्ति और समाज की बन्धनमुक्ति ही इस चिन्तन का आदर्श था।

भारतीय इतिहास दर्शन की भूमिका देकर छायावादी कविता के चरित्र को पुष्ट करने का कार्य प्रसाद ने किया। यद्यपि प्रसाद की अनुभूति में वेदना तत्व की मूलवर्ती स्थिति रही है किन्तु प्रसाद की वेदना के उच्च उदात्त और आध्यात्मिक पहलू ही उल्लेखनीय हैं। प्रसाद ने दु खमूलक जीवन दर्शन का प्रतिपादन अवश्य किया है पर तु शवानन्दवाद के सन्दर्भ से दु खवाद की निवृत्तिमूलक पृष्ठभूमि हटती गयी है। कारण रूप दु ख की निष्पत्ति आनन्द मे होती है। आनन्द तत्व की अभिव्यजना के कलात्मक या ललित आधार इतने सश्लिष्ट हैं कि उनमे किसी तरह का आरोपण नही दिखाई देता। वेदना और आन द की एकरसता ही प्रसाद की कविता का मूल प्रतिपाद्य है। यह एकरसता नैसर्गिक काव्य प्रकृति का परिणाम है, उसके प्रकाशन में कही कोई त्रुटि नजर नही आती। इस तरह प्रसाद की काव्यानुभूति के मनोदार्शनिक पक्ष अन्तर्गुम्फित और सश्लिष्ट हैं।

छायावाद में निराला ने रस की वस्तुपरक भूमिका पर आन दतत्व को चिन्तनपरक और व्यावहारिक स्थितियों को स्पष्ट किया। निराला मे भावो और विचारो की गहराई है। जीवन के यथार्थ सघर्षों, सन्दर्भों ने उन्हें दार्शनिक दृष्टि से युक्त किया किन्तु दार्शनिक तटस्थता ने उनके काव्य को अ तर्मुखी नही होने दिया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला को हिन्दी काव्य का प्रथम दार्शनिक और सचेत कलाकार के रूप मे स्वीकार[1] किया। निराला पर एक ओर वेदान्त का प्रभाव था, दूसरी ओर रवीन्द्र नाथ टगोर से भी वे प्रभावित थे। आर्य समाज और विवेकानन्द की विचारधारा से भी वे प्रभावित हुए। विवेकान द की विचारधारा ने उनके दर्शन को व्यावहारिक और कार्यशील बनाकर आशावादी स्वर प्रदान किया—

जीवन की विजय सब पराजय
चिर अतीत आशा सुख दुख तन्मय
सबमे तुम, तुममे सब तन्मय।[2]

किन्तु विभिन्न विचारधाराओं से प्रभाव ग्रहण करते हुए निराला के काव्य मे अद्वतवादी स्वर प्रमुख है—

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी महाकवि निराला।
२ निराला परिमल, पृ० ७१।

तुम तुंग हिमालय और मैं चंचल गति सुरसरिता
तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कान्त कामिनी कविता ।[१]

उनका यह अद्वैतवाद लोकहिताय हैं। उन्होंने विश्व मानवतावाद का जो सन्देश दिया, उसमें रहस्यवाद और भौतिकवाद तथा विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय है। निराला के दर्शन की अभिनव भावना मानवीय धरातल पर आधारित है।

छायावादी चिन्तन मे प्रकृति विषय भूमिका होने के साथ ही साथ कवि की चेतना में व्याप्त तत्वरूप भी है। इस तत्व रूप प्रकृति का कवि से दोहरा सम्बन्ध है। एक ओर वह रहस्यवाद की ओर प्रेरित करती है, दूसरी ओर इससे मानवीय प्रवृत्तियो का सम्यग्र निरूपण भी देखने को मिलता है। चेतना रूप मे यह वैयक्तिक रूप मे सामने आती है और वस्तुरूप मे निर्वैयक्तिक रहती है। कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने इसी प्रकृति को अपनी रहस्यमयी भावनाओं की अभिव्यक्ति का पट बनाया। वे प्रकृति में विराट चेतना की अनुभूति करते हैं—

(१) एक छवि के असख्य उडुगन
एक ही सबमे स्पन्दन।[२]

(२) एक शक्ति से बहते, जग प्रपच यह विकसित
एक ज्योतिकर से, समस्त जड चेतन निर्मित।[३]

प्राकृतिक रहस्यपरक इसी जिज्ञासा शैली ने आगे चलकर पन्त को समाज और मानव से जोड़ा और यही विचारधारा बहिर्चेतना की तुलना में अन्तर्जगत की ओर मुड़कर उनकी आध्यात्मिक और दार्शनिक पीठिका को सुदृढ़ करती है। उनकी इस दाशनिक पीठिका के निर्माण मे वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, रवीन्द्र और अरविन्द दर्शन ने विशेष योग दिया। उनकी दार्शनिक दृष्टि प्रारम्भ मे अनुराग, सौन्दर्य और जिज्ञासा की रहस्यमयी भावना के रूप मे सामने आती है। किन्तु उत्तरोत्तर उसमें चिन्तन और विवेक की प्रधानता हो जाती है जो उन्हें क्रमश मन स्तर पर ले जाती है, जहाँ उसमे भूतदृष्टि और आध्यात्म का सतुलन होता है और जिसे पत ने मानवता के लिए आवश्यक घोषित किया है।

महादेवी की गीत रचना मे काव्य और दर्शन का अद्भुत सम्मिश्रण है। दार्शनिक विचार से युक्त साहित्य जीवन के गम्भीर मूल्यो, उसकी उदात्त स्थिति और स्थिरता का प्रतीक होता है। दर्शन कवि को ज्ञानभूमि पर ले जाता है और अध्यात्म या रहस्य उसे अनुभूति प्रदान करता है और इसीलिए रहस्यवाद किसी भी प्रकार का

१ निराला, परिमल, पृ० २४।
२ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव, पृ० १५।
३ सुमित्रानन्दन पन्त ग्राम्या, पृ० ६६।

हो, कितनी ऊँचाई पर जो अपनी परम परिणति में तत्व-विश्लेषण और तत्व जिज्ञासा का विषय नहीं बन सकता। वह मनोमय कोष से उद्भूत किन्तु ज्ञानकोष से पीछे प्रवाहित मध्यवर्ती अनुभूति है। रहस्यानुभूति से दर्शन की तत्वगमित दृष्टि लक्षित हो जाती है। दर्शन माध्यम बन जाता है, मानव व्यवहार के निकट का भविष्य बन जाता है। इसीलिए पश्चिम में रहस्यवाद को सौन्दर्य मीमांसा का विषय माना गया है। वहाँ Absolute and Transendentalism infinite आदि पारिभाषिक शब्द रहस्य से दभ के है जो प्लेटो, प्लाटिनस से लेकर कान्ट, फिक्टे, हीगल तथा बोसांके और ब्रेडले तक नयी नयी व्याख्याओं मे प्रस्तुत हुए।[1]

महादेवी ने दर्शन को काव्य से सम्बन्धित कर उसे व्यापक रूप में देखा। उसका काव्य आद्योपरान्त रहस्य भावना से युक्त है। असीम प्रिय से मिलन विरह-पूर्ण भावनाओं की प्रारम्भिक काव्य रचनाओं में भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। मिलन की तीव्र आकांक्षा के साथ विरह के प्रति आग्रह है। क्षणिक मिलन की व्याकुल स्मृतियों के साथ मुक्ति के प्रति उपेक्षा भाव भी है। प्रकृति के कण-कण में अपने प्रिय की छवि देखने के लिए उनकी जिज्ञासा तीव्रतम होती जाती है—'अलि कैसे उनको पाऊँ' की भावना अन्त में—

> नयन पथ से स्वप्न में मिल
> प्यास मे घुल साथ मे खिल
> प्रिय मुझी मे खो गया, अब दूत को किस देश भेजूँ।[2]

मे परिणित हो जाती है।

भारतीय काव्य चिन्तन और दर्शन का प्रभाव महादेवी पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनके अपने शब्दों मे—'नीहार का अधिकांश मेरे मैट्रिक होने से पहले लिखा गया है, अतः उतनी कम विद्याबुद्धि से पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन की कोई सुविधा न मिल सकना ही स्वाभाविक था। बंगला न जानने के कारण उसकी नवीन काव्यधारा से निकट परिचय प्राप्त करने के साधनों का अभाव रहा। ऐसी दशा में मेरी काव्य जिज्ञासा कुछ तो प्राचीन साहित्य एवं दर्शन में सीमित रही और कुछ सतयुग के रहस्यात्मक आत्मा से लेकर छायावाद के कोमल कलेवर तक फैल गई और बाद में उन्ही संस्कारो के अनुकूल नवीन ज्ञान का अर्जन किया—'उस समय मिले हुए संस्कारों और प्रेरणा का मैंने कभी विश्लेषण नहीं किया है, इसलिए उनके सम्बन्ध में क्या बताऊँ। इतना निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि मेरे जीवन

---

१ डॉ० राजेश्वर दयाल सक्सेना काव्य दर्शन और सौंदर्यबोध, पृ० ३५-३६, प्र० स० १९७६।

२ महादेवी वर्मा : दीपशिखा, पृ० ८२।

ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था और आगे चलकर अध्ययन और ज्ञान की परिधि के विस्तार मे भी उसे खोया नही, वरन् उसम नवीनता पाई ।[1]

महादेवी को प्रभावित करने वाली विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओ और चिन्तन को निम्न प्रकार से रखा जाता है—

(१) वैदिक साहित्य

भारतीय दर्शन का मूल वदिक साहित्य को ही माना जाता है । वेद परिपक्व जीवन दशन के ग्रथ हैं । महादेवी पर वदिक साहित्य का अत्यधिक प्रभाव पडा । उन्होने कई वदिक उक्तियो को ज्यो का त्यो अनूदित किया है । समस्त वैदिक दर्शन का उद्देश्य अद्वैत की स्थापना है । महादेवी की रहस्यानुभूतियों का आधार वैदिक दर्शन का 'परमपुरुष' हैं जो निर्गुण, निराकार और सत्य, शिव, सुन्दर से युक्त है । वेदों में इसे इच्छा शून्य, धीर, अमृत स्वयभू, सवव्यापक तथा अनन्त इच्छा-शक्ति सम्पन्न स्वीकार किया गया । वेद मनीषियो ने उसे 'प्रकृति' मे मालौकिक कर उसे चेतन व्यक्तित्व प्रदान किया । महादेवी भी उस विराट सत्ता का 'हे सृष्टि प्रलय के चेलिगन' के रूप में सम्बोधन देती है । उस विराट से परिचय के लिए वे उत्सुक हैं—

हुआ ज्यो सूनेपन का भान
प्रथम जिसके उर मे अम्लान
और किस शिल्प ने अनजान
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण ।[2]

महादेवी पर वेदो का जो प्रभाव परिलक्षित होता है उसका कारण है— मनुष्य की प्रज्ञा की जैसी विविधता और उसके हृदय की जसी रागात्मक समृद्धि वेद साहित्य मे प्राप्त है । वह मनुष्य को न एकागी दृष्टि दे सकती है न अधविश्वास ।[3]

(२) उपनिषद् दर्शन

भारतीय दर्शन की प्रमुख आस्तिक विचारधारा का चरम रूप अद्वत दर्शन के रूप मे मिलता है । उपनिषदों मे इसी अद्वतवादी विचारधारणा का प्रतिपादन हुआ वैदिक मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए उपनिषदो म ब्रह्म, जीव और जगत का स्वरूप, ब्रह्म प्राप्ति के उपाय आदि का वर्णन मिलता है । आत्मा-परमात्मा में सम्बन्ध का निरूपण विभिन्न रूपको के माध्यम से उपनिषदो मे वर्णित हैं । श्वेताश्वेतरोपनिषद् में शरीर रूपी पीपल के पेड पर हृदयरूपी नीड मे आत्मा-परमात्मा रूपी पक्षियो का

---

१ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि, भाग-१, पृ० ३६, ३४ ।

२ रश्मि पृ० ६५ ।

३ महादेवी वर्मा महादेवी साहित्य, पृ० ६२ ।

चित्रण[1] कठोपनिषद् में धूप और छाया के माध्यम से आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध निरूपण आदि के द्वारा उपनिषदों ने आत्मा के अजर-अमर और अविनाशी रूप में चित्रित किया है। माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा को ही ब्रह्म माना गया है[2]

उपनिषदों के समान ही महादेवी ने भी द्वैत को अपनाना का पर्याय मानकर अश अशी रूप में असीम और ससीम के सम्बन्धों का निरूपण किया—

(१) मैं तुमसे हूँ एक-एक
जैसे रश्मि प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न
ज्यों घन से तड़ित विलास।[3]

(२) तुम विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान
जिसे खींच लाते अस्थिरकर
कौतूहल के बाण।[4]

उपनिषदों में मनोभौतिक जगत के अद्वैत सम्बन्धों पर गम्भीर चिन्तन हुआ है अत अभिव्यक्ति (Expression) और प्रकाशन (Manifestion), प्रक्षेपण और प्रतिबिम्बन (Reflectiou), आभास (Appearace), यथार्थ (Reality), घनामूर्त्त (Concrect), रूपान्तरण (Transformation) के अतिरिक्त शान्त और अनन्त सम्बन्धी शली के बहुत से प्रश्न उठाए गये हैं तथा उत्तर दिया गया है।[5] और इसीलिए प्रसिद्ध दार्शनिक शापेनहावर का कथन है—ससार में उपनिषदों के समान उपयोगी और उदात्त बनाने वाला अन्य स्वाध्याय नहीं। वे उत्कृष्ट ज्ञान के परिणाम हैं।[6]

---

१ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समान वृक्ष परिसस्वजाते
तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्य—
नश्नन्यो अभि चाक शाति ॥६॥ —श्वेताश्वेतरोपनिषद् अध्याय—४

२ माण्डूक्योपनिषद्, श्लोक १ से ५ तक, पृ० २३४ से २३८।

३ रश्मि, पृ० ५७।

४ रश्मि, पृ०।

५ डा० राजेश्वरदयाल सक्सेना काव्य दर्शन और शब्द सौन्दर्य बोध, पृ० ७२।

६ In the world there is no study so beautiful and so elevation as that of upanishad
tnat are a product of the highest wisdom
—महादेवी साहित्य पृ० २६०

किन्तु महादेवी वर्मा अपने काव्य मे अद्वत को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नही कर पाती । दार्शनिक ऐक्य को स्वीकार करती हुई भी महादेवी वर्मा काव्य मे द्वैत की स्थिति बनाये रखना चाहती है । उसका कारण है—दर्शन का द्वत ही मेरी कविता मे विरह की सज्ञा पा सकता हूँ । अद्वैत स्थिति लक्ष्य हो सकती है किन्तु उस तक पहुँच जाने पर न कवि की अस्मिता रह जाती है न गीत की सभावना । यही कारण है कि वे जगह-जगह पार्थक्य स्थापित करती है—

(१) तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं
पग विरह पथिक का धीमा
आते आते मिट जाऊँ
पाऊँ न पथ की सीमा ।[२]

(२) वह सौरभ हूँ मैं जो उडकर
कलिका मे लौट नही पाता
पर कलिका के नाते ही प्रिय
जिसको जग ने सौरभ जाना ।[३]

(३) बौद्धतम दशन

बौद्धधर्म दर्शन ने महादेवी की करुणा बहुत प्रकृति को सर्वाधिक प्रभावित किया । स्वय महादेवी के शब्दो मे—बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्म के साथ भारतीय सस्कृति मे एक ऐसा पट-परिवर्तन होता है जिसने हमारे जीवन की सब दिशाओं पर अपना अमिट प्रभाव छोडा और दूसरे देशों की सस्कृति को भी विकास की नयी दिशा दी ।[४]

बुद्ध ने अपनी साधना और अनुभव से चार आर्य सत्यो की स्थापना की थी—

१—सर्व दु खम (ससार दुःखमय है) ।

२—दु ख समुदय (दु ख का कारण है) ।

३—दु ख निरोध गामिनी प्रतिपद् (दु ख का नाश हो सकता है) ।

४—दु ख निरोध गामिनी (दु ख के नाश के उपाय हैं) ।

जीवन निश्चय ही वेदनापूर्ण है और बुद्ध का सिद्धान्त इसी के विरुद्ध

---

१ कादम्बिनी पृ० ७२, स० राजेन्द्र अवस्थी ।
४ रश्मि पृ० २१ ।
३ नीरजा पृ० ८७ ।
४ महादेवी साहित्य ।

औषधि स्वरूप है।[1] जन्म का अर्थ दुःख है, जरा का अर्थ दुःख है, रोग का अर्थ दुःख है, मृत्यु का अर्थ दुःख है। अप्रिय वस्तुओं की प्राप्ति न होना, यह भी दुःख है। जरा-मरण, राग-द्वेष, विश्वव्यापी सत्य है। ये जीवन के बेमेलपन के द्योतक हैं। असम्बद्धता की स्थिति स्वरूप है।[2] और ये सारे सत्य ही मनुष्य के जीवन को दुःख-पूर्ण बनाते हैं।[3]

बुद्ध अपने चारों ओर बिखरे हुए दुःखों का अन्त करना चाहते थे। बुद्ध ने दुःख और क्षणभंगुरता को एक माना—'जिस वस्तु को हम बड़े प्रयत्न से प्राप्त करते हैं वह क्षण भर से अधिक नहीं ठहरती। पानी के बुलबुलों के समान हमारे हृदय में वासनायें उठती हैं और जल हो जाती है। सब कुछ दुःखमय है क्योंकि सब कुछ क्षणिक है, निर्वाण में शान्ति है।[4]

बुद्ध का मुख्य उद्देश्य मानव को दुःख की समाप्ति सिखाना था और इसीलिए उनके अनुसार इच्छा न करना, तृष्णा का अन्त ही सुख है। इस दृष्टि से बुद्ध का दृष्टिकोण निराशावादी न होकर आशावादी है।[5] बुद्ध के सम्पूर्ण दर्शन को एक सूत्र में अनित्य, दुःख, अनात्म में प्रस्तुत किया जा सकता है। अनित्य क्षणवाद का द्योतक है। इस सम्पूर्ण विश्व में किसी भी वस्तु की सत्ता क्षण से अधिक स्थायी नहीं है। प्रत्येक क्षण एक वस्तु नष्ट होती है, दूसरी उत्पन्न होती है, जीवन नश्वर है यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है।

---

१ The Buddha is the ultimate source of all the true knowledge and of solvation, for his doctrine, we must remember is not delivered for the sake of imparting knowledge on its own account, but as a remady against the pain of life, which is inevitably miserable
—A B Keith Buddhist Philosophy, P 33

२ डॉ० राधाकृष्णन्—गौतम बुद्ध जीवन और दर्शन, पृ० ३१
अनुवादक—राजेश्वर गुरु

३ A B Keith Buddhist Philosophy, P 57

४ डा० देवराज दर्शन शास्त्र का इतिहास, पृ० १४६

५ "Buddha's child aim was to teach men to and their misery, and that to the laid streo on the negation of the sels in the sense that he recognized that for man to arm directly at the welfare of his self is the surest means of defeating the and of attaining that absense of desire which means, in the Buddhist view happiness" —A B Keith Buddhist Philosophy, P 57

बौद्ध दर्शन की तरह महादेवी ने भी वेदना को सर्वाधिक महत्व दिया क्योंकि वेदना में सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता होती है। महादेवी के काव्य में बौद्ध दर्शन के प्रभाव के कारण क्षणवाद, दुःखवाद, शून्यवाद आदि की भावनाएँ दृष्टिगत होती हैं—

(१) सिकताओं की ओट लिए जब बन जाता जब स्वप्नागार
आँसू से लिख लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।[1]

(२) रिता ? क्यों है देख
जीवन का अवसान ?

नीहार की प्रश्नाकुल जिज्ञासा का समाधान रश्मि में मिलता है—

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास
चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली साँस।[2]

वास्तव में पूर्ण भावातिरेक के क्षणों में रश्मि के गीतों का सृजन हुआ है। जीवन की रागात्मक भावनाओं को 'रश्मि' में जहाँ पीड़ा का शृंगार दिया वहीं गहरे एवं महान् अखण्ड अध्यात्म बोध भी दिया है। नीहार में लौकिकता के दर्शन अधिक हैं किन्तु रश्मि में भावों की उदात्तता से चिन्तन लोकोत्तर हो जाता है। जड़ और चेतन की अखण्ड सत्ता स्थापित करती हुई कवयित्री को ब्रह्म की सत्ता का संकेत प्रकृति में मिलता है और यही कारण है कि रश्मि में प्रकृति जीवन्त हो उठी है—

(१) मेघों में विद्युत् की छवि
उनकी बनकर मिट जाती
आँखों की चित्रपटी में
जिसमें मैं आँक न पाऊँ।[3]

(२) तुम अनन्त जलराशि उर्मि मैं
चपल सी अवदात
अनिल निपीड़ित जा गिरती जो
कूलों पर अम्लान।[4]

प्रतीकों और रूपकों से व्यक्त ये गीत एक विराट सत्ता के प्रति समर्पित हैं। रश्मि में चिन्तन और दर्शन की रूपरेखा निश्चित है। जीवन की क्षणभंगुरता, प्रकृति और

---

१ नीहार, पृ० ८।
२ रश्मि, पृ० १६।
३. रश्मि, पृ० ५३।
४ वही।

जीवन, सृष्टि रचना आदि दार्शनिक विषयों को बौद्ध दर्शन में 'निर्वाण' को प्रमु दी गयी है। यह निर्वाण मृत्यु अथवा उपनिषदों के अनुसार मृत्यु को पार जाने का मार्ग है—निरी मौत नहीं। बुद्ध की निर्वाण सम्बन्धी मान्यता के सम्बन्ध महादेवी लिखती हैं—'बुद्ध का निर्वाण भी जीवन के उपरान्त कोई स्थिति न है जीवन की ही ऐसी स्थिति जिसमे तृष्णा के क्षय से दुःख का क्षय हो गया है, पर दुःख का क्षय केवल अपने लिए नहीं है, इसी से बोधिचर्यावतार मिलता है—सर्व त्याग म निर्वाण है, मेरा चित्र उस स्थिति के लिए प्रस्तुत है। अत सब कुछ धम करना उचित है। इस सबको देना उचित है।[1]

किन्तु ये मानना युक्तिसगत नहीं है कि महादेवी पूर्णतया बौद्ध धम दर्शन ही प्रभावित है। महादेवी वर्मा निवृत्ति की नहीं, प्रकृति की गायिका हैं और य कारण है कि बौद्ध धर्म दर्शन को उन्होंने अपने काव्य मे नया जन्म दिया। बुद्ध द जहाँ निराशा, पलायन, वैराग्य पर आश्रित हैं, वहीं महादेवी के वेदनादर्शन में आ आकर्षण और जीवन सघर्ष की भावना व्याप्त है। स्वय उन्ही के शब्दो म—'मैं सस को दुःखमय बिलकुल नहीं मानती हूँ। मैं तो ईश्वर को मानती हूँ, आत्मा को मानती हूँ, परमात्मा को मानती हूँ जो दर्शन के लिए असत्य है जो कवि के लि परम सत्य है।[2]

(4) सूफी प्राकृतिक रहस्यवाद और निर्गुण निराकार की दृष्टि का प्रभा

सूफी कवियो न प्रेममार्ग द्वारा अध्यात्म साधना थी। सूफियो के अध्यात्म 'अल्लाह' की सत्ता सर्वोपरि होने पर भी उसके जलाल (ऐश्वर्य) की अपेक्षा उस रहीम (करुणामय) रूप पर ही अधिक बल दिया गया। सूफियो न अपने साधना क 'मारफत' की सज्ञा दी और उस साधना की चार सीढ़ियाँ मानी—शरीअत, तरीकत हकीकत, वस्ल। महादेवी वर्मा ने भी विरह मार्ग से प्रेमोपासना की किन्तु महादेवी के प्रेमतत्व और सूफियो के प्रेमतत्व म स्पष्ट अन्तर है—इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए डॉ० विनय मोहन शर्मा लिखते हैं—उनम (महादेवी म) प्रेमचन्द्र का प्राधान्य होने से उन्हें सूफिनी कहने का साहस किया जाता है, पर सूफियो की आध्यात्मिक श्रेणिय और परम्पराएँ हैं। महादेवी के काव्य मे उनकी खोज करना उनमें प्रकाशित प्रेमतत्व को भी अग्राह्य बनाना है। उनके काव्य को सूफियों से प्रभावित करना भी उनका उपहास करना है।[3]

सूफी कवियों की भाँति सारे विश्व मे अपने 'प्रिय' का आभास पाते हुए भी महादेवी का मार्ग उनसे भिन्न है क्योंकि इस्लाम के एकेश्वरवाद म भाव की क्रीडा के

---

१ महादेवी वर्मा क्षणदा, पृ० १२।

२ डॉ० मनोरमा शर्मा महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, पृ० २२।

३ डॉ० विनय मोहन शर्मा काव्य, कला और जीवन दर्शन, पृ० ६४।

लिए स्थान नहीं। प्रकृति भी इतनी विविध रूपी और समृद्ध नहीं कि मनुष्य के भाव जगत का व्यापक आधार बन सके।[1]

संतकाव्य मे निर्गुण निराकार की उपासना है किन्तु वह योग और साधनात्मक धरातल की है। महादेवी ने दार्शनिक चिन्तन पर ब्रह्म को स्वीकार किया जबकि सन्तों ने साधनात्मक अनुभूति के स्तर पर ब्रह्म को ग्रहण किया। वास्तव मे महादेवी की काव्यानुभूति प्रवृत्ति मूलक और निवृत्तिमूलक वेदना दर्शन म निहित है जो सगुण साकार और निर्गुण निराकार की द्वैत अद्वैत श्रृंखला से जुडा हुआ है। महादेवी वर्मा यहाँ एक ओर निर्गुण कवियों से भिन्न है वहीं व सगुण कवि और रहस्यवादी मे अन्तर स्पष्ट करती हैं—सगुण गायक हमारे साथ-साथ जीवन की रागिनी सुनाता और पथ बताता हुआ चलता है पर रहस्य का अन्वेषक कहीं दूर अन्धकार मे खडा होकर पुकारता है—चले आओ, थकना हार है, रुकना मृत्यु है।[2]

(५) वैष्णवी रागात्मकता का प्रभाव

वैष्णव भक्तों की भांति ही महादेवी को 'परमसत्ता' की कृपा पर अटूट विश्वास है और इसीलिए साधनाजन्य बधन और कष्ट भी उन्हें प्रिय लगने लगते हैं—क्यो मुझे प्रिय हो न बन्धन। आत्मा-परमात्मा के माधुर्य भावमूलक सम्बन्ध को स्वीकार करती हुई महादेवी आत्मविसर्जन के लिए प्रस्तुत होती है, उसका कारण है एक सीमा दूसरी सीमा मे अभिव्यक्ति चाहती है। एक अपूर्ण व्यक्तित्व पूर्ण व्यक्तित्व के स्पर्श का इच्छुक है। भक्त विवश सीमाबद्ध है और इष्ट परमतत्व की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए स्वेच्छा से सीमाबद्ध है पर है तो दोनो सीमाबद्ध ही। ऐसी स्थिति में उनके बीच मे सभी मानवीय सम्बन्ध सम्भव है पर माधुर्य भावमूलक सम्बन्ध तो लौकिक प्रेम के बहुत निकट आ जाता है क्योकि लौकिक प्रेम के परिष्कृततम रूप में प्रेमपात्र भी परमतत्व की अभिव्यक्तियो मे पूर्ण अभिव्यक्ति बन जाने की क्षमता रखता है।[3]

उपर्युक्त दार्शनिक विचारधाराओ के अतिरिक्त महादेवी पर सस्कृत काव्य के प्रमुख कवि बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, अश्वघोष, जयदेव आदि के साहित्य का भी प्रभाव पडा। 'सप्तपर्णा' मे उन्होंने उपर्युक्त सस्कृत कवियो की लालित्यपूर्ण रचनाओ को हिन्दी मे अनुदित किया। सस्कृत काव्यो के अतिरिक्त 'प्रकृति' पर आधारित 'सर्ववादी' दर्शन भी महादेवी काव्य में उपलब्ध है।

छायावाद म प्रकृति एक अनिवार्य उपकरण है इसे महादेवी वर्मा दर्शन के सर्ववाद पर आधारित मानती हैं—जहाँ तक भारतीय प्रकृतिवाद का सम्बन्ध है वह दर्शन के सर्ववाद का काव्य मे भावगत अनुवाद कहा जा सकता है। जहाँ प्रकृति दिव्य

१ महादेवी साहित्य, पृ० २५७।

२-३ महादेवी साहित्य—पृ० २६०, २५२, स० ओंकार शरद।

शक्तियों का प्रतीक बनी उसे जीवन का सजीव संगिनी बनने का अधिकार भी मिला, उसने अपने सौंदर्य एवं शक्ति द्वारा अखण्ड और व्यापक परमतत्व का परिचय भी दिया और वह मानव के रूप का प्रतिबिंब और भाव का उद्दीपन बनकर भी रही।[१] यहि सर्ववाद महादेवी की समस्त मानवतावादी अनुभूतियों का आधार है। डॉ० कमलाकांत पाठक के शब्दो मे 'उनकी वृत्तियाँ सूक्ष्मसत्य का इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण करती हैं कि सर्ववाद उन्हें लोक बाह्य हो जाने से बचाये रखता है।'[२]

ब्रह्माण्ड व्यापी सूक्ष्मतम तत्व का ही चित्रण महादेवी के काव्य में गृहीत सर्ववाद है। सम्पूर्ण विश्व मे अनन्त चेतना का प्रसार होने के कारण महादेवी सर्वात्मवाद की अनुभूति करती है। इसीलिए महादेवी ब्रह्म तथा जीवात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति मे किसी भी प्रकार का भेद नही रखती।

यह अभेदत्व वह उदात्त कल्पना है जिसस वे प्रत्येक कण में अपना ही स्पदन देखती हैं—

(१) मैं नीर भरी दुख की बदली
स्पन्दन म चिर निस्पन्द बसा।
क्रन्दन म आहत विश्व हँसा।[३]

(२) रगों के बादल निस्तरग,
रूपो के शत शत वीचि भग,
किरणो की रेखाओ मे भर
अपने अनन्त मानस पट भर
तुम देते रहत हो प्रतिपल
जाने कितने आकर मुझे
हर छवि म कर साकर मुझे।[४]

इसके अतिरिक्त विवकानन्द, महात्मा गाधी तथा आर्य समाजी विचारधारा का प्रभाव भी महादेवी पर पडा। पश्चिमी विचारधाराओ में प्रमुख रूप से हीगल और शापेनहावर का प्रभाव महादेवी पर देखा जा सकता है। जर्मन दार्शनिक हीगल ने विवेक को अत्यधिक महत्व दिया। हीगल के सिद्धान्तानुसार जो विवेकयुक्त है वह वास्तविक है तथा जो वास्तविक है वह विवेकयुक्त है। हीगेल ने आत्मा (Spirit) की सत्ता स्वीकार की और उस निरपेक्ष, पूर्ण एव स्वतत्र कहा है। हीगेल का मत शकर और रामानुज के मतो से मिलता-जुलता है। हीगेल के द्वन्द्वमूलक समन्वयवाद

---

१ महादेवी साहित्य, पृ० २१८।
२ डॉ० कमलाकान्त पाठक महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ ३४।
३ सांध्यगीत (यामा), पृ० २ ३।
४ दीपशिखा, पृ० १३१।

को अभेदवाद या विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त भी कहा जा सकता है । महादेवी के सुख-दुःख के समन्वयात्मक दृष्टिकोण पर हीगेल का प्रभाव देखा जा सकता है ।[१]

हीगेल ने जगत को 'सत्य' रूप मे स्वीकार किया । महादेवी भी जगत को 'सत्य' मानती है । हीगेल ने प्रेम के आध्यात्मिक सौंदर्य को व्यक्त किया और महादेवी भी इसी तरह का उद्घाटन करती हैं । हीगेल का अनेकता मे अनुस्यूत एकता का सिद्धान्त महादेवी को भी मान्य है ।

शापेनहावर को भारतीय औपनिषदिक ज्ञानधारा और गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों ने अत्यधिक प्रभावित किया । बुद्ध की भाँति शापेनहावर ने भी जीवन को दुःखमय स्वीकार किया—मनुष्य के लिए सबसे बडी बात तो यही हो सकती है कि वह यहाँ जन्म ही नही लेता ।[२] शापेनहावर का दुःखवाद निराशापूर्ण है इसके विपरीत महादेवी वेदना को शाश्वत और मगलमय मानकर उसे कर्ममय बनाती हैं । महादेवी के काव्य मे निराशा के लिए कोई स्थान नहीं है ।

'नीहार' (१६३०) महादेवी के काव्य-पथ का प्रथम चरण है । इसके पूर्व विभिन्न पत्रिकाओ में छिट-पुट कवितायें प्रकाशित होती रही हैं । पर उनमे एक सम्बद्ध विचारधारा का प्रभाव रहा । 'नीहार' छायावादी शैली मे रचित तीव्रतम भावानुभूतियों का प्रकाशन है । अनुभूति प्रधान गीति रचना होने के कारण 'नीहार' मे चिंतन व दर्शन के लिए अवकाश नही है । उसमे कुतूहल मिश्रित जिज्ञासामयी भावनाओ की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से हुई—

ढुलकते आँसू सा सुकुमार
बिखरते सपनो सा अज्ञात
चुराकर उषा का सिन्दूर
मुस्कुराया जब मेरा प्रात
सुनहला प्याला लाया कौन ?[३]

नीहार मे अनन्त प्रिय के प्रति तडफन, विस्मय और मिलन की आकांक्षाओं की माधुर्यपूर्ण अभिव्यक्ति हुई—

(१) कैसे कहती हो सपना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलो मे
मेरे आँसू उनके हास ।[४]

---

१ Bernard Bosanquet A History of Aesthetic, P 245, 1956 ।
२ रामचन्द्र दत्तात्रेय उपनिषद् दर्शन, पृ० १८२ ।
३ नीहार, पृ० १२ ।
४ वही, पृ० १५ ।

(२) मुझमें विक्षिप्त झकोर
उन्माद मिला दो अपना
हाँ नाच उठे जिसको छू
मेरा नन्हा सा सपना ।[1]

(३) प्रतीक्षा में मतवाले नैन
उड़ेंगे जब सौरभ के साथ
हृदय मेरा होगा नीरव आह्वान
मिलोगे क्या तब हे अज्ञात ।

'नीहार' में अलौकिकता के सूक्ष्म संकेतों के बीच लौकिक प्रणय के स्थूल संकेत भी स्पष्ट रूप से मिलते हैं—

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग-भरा उन्माद राग ।[2]

'नीहार' में संसार और जीवन के प्रति दुःख और निराशा की भावना भावुकतापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त हुई है। यहाँ वेदना किसी दर्शन या सिद्धान्त के रूप में नहीं है—

(१) सखे ! यह है माया का देश
क्षणिक है तेरा मेरा संग
यहाँ मिलता काँटों में बन्धु
सजीला सा फूलों का रंग
न भूला है प्यारे जीवन ।[4]

(२) भुला डालो बीते की साध
मिटा डालो बीते का लेश
एक रहने देना यह ध्यान
क्षणिक है यह मेरा परदेश ।[5]

---

१ नीहार, पृ० ३८ ।
२ वही, पृ० ४ ।
३ वही, पृ० ८६ ।
४ वही, पृ० ५७ ।
५ वही, पृ० ६३ ।

नीहार में जिस लौकिक वेदना की अभिव्यक्ति हुई है वह अनुभूतिमय है, किन्तु यही अनुभूति जहाँ अलौकिक रूप में अभिव्यक्त हुई है वहाँ चिन्तन का हल्का संस्पर्श है जो आगे चलकर उनकी काव्य कृतियों में परिपक्व रूप में मिलता है। 'रश्मि' में आकर 'नीहार' की आँखमिचौली एक दृष्टिकोण का रूप ले लेती है। अब पथ अनजाना नहीं है, पथ की रूपरेखायें स्पष्ट-सी होने लगती हैं, परिचय-प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। 'रश्मि' के गीत अन्तर्मन की सृष्टि है, इसमें उस सौंदर्य भावना का चित्रण है जहाँ आकुलता का स्थान विश्वास ने ले लिया है। अन्तर्मुखी फलक पर जीवन के रागात्मक पक्ष 'रश्मि' में चित्रण होते हैं।

'प्रिय' के अतिरिक्त अलि के प्रति, पपीहा के प्रति समाधि आदि स्वतन्त्र विषयों पर गीत है। व्यष्टि और समष्टि की ओर संकेत 'रश्मि' में ही प्रथम बार मिलता है—

वह दे मौं क्या देखूँ
खिलती कलियों का
प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ।[१]

'रश्मि' में महादेवी ने ब्रह्म और संसार के सम्बन्ध सूत्र का उद्घाटन इन शब्दों में किया है—मनुष्य में जड़ और चेतना दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव सीमित संसार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम—का एक उसको विश्व में बाँधे रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है किन्तु जड़-चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड़ के बिना आकार शून्य। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही जीवन है—[२]

धारा की जड़ता उर्वर बन
प्रकट करती अपार जीवन
उसी में मिलते वे द्रुततर
सींचते क्या नवीन अंकुर?[३]

वास्तव में रश्मि के गीत भावोत्कर्ष की समर्थ अभिव्यक्ति है। संकेत और प्रतीकों में बँधे इन गीतों में वेदना अपने प्रभावोत्पादक, लयात्मक और भावात्मक रूप में व्यंजित हुई है।

महादेवी वर्मा के अनुसार कविता सबसे बड़ा परिग्रह है क्योंकि वह विश्वमात्र के

१ रश्मि, पृ० ४६।
२ रश्मि, अपनी बात, पृ० ३।
३ रश्मि, पृ० ६१।

के प्रति स्नेह की स्वीकृति है। नीरजा, सान्ध्यगीत और दीपशिखा इसी कथन के अनुरूप हैं।

नीरजा में साधना की प्राणवत्ता तथा असीम के प्रति अनुराग की भावना अधिक मुखर हो उठी है। नीहार की अस्फुट कल्पनायें, रश्मि का जिज्ञासामूलक चिंतन नीरजा में अनुभूति और चिन्तन के साम्य से निखर उठते हैं। नीरजा में आकर जीवन, मृत्यु, सुख दुःख और संसार की विषमताओं पर विचार करते हुए कवयित्री जिन मौलिक विचारों पर पहुँची है वह मस्तिष्क से उतरकर हृदय पर छा गये हैं और इसी से उनकी अस्पष्टता जाती रही है।[१]

नीरजा मे प्रिय से तादात्म्य की स्थिति है। प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों म असीम की अनुभूति अधिक उपलब्ध है—

सिहर-सिहर उठता सरिता उर
खुल खुल पडते सुमन सुधा भर
मचल-मचल आते पल फिर-फिर
सुन प्रिय की पदचाप हो गयी
पुलकित यह अवनी ।[२]

'नीहार' का उपासना भाव 'नीरजा' में और अधिक स्पष्ट और तन्मय रूप से व्यक्त हुआ—

(१) तुम मुझमे प्रिय फिर परिचय क्या ![३]
(२) क्या पूजन क्या अर्चन रे
उस असीम का सुन्दर मेरा लघुतम जीवन रे ![४]

नीरजा की भावानुभूतियों मे जग के विषाद को अश्रुकणों से धोने की उज्जवल मगल कामना है जो हृदय की मुक्तावस्था की प्रतीक है। चिन्तन की सृजन भावाभूमि मे अन्तर्जगत की वेदना विश्व की व्यथा को अपने म समाहित करने के लिए सक्रिय है। वेदना की इस अखण्डता मे संघर्षों और झंझावतों के बीच भी सकल्प की दृढ़ता है—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर ।[५]

---

१ डॉ० रामरतन भटनागर महादेवी वर्मा, पृ० १२७।
२ महादेवी वर्मा नीरजा, पृ० १३।
३ महादेवी वर्मा यामा, पृ० १४६।
४ वही, पृ० १८६।
५ नीरजा, पृ० ३४।

सांध्यगीत निर्वैयक्तिक धरातल पर वेदना की साधना का काव्य है। जीवन की सम-विषम, उल्लास, विषाद, सुख-दुख की सरसतावाली दृष्टि सांध्यगीत में उपलब्ध होती है। सुख-दुःख के सामञ्जस्य ने 'प्रिय' को क्षितिज में बनाकर सामान्य बनाया और अनुभूति की प्रगाढ़ता ने उस प्रिय को धरा पर अवतरित किया। 'सांध्यगीत' कवयित्री की एकान्त साधना का प्रतीक है। उसमें सांध्य गगन में भावि कवयित्री का जीवन क्षितिज विराग और वीतराग के भावों से समन्वित हो उठते हैं —

प्रिय ! सांध्यगगन
मेरा जीवन
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग
छाया की काया वीतराग
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन ।[1]

कवि काव्य-सौंदर्य के माध्यम से सत्य के उस पक्ष को सामने लाता है जो सुन्दर और शिव से समन्वित है। महादेवी उसी सत्य को काव्यात्मक धरातल पर प्रस्तुत करती हैं—

टूटेगी कब तेरी समाधि ।
मेरे जीवन का आज मूक ।
तेरी छाया से हो मिलाप ।
मन ले करुणा की थाह नाप ।
उर में पावन दृग में विहान ।[2]

सांध्यगीत की चिन्तनात्मक जिज्ञासा में ब्रह्म की सत्यता का स्वीकार है। अद्वैतवादी दर्शन पर आधारित सांध्यगीत की पंक्तियों में जीवन का उत्साह और सौन्दर्यपूर्ण दृष्टि अधिक उपलब्ध है —

हार भी तेरी बनेगी,
मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है,
अमर दीपक की निशानी,
है तुझे अंगार शय्या पर,
मृदुल कलियाँ बिछाना,
जाग तुझको दूर जाना ।[3]

---

१ सांध्यगीत, पृ० १७ ।
२ सांध्यगीत, पृ० ५८ ।
३ सांध्यगीत, पृ० ८४ ।

साध्यगीत सर्वात्मवादी दृष्टि को व्यक्त करने वाला काव्य है। यहाँ व्यथा मे घुलन का भाव कम, व्यथा को सुख मिश्री समझकर जीने का भाव अधिक है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से साध्यगीत प्रगीत काव्य के इतिहास की अद्भुत उपलब्धि है।

अनुभूति कोष का अपूर्णकलश ही जब निज की परिधि मे परायापन मिटाकर सबको अपने म समेट लेता है तब उन्नततर परिणतियो मे अह का उद्घोष नहीं वरन् उसके व्यापक अह मे आत्मसात समूची मानवता के ऊर्जस्वित स्वर स्पदित होते हैं। दूसरे शब्दो मे व्यक्ति नही वरन् व्यष्टि मे समाहित समष्टि मुखर हो उठती है।[1] 'दीपशिखा' महादेवी के समष्टि भावबोध की वह ज्योति है जो व्यष्टिगत विषाद, घुटन और तम को नष्टकर सार्वजनिक कल्याण की ओर अग्रसर करती है। 'तमसो मा ज्योतिगमय' की भावना से युक्त 'बहुजन हिताय' की कामना लेकर दीपशिखा विश्वप्रेम की सात्विकता पर आधारित है।

१९४२ मे जब दीपशिखा का प्रकाशन हुआ उस समय भारत मे नवीन क्राति के स्वर घोषित हो रहे थे। गाधी के महाभियान के सदर्भ मे देश जागरण के पथ पर अग्रसार हो रहा था और यही कारण है कि दीपशिखा मे अध्यात्म की अपेक्षा जागरण का शखनाद अधिक है। 'विरहनिशा मे 'दीप' को प्रहरी बनाकर युगाधकार की समाप्ति की चेष्टा है—

रजत, शख-घडियाल स्वर्ण बशी-वीणा स्वर,
गये आरती बेला को शत शत लय से भर,
जब था कल कठो का मेला,
विहसे उपल तिमिर था खेला,
अब मन्दिर म इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।[2]

'इस अजिर का शून्य गलाने को गलने दो'—लौकिक सीमा से परे कवयित्री प्रत्येक स्वर को विश्वस्वर मे मिला देने को उत्सुक है। यहा तक कि अब विरह निशा की समाप्ति के प्रति जिज्ञासा भी समाप्त हो जाती है—

मैं क्यो पूछू यह विरह निशा।
कितनी बीती क्या शेष रही?[3]

दीपशिखा मे चिन्तन के उच्चतम सोपान पर पहुँचकर प्रश्न, शकाओ और जिज्ञासा की समाप्ति हो जाती है और प्रश्न जीवन के स्वय मिट आज उत्तर कर मैं—

---

१ श्रीमती शचीरानी गुर्टू साहित्यदर्शन, पृ० १३२।
२ दीपशिखा, पृ० ८१, अष्टम सस्करण, स० २०३२ वि०।
३ दीपशिखा, पृ० ११६, अष्टम सस्करण, स० २०३२ वि०।

कहकर कवयित्री समर्पण की उस भूमि पर पहुँच जाती है जहाँ बाह्य भेदो की समाप्ति पर भावनाये सुख, आनन्द और उल्लास में पर्यवसित हो जाती है—

धूम मे अब बोलना क्या
क्षार मे अब तोलना क्या
प्रात हस रोकर गिनेगा
स्वर्ण ही कितने चुके पल
दीप रे तू जल अकम्पित ।[1]

महादेवी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य मे स्पष्टत अन्तर है किन्तु उनके समूचे साहित्य मे मानवतावादी और दार्शनिक चिन्तन की सूक्ष्म रेखा अकित है। 'नीहार' की कौतूहलमयी जिज्ञासाओ के बीच आत्मा, परमात्मा, प्रकृति तीनो की स्वीकृति है। क्षणभगुरता, स्वार्थमयता के बीच वेदना और दु ख की भावना पृष्ठाधार रूप मे उपस्थित है। रश्मि मे आत्मा और प्रकृति का झुकाव परमात्मा की ओर हो जाता है। 'नीरजा' में आत्मा की अखडता घोषित है। साध्यगीत मे सुख-दु ख के सामजस्य के बीच समष्टि कल्याण-बोध प्रमुख है। 'नीर भरी दुख की बदली' बन जनकल्याण, जनमागल्य की भावना अभिव्यक्त हुई। दीपशिखा मे यही भावना प्रमुख स्वर बन जाती है। महादेवी अपनी सम्पूर्ण करुण भावना की सार्थकता इसी मे मानती है—

पथ न भूले एक पग भी।
घर न खोये लघु विहग भी।
स्निग्ध लौ की तूलिका मे।
आँक सबकी छाँह उज्जवल।

महादेवी के अनुसार वेदना के दो रूप हैं—एक वैयक्तिक विषाद और दूसरा सामाजिक करुणा। उनके अनुसार यह करुणा ही भारतीय काव्य जीवन से व्यक्ति को जोड़ती है। कवयित्री के लिए करुणा सकारण है। मानव जब सम्पूर्ण विश्व के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता है तब बाह्य विश्व की छोटी सी छोटी घटना भी उसे उद्वेलित कर जाती है, वह हमारी अनुभूति में करुणा की असख्य लहरियाँ उठाने मे समर्थ होती है और दूसरी ओर दार्शनिक प्यास से अपनी स्थूली सीमा की अपूर्णता को पूर्ण न कर पाने का वियोग वेदना का कारण बनता है। कभी-कभी वैयक्तिक विषाद और बाह्य करुणा की सीमाएँ एक दूसरे मे खो सी जाती है।

छायावादी काव्य का एक प्रमुख गुण है—स्वत्व। जहाँ करुणा होगी वहाँ स्वत्व भी होगा। महादेवी भी स्वीकार करती हैं कि छायावादी काव्य व्यक्तिगत स्वानुभूति प्रधान होने से वैयक्तिक उल्लास विषाद का सफल माध्यम बना लेकिन इस

---

१ दीपशिखा, पृ० ७०।

विषाद मे व्यक्तिगत दु खो का प्रगटीकरण न होकर शाश्वत करुणा की ओर संकेत है जो जीवन को सब ओर से स्पर्श कर एक स्निग्ध उज्ज्वलता देती है। महादेवी का साहित्य इसी शाश्वत करुणा का साहित्य है। नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा के अतिरिक्त स्मृति की रेखायें, अतीत के चलचित्र, शृङ्खला की कड़ियाँ जैसी गद्य रचनाओं मे उनकी यही विचारधारा अविराम दृष्टिगोचर होती है। गद्य महादेवी के विचारों के क्षणों की परिपूर्ण वाणी है, जिसका लक्ष्य करुणा और संवेदना की जागृति है।

वास्तव में काव्य के मूल्य राग और प्रवृत्ति की सृष्टि हुआ करते हैं जबकि दर्शन के मूल्यो मे निवृत्ति के आधार स्पष्टतया मुख्य होते हैं किन्तु दर्शन निरपेक्ष नहीं रहता वह समष्टि भावबोध के रूप मे मानवीय संस्कृति का सामान्य आचरण हो जाता है। इसीलिए ग्रीक त्रासदी मे न केवल जीवन की भव्यता है बल्कि समूची संस्कृति के उच्चतर आध्यात्मिक मूल्यो का उद्घाटन भी दिखाई देता है। फिर वेदना को तो महादेवी ने जीवन की उच्चतम भूमिका पर स्वीकार किया है—दु ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र मे बाँध सकने की क्षमता रखता है—हमारे असंख्य सुख हम चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाये बिना नही गिर सकता।[१]

अत वेदना के मार्ग से जीवन की पूर्णता का व्यक्त करना महादेवी की काव्य-प्रक्रिया का एक सहज रूप है। वेदना के मार्ग से वे जीवन से विरत नही हुई है, बल्कि वे समूचे का संस्पर्श करती है।

लौकिक स्तर पर भले ही वेदना साधन, मार्ग अथवा भाव की एक प्रणाली हो किन्तु दर्शन के स्तर पर वेदना मूल्य रूप हो जाती है, उसका Universalisation हो जाता है और वह शुद्ध रूप मे शाश्वत जीवन का आधार ले लेती है। महादेवी ने जिन मूल्यों को उद्घाटित किया है वे अपने शुद्ध और सार्वजनिक रूप मे जीवन की शाश्वत अभिव्यक्ति करने वाले हैं। अतः वेदना मार्ग भी है, कसौटी भी है और मूल्य भी है।

महादेवी ने अपने समूचे गद्य मे अपने इस वेदना मार्ग की भरपूर व्यवस्था की है और वे इसे न केवल बौद्ध धर्म दर्शन के दु ख, दु ख के कारण और निवारण तक सीमित रखती है बल्कि बौद्धदर्शन के निवृत्तिमूलक अथवा विरागात्मक रूप को अस्वीकार कर उसकी रागात्मकता और जीवन धारणाओ को ठीक उसी प्रकार स्वीकार करती है, जिस प्रकार ग्रीक दु खान्तकी मे स्वीकार किया गया है। वेदना मार्ग से अस्तित्व की चिन्ता प्राथमिक हो जाती है और नियति सम्बन्धी धारणा सबल

१ रश्मि अपनी बात, पृ० ६।

रूप म उपस्थित हा जाती है। यह अस्तित्व चिन्ता महादेवी के काव्य परिवेश म व्यक्ति और प्रकृति के सम्बन्धो मे गहरी उतरती हुई रहस्यवादी और आध्यात्मिक हा जाती है। और इसी दृष्टि से महादेवी ने परिवर्तन प्रक्रिया का, नश्वरता का, क्षण भगुरता का विश्लपण किया है किन्तु चूकि उन्होंने जीवन को अस्वीकार नही किया है इसलिए यह परिवर्तन, क्षण भगुरता, नश्वरता, प्राकृतिक आचरण और नियम के अन्तगत ही है। वे क्षण-प्रतिक्षण की गति के द्योतक हैं।

चूँकि महादेवी की अस्तित्व चिन्ता और नियति धारणा म वेदनातत्व आधार रूप मे है इसीलिए समूची जीवन दृष्टि की, जीवन-मान्यताओ की कसौटी वेदना हो जाती है और महादेवी ने श्रेष्ठ मनुष्य बनने के लिए तथा मनुष्य म सही अर्थ समाहित करने के लिए वेदनानुभूति का, उससी सवेदनशीलता का यत्र तत्र बराबर विश्लेषण किया है जो सूक्ष्म और विराट लौकिक और अलौकिक को जोडती तथा उसम अन्तर्व्याप्त रहती है।

महादेवी वर्मा का काव्य आत्मपरक होते हुए एक उदात्त मनोभूमि पर विस्तार पाता है। व्यक्तिवादी स्तर पर जहाँ उनका काव्य ऐकातिक, लौकिक है वही उदात्त भूमि पर अलौकिक हो जाता है। व्यक्ति उर्जस्विकरण और उदात्तीकरण का प्रक्रिया मे वे दशन को स्वीकार करती है और आत्मस्थ का प्रकृतिस्थ बनाती है। चूकि महादेवी का काव्य वेदनापरक है अत ऐसा करते समय व सहज बोधव्यता के मार्ग को अपनाती है अर्थात् जागतिक जीवन की विषमताओ और कार्यपद्धतियो से विमुख होकर एकातिक भूमि को प्राप्त करती है। प्रगतिकाव्य की रचयिता होने के कारण उनकी वेदना, आत्मपरक और स्वानुभूतिमय है, किन्तु कुण्ठित अथवा पलायनवादी नहीं है। उसमे जीवन की सावजनिनता अथवा सामान्यीकरण है जो उनकी वेदना मे मागल्य प्रगट करता है और आनन्दवादी सौन्दर्यबोध प्रदान करता है।

काव्याभिव्यजना

रचना एक चेतनायुक्त सजीव प्राणी सदृश्य होती है, जिसका अपना पूर्ण जीवन होता है। पश्चिम के नव्य समीक्षकों ने काव्यकृति को स्वायत्त और स्वनिष्ठ के रूप में स्वीकार किया। काव्य एक ऐसी इकाई है जिसके विभिन्न अगा म एक आवयविक अन्तर्सम्बन्ध होता है। कविता आगिक है इसका तात्पय है कि वह एक प्राकृतिक विकास (Natural Growth) है और इसलिए उसमे Conscious Craftmanship के विरुद्ध Spotaneity पर बल दिया जाता है जिसम अशो की पूर्णता का महत्व होता है।[1] हबट रीड ने Organic Form को परिभाषित करते हुए लिखा है—When a work of art has its own inherrent laws, originating with its very invention and fusing in one vital unity both structure and content then the resulting from may be described as organic[2]

इसी प्रकार श्लेगल ने आतरिक विकास की पूर्णता के रूप मे Organic Form को परिभाषित किया—Organic from is innate, in unfolds itself from within and acquires its determination along with the complete development of the Germ[3]

Living यह Form रूप विधान की सजीवता या जीवन्त रचनादृष्टि है जिसमे सृजन की मनोवैज्ञानिकता (Psychology of Creation) तथा अवचेतन के प्रकृत व्यापार (Unconcious natural Process) का सिद्धान्त प्रतिपादित होता है। पश्चिम मे काव्य के निर्धारित तत्वो के रूप म Content और Form अथवा मीनिंग (अर्थ) को स्वीकार किया जाता है। उसी प्रकार भारतीय सस्कृत काव्यशास्त्र म शब्द और अर्थ को काव्य के तत्व मानकर काव्य की परिभाषा दी गयी।

---

1 The Idea of a poem as an organism suggests first that it is a natural growth, and so emphasizes spontaneity against conscious craftmanship It also suggests the subrodination of parts to the whole the typical 'Organic' character that the parts have meaning only in relation to the whole

Grahan Hough An Essay on Criticism, P 159

2 Herbert Read Collected Essays in Literary Criticism, P 19

3 Grahan Hough An Essay on Criticism, P 159

भारतीय रस सिद्धान्त मे शब्द और अर्थ सहित भाव के रूप मे काव्य को स्वीकार किया गया है। भामह ने जो कि (अलकार सम्प्रदाय के हैं) 'शब्दार्थो सहितो कहकर काव्य को परिभाषित किया।' भारतीय काव्यशास्त्र मे शब्द और अर्थ को अलग-अलग व्यावहारिक विवेचना भी प्राप्त है पर शब्द और अर्थ के अभिन्न साहचर्य का ही सस्कृत आचार्यों न मान्य किया है क्योकि व एक ही स्फोट रूप आत्मा के दो स्वरूप हैं।[1] किन्तु कुतक ने यह प्रश्न उठाया कि—शब्द और अर्थ तो सदा साथ-साथ ही भान मे स्फुरित होते हैं इसलिए 'सहिता' इस पद से आप कौन सी नई बातें प्रतिपादित कर रहे हैं।[2] उत्तर के लिए कुतक यह मत प्रतिपादित करत हैं कि शब्द और अर्थ के बीच रमणीयता की सृष्टि के लिए स्पर्धा होती है और यह स्पर्धा ही काव्य मे आल्हाद और आनन्द की सृष्टि करती है। राजेशखर, भट्टनायक मे भी हमे इसी प्रकार के विचार मिलत हैं। कालिदास न भी रघुवश मे इन दानो के सम्बन्ध को पार्वती परमेश्वर की अभिन्न स्थिति स उपमित किया।[4]

पाश्चात्य साहित्य मे विषय और रूप के पारस्परिक सम्बन्ध पर विभिन्न मतभेद मिलते हैं। वहाँ वस्तु और रूप के सम्बन्ध मे या तो सकुचित परिभाषा मिलती है या फिर अत्यन्त व्यापक अभिव्यजनावादी परिभाषा। स्वच्छन्दतावादी कवियो और विचारको ने सस्कृत के शब्द अर्थ के सामजस्य पर आधारित काव्य को आवयविक अथवा आगिक सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया जिसम वस्तु और रूप के यान्त्रिक सम्बन्ध की समाप्ति हुई और एक आतरिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। जिसके अनुसार रूपतत्व के माध्यम से रचना का आतरिक ऊर्जा गठित हाती है। शब्द, भाषा, छन्द, अलकार, बिम्ब, प्रत्यय आदि इसी शक्ति अथवा ऊर्जा से गतिशील रहते है और इसी के द्वारा अतर्सम्बन्धता और अतर्क्रिया की निरन्तरता रहती है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति परस्पर अभेद होते हैं इसका प्रतिपादक क्रोचे ने किया। इसकी एकता की ओर सकेत करते हुए स्काटजेम्स ने लिखा है—काव्य मे विषय और शिल्प (भाव और शैली) परस्पर अन्योन्याश्रित है। काव्य का विषय-वस्तु के अनुकूल ही उसका कला विधान होता है। कवि अपनी ही जीवानुभूति का मानसिक

१ वाक्यपदीप २ ॥३१॥

२ शब्दार्थो सहितावेव प्रतीतौ स्फुरत सदा।
सहिताविति तावेव किमपूर्वं विधीयत। (वक्रोक्ति जीवितम् १। १६)

३ तस्या स्वधित्वेन या सावस्थिति परस्पर साम्युमगवस्थान सा साहित्य मुच्यत।
— वक्रोक्तिजीवितम्, पृ० ६१ ६

४ वागर्थ विव सम्पृक्तौवागर्थ प्रति पत्तय
जगत पितरो व दे पार्वती परमेश्वरा। कालिदास—रघुवश १।१।

प्रत्यक्षीकरण करता है। जिस कोटि का उसका जीवानुभव होगा उसी कोटि की उसकी रचना।[1]

वस्तुत काव्य का सौंदर्य उसकी पूर्णता म होता है, उसके खण्डो म नहीं। उस सौंदय को विषय अथवा विधान और कलापक्ष अथवा भावपक्ष म विभाजित नही किया जा सकता। जैसा कि निराला ने कहा है—'कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास या ध्वनि की सुन्दरता नही किन्तु इन सभी से सम्बद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है। पूरे अगो की सत्रह साल की सुन्दरी की आँखो की पहचान की तरह देह की स्निग्ध पीनता में तरग सी उतरती चढ़ती हुई भिन्न वर्गों की बनी है। वाणी म खुलकर क्रमश मन्द मधुर होकर लीन होती हुई—जैसे केवल बीज से पुष्प की पूरी कला विकसित नहीं होती, न अकुर से, न डाल से, न पौधे से, जड से लेकर तना, डाल पल्लव और फूल के रग, रेणु, गध तक फूल की पूरी कला के लिये जरूरी है। वैसे ही काव्य की कला के लिए सभी लक्षण और जिस तरह फूलो की सुगध पेड के दृश्य समस्त भाग को ढँके हुए अपने सौन्दर्य तत्व के भीतर रहती है, पेड की काष्ठ निष्ठुरता दीखती हुई भी छिपी रहती है, उसी तरह काव्य कला आवश्यक अशोभन वर्ण सम्प्रदाय को अपनी मनोज्ञता के भीतर डाले रहती है।[2] वृक्ष के अगो की भाँति कविता मे भी एक आगिक सबध शब्द और अर्थ, वस्तु और रूप के बीच होता है।[3]

बीज से फूल की सुगन्ध तक, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक और प्रेषणीयता तक काव्य अखण्ड यात्रा है। जिसम वृक्ष की भाँति अपना जीवन और सौन्दर्य होता है।[4]

महादेवी वर्मा के काव्य म भी इसी अवयवि चिन्तन पद्धति और पूणता के दर्शन होते हैं और इसीलिये उनका काव्य सश्लिष्ट और सगीतात्मक है। स्वच्छन्दता और कोमलता, मृसणता का हृदयगम किये। उनका काव्य विश्व से रागात्मक सम्बन्ध स्थापन म सक्षम है। स्वय महादेवी न कला को अखण्ड और पूण रूप म स्वीकार किया।[5] कथ्य और शिल्प की एकता के कारण उनका काव्य कलात्मक और कलासिक न होकर सहज स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। उनकी सृजनकला का मूलाधार है—असीम के सौन्दर्य का व्यापक फलक पर अकन। इस अकन म वस्तु, सम्बन्ध और सम्बन्धो का पूर्ण लोप हो जाता है। तादात्म्य की पूण अवस्था म स्वत प्रस्फुटित अनुभूति की सघन भाव भगिमाओ न उनकी कला का शृगार किया है। एक सजग

---

१ R A Scott James The making of Literature, P 392, 1962

२ प्रबन्ध प्रतिमा निराला, पृ० २७२-प्र० स०।

३ M H Abrams The Mirror and the Lamp, P 222

४ Frank Kermode Romantic Image, P 96

५ महादेवी साहित्य पृ० १७४।

कलाकार होने के कारण महादेवी वर्मा ने अपनी कृतियों को गहन मनोयोग और परिश्रम के साथ सँवारकर प्रस्तुत किया है। भावो की गहन सम्प्रेषणीयता उनकी कला को खण्ड-खण्ड नही करती बल्कि सौन्दय की सूक्ष्मता का दिग्दर्शन कराती है।

गीतिविधा कला के अन्य-अन्य रूपो (जैसे महाकाव्य आदि) से भिन्न, स्वतन्त्र, स्वछन्द और स्वानुभूतिपरक होती है फलस्वरूप उसमे शिल्पगत रूढियो का प्रभाव होता है। जहाँ महाकाव्य खण्डकाव्य, विषयपरक (Objective) होते हैं वही गीत विषयीपरक होता है जिसमे कवि व्यक्तित्व, उसके सवेगो, उसकी मनस भावनाओ की अभिव्यक्ति काव्य मे दर्पण की भाँति होती है।[1] हर्बर्टरीड का मत है कि 'गीत मूलत एक प्रक्षण या प्रतीति (Vision) होता है।'[2] अन्यत्र वह कहते हैं कविताएँ केवल संवेदनमूलक नहीं होती वे अनुभूतियाँ होती हैं।[3] उनके मत मे सब प्रकार की कला का उद्भाव साक्षात बोध (Intuition) या प्रतीति (Vision) मे होता है जिसे ज्ञान से समीकृत करना चाहिये।[4]

स्वतन्त्र दृष्टि-सम्पन्न रचना होने के कारण गीत मे रचनाकार की अनुभूति म अभिधा, लक्षणा और व्यजनाशक्ति से समन्वित होती है। स्वत निर्सत गीत के शब्दो को कलात्मक पूणता कल्पना से मिलती है। यह कल्पना ही कविधारणाओ, उसके अनुभूतियोग को सन्तुलित और सौन्दयपूर्ण मे उपस्थित करती है। महादेवी के गीतो म हमे इसी कल्पनाविवेक की प्रधानता मिलती है जो उनके काव्य को अतिरजित, काल्पनिक न बनाकर सहज, स्वभाविक रूप मे उपस्थित करती है। इस कल्पना विवेक की प्रधानता से उनका काव्य सत्, रज, तम तीनो गुणो से युक्त होकर उदात्त सौन्दर्य की सृजना करता है। क्रोचे ने कल्पना का विस्तार बहुत ही व्यापक माना और उसके बिना हर स्वभाव, हर प्रकृति अश का सौन्दर्यहीन माना है।[5]

---

1 M H Abrams The Mirror and the Lamp, P 243

2 Herbert Read Collected Essays in Litearary Criticism, P 70, 1938

3 Ibid, P 190

४ Ibid, P 44

५ The without the aid of imagination,, on part of nature of beautiful and that with such the same natural object or fact is, according to the disposition of the soul, now expressive, now insignificant, how expressive of the definite thing, now of another sad or glad, sublime or ridicalons, sweet or laughable, finally, that a natural beauty which can an arist would not be some extent, correct does not exist

—B Croce Aesthetic, P 95

महादेवी वर्मा ने सौन्दर्यबोध की दार्शनिक और सांस्कृतिक भूमिका प्रस्तुत की है। उनमे ललित कलाओ के प्रति एक सजग विवेकशील चिन्तन मिलता है। छायावादी कवियो के बीच महादेवी वर्मा ने ललित कलाओ की तात्विक विवेचना उपस्थित की है। उनके कला सम्बन्धी विचार प्रसिद्ध विचारक हीगल से साम्य रखते हैं। महादेवी वर्मा ने ललित कलाओ जैसे काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला और संगीतकला के बीच एक आवयविक सम्बन्ध स्थापित किया और इस काव्य को इन सभी कलाओ के बीच ऊँचा और अंतिम सोपान माना।[१]

हीगल ने ललित कलाओ पर व्यापक दृष्टि से विचार किया। द्वन्द्वात्मक विचार सिद्धान्त के आधार पर कला को विचार या प्रत्यय (Idea) मानकर, हीगल ने इस कला प्रत्यय को साकार पूर्णता के भीतर से देखा। कला के भीतर इसी का प्रकाशन होता है, यह प्रकाशन आत्मपरक होता है, जिसकी परिणति परमभाव मे होती है। कलादर्शन मे अध्यात्म की अखडता को स्थापित करने का कार्य प्रेरणा प्रसूत कल्पना के द्वारा होता है।[२] हीगल ने कला को तीन वर्गों म विभाजित किया—प्रतीकात्मक कला शास्त्रीय कला और रोमांटिक कला। हीगल के अनुसार 'सिम्बालिक आर्ट' अर्थात् वस्तुकला मे सौन्दर्य सृजन की दृष्टि से जड पदार्थ माध्यम होने के कारण विचारो को मूर्तता भावो को पूर्णरूप से व्यक्त नही कर पाती।[३] अत हीगल उसे निम्नकोटि का माना। 'क्लासिककला' मे इस अभाव का परिहार होता है, क्योंकि 'आइडिया' और 'इमेज' की एक पारस्परिक अनुकूलता स्थापित हो जाती है किन्तु इसम भी दोष रह जाते हैं। इसका परिहार रोमांटिक कला म होता है जिसके अन्तर्गत चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला की गणना की जाती है। इनमे काव्य को हीगल ने अन्य कलाओ से श्रेष्ठ माना है।[४] उसके मतानुसार काव्य आध्यात्मिक सत्य की ऐन्द्रिक अभिव्यक्ति है और सौन्दर्य इस तथ्य स अभिन्न है।

हीगल की भाँति ही महादेवी कला के व्यापक लक्ष्य 'सत्य' का अनुसधान करती है—'वास्तव मे मनुष्य म सत्य का एक ऐसा क्रियात्मक अश छिपा हुआ है जो अपनी अभिव्यक्ति के लिए सुन्दरतम साधन खोजता रहता और इस सत्य का सौन्दर्य म रागात्मक प्रकाशन ही कला के सत्य, शिव, सुन्दर की परिभाषा हो सकती है।[५] *महादेवी ने कला को अखण्ड और जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित माना।* उनके अनुसार कला का सत्य जीवन की परिधि म सौंदर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त

---

१ साध्यगीत, पृ० १२-१३।

२ Hegel Philosophy of Fine Arts, Vol I, P 102, 55

३ Ibid P 103

४ Ibid P 5

५ महादेवी वर्मा क्षणदा, पृ० ४८-४९।

अखण्ड सत्य है।[1] श्रव्य और दृश्य कलाओ के स्तर भेद की ओर सकेत करते हुए उन्होंने लिखा है—कलाओ मे काव्य जैसी श्रव्य कलाओ की अपेक्षा चित्र जैसी दृश्य कलाओ की ओर मनुष्य स्वभावत अधिक आकर्षित रहता है। मूर्तिकला, चित्रकला आदि दृश्यकलाये एक ही साथ हमारे नेत्र, स्पर्श और मन की तृप्ति कर सकती थी, इसी से वे हमे अधिक सुगम और तात्कालिक आनन्ददायिनी जान पडी। विशेषकर चित्रकला, मूर्तिकला के काठिन्य से रहित और रगो से सजीव होने के कारण अधिक आहृत हो सकी। यह बोधगम्य इतनी अधिक है कि शैशव मे कठिन से कठिन ज्ञान उसके द्वारा सहज हो जाता है।[2]

इस तरह हीगल और महादेवी दोनो ने काव्यकला का एक व्यापक लक्ष्य निर्धारित किया है। अपने इसी व्यापक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये महादेवी काव्य मे विभिन्न उपादानो का प्रयोग करती है—(१) कल्पना (२) बिम्ब (३) प्रतीक (४) अलकार (५) छन्द।

(१) कल्पना

महादेवी के काव्य मे कल्पना अवयवि चिन्तन पर आधारित है। उनके काव्य की लयात्मक अनुभूति को आकारबद्ध कर, सत्य, सौन्दर्य जैसे मूल्यो की प्रतिष्ठा मे योग उनकी कल्पना ही देती है।

कल्पना अनुभूति को मूर्तिवान सदर्भ देती है। सृजनमय होने के कारण कल्पना को 'नवोन्मेषशालिनी' प्रतिभा तथा 'अपूर्ववस्तु' और 'सहजा' कहा गया। अभिनवगुप्त ने 'प्रज्ञा', मम्मट ने 'शक्ति' तो भट्टलोल्लट् ने 'प्रज्ञा नवनवोन्मेष शालिनी' के रूप म अभिहित किया।

पाश्चात्य कला चिंतन मे 'कल्पना' को एक 'मानसिक शक्ति' के रूप म विवेचित किया गया है। प्लेटो ने कल्पना को 'फेन्टिसिया' कहा, जो सजनात्मक कल्पना (क्रिएटिव इमेजिनेशन) का आदि रूप था। अरस्तू ने भी अपने 'अनुकरण सिद्धात' मे 'कल्पना तत्व' का निरूपण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष विधि से किया। क्राचे ने प्रातिभ ज्ञान तथा वर्डसवर्थ और विलियम ब्लेक ने अतीन्द्रिय रूप म इसकी व्याख्या की। लौजाइनस ने प्रत्यक्ष रूप से कल्पना तत्व का बात नही की पर उनका 'बिम्ब' स अभिप्राय कल्पना चित्र से ही है। लौजाइनस के मतानुसार बिम्ब से औदात्य के महान विचारो का प्रादुर्भाव होता है।

मनोवैज्ञानिक रूप से गाल्टन, फेकनर, वुडवर्थ आदि ने कल्पना को 'प्रतिमा (इमज)' के रूप मे विश्लेषित किया। वे किसी विगत अनुभूति, वस्तु, घटना

१ दीपशिखा, पृ० १०।
२ क्षणदा, पृ० ५१-५२।

कल्पना या प्राथमिक कल्पना का नही। इस कल्पना का क्षेत्र व्यापकता और गभीरता का सुचारु सन्निवश है।

कालरिज ने कल्पना के दार्शनिक पहलुओ पर भी विचार किया है। उनके विचारों पर कान्ट का प्रभाव दिखाई देता है। उसके अनुसार कल्पना आत्मचेतना के प्रकाशन और सहानुभूति होती है जो अवचेतन और चेतन, विषय और विषयी सम्बन्धों को एकतान करती है—"The imagination projects the life of the mind not upon nature insense, the field of influence from without to which we are subject, but upon a nature that is already a projection of our sensibility "[१]।

छायावादी काव्य का मेरुदण्ड ही कल्पना है। छायावादी कवियो न भी कल्पना के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया है। प्रसाद से लेकर महादेवी तक सभी कवियो ने इसके महत्व को एकमत से स्वीकार किया है। प्रसाद ने इसे 'मनुज प्राण' तो निराला ने 'कल्पना के कानन की रानी' कहा। सुमित्रानन्दन पन्त ने तो स्वय को 'कल्पना पुत्र' ही माना। महादेवी वर्मा के काव्य मे भी कल्पना अनेक वर्णी होकर भाव तथा अनुभूतियो की समस्त विवृतियो म व्याप्त है।

महादवी वर्मा न काव्य को अनुभूति प्रधान माना किन्तु कल्पना को भी कम महत्व नही दिया। उन्होन छायावादी काव्य की कल्पनातिशयता का कारण प्रकृति प्रेम को दिया—छायावाद तत्वत प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीय है, अत इसकी कल्पनायें बहुरगी और विविधरूपी हैं।[२] और काव्य जब प्रकृति का आधार लेकर चलता है तब कल्पना मे सूक्ष्म रेखाओ का बाहुल्य और दीप्त रगों का फैलाव स्वाभाविक हो जाता है। महादेवी ने कल्पना को छायावाद का विशिष्ट गुण स्वीकार करते हुए अनुभूति को प्रधान माना और इसलिए वे कल्पना के लिए प्रत्यक्ष जीवन और जगत से सम्बन्ध अवश्य मानती है क्योंकि उसे स्वप्न से अधिक ठोस धरती की आवश्यकता है—कलाकार यदि सत्य अर्थों मे कलाकार हो, तो वह कल्पना को सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमे वास्तविकता का रग भरेगा और उसस जीवन सगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर लेगा। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान को कल्पना के लिए आवश्यक माना—मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बाध कर चलता रहा है। क्योकि—'हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान म भी कल्पना और अनुमान अपना धूप छाही ताना-बाना बुनते रहते हैं।' यही कारण है कि व कलाकार के कल्पना सौन्दर्य के साथ वास्तविकता का भी महत्त्व देती है।

महादेवी वर्मा की कल्पना स्वत चालित नही है। वह मानसिक चित्रो को

---

1 I A Richards Coleridge on Imagination, P 164

२ महादवी वर्मा महादेवी साहित्य, पृ० २२।

या परिस्थिति का मौलिक उत्तेजना के अभाव मे मानसिक छवि के रूप म अनुभव करने की मानसिक प्रक्रिया को प्रतिभा मानते हैं।

कल्पना पर व्यापक रूप मे तथा स्वतन्त्र मे विवचन करने का श्रेय एडीसन का है। कल्पना शक्ति क्या है और वह किस प्रकार काय करती है, इसे स्पष्ट करने के लिए एडीसन ने लिखा है 'हमारी चक्षुरिन्द्रिय सर्वाधिक पूर्ण और आनन्दप्रद इन्द्रिय है। यह हमारे मानस में भिन्न-भिन्न भावनाओ या बिम्बो का भर देती है, दूर की वस्तुओ से साक्षात्कार करा देती है और बहुत देर तक, बिना थके और बिना आघाय, कायरत रहती है। यही वह इन्द्रिय है जो कल्पना को बिम्ब प्रदान करती है।[१]

एडीसन कल्पना को इन्दिय सवदना की स्थिति म रखकर देखता है। उसकी स्थिति दृश्य पदार्थ के ज्ञान और स्मृतिबोध के भीतर रहती है। उसकी कल्पना का आनन्द इसी बाधग्यता का आनन्द है। एडीसन की कल्पना-धारणा स्थूल और यात्रिक है उसम शास्त्रीयता है अत कल्पना की दाशनिकता और मनोवैज्ञानिकता नही मिलती।

कालरिज ने कल्पना विषयक प्राचीन व नवीन विचारो का अध्ययन कर उन्हे अध्यात्म दर्शन और मनोविज्ञान के परिवेश मे व्यक्त किया है। कालरिज न माना कि 'कल्पना व्यापार का परिणाम है, सौन्दय सृजन और सौन्दर्य पर आश्रित है।' कालरिज न कविता की परिभाषा देते हुए कहा है कविता सौन्दर्य माध्यम द्वारा तात्कालिक आनन्द दृष्टि के लिए भावनाओ का उत्तेजन है। वह स्वीकार करता है कि कविता भावात्मक सृजन का सहज व्यापार है, वह विज्ञान से भिन्न है क्योकि उसका उद्देश्य आनन्द है, सत्य नही। आनन्द की पूर्णता काव्य की जैविक एकता उसकी पूर्ण घटक सफलता पर निर्भर करता है। उसमे अन्त सगति निरूपण की पर्याप्त क्षमता होती है जिसमे कल्पना, प्रकृति, भावना का याग रहता है और जा भाव के रूप म वस्तुपरक धारणाओ का बदल देती है। कालरिज कल्पना को लोकोत्तर निर्माण करन वाली क्षमता मानता है।

कालरिज ने कल्पना के दो प्रकार माने है—प्राथमिक कल्पना (Primary Imagination) और विशिष्ट कल्पना (Secondary Imagination)। प्राथमिक कल्पना द्वारा ही जगत के विरोध एव वैविध्य म समरसता और एकरसता का सचार होता है। यह मानव मन म मानसिक विश्व का प्रस्तुत करती है। यह समस्त मानव ज्ञान की एक जीवन शक्ति है और सम्पूर्ण मानव प्रत्यक्षीकरण (Human Perception) का मुख्य माध्यम है। विशिष्ट कल्पना (Secondary Imagination) कलाकारों म पायी जाती है। उनका मत है कि कलात्मक निर्माण के लिए अभीप्सित

१ भगीरथ दीक्षित समीक्षा लोक, पृ० ३२७।

कल्पना या प्राथमिक कल्पना था नही। इस कल्पना का क्षेत्र व्यापकता और गंभीरता का सुचारु सन्निवश है।

कालरिज ने कल्पना के दार्शनिक पहलुओ पर भी विचार किया है। उनके विचारों पर कान्ट का प्रभाव दिखाई देता है। उसके अनुसार कल्पना आत्मचेतना के प्रकाशन की सहानुभूति होती है जो अवचेतन और चेतन, विषय और विषयी सम्बन्धों को एकतान करती है—"The imagination projects the life of the mind not upon nature insense, the field of influence from without to which we are subject, but upon a nature that is already a projection of our sensibility "[१]

छायावादी काव्य का मेरुदण्ड ही कल्पना है। छायावादी कवियो ने भी कल्पना के सम्बन्ध मे पर्याप्त विचार किया है। प्रसाद से लेकर महादेवी तक सभी कवियों ने इसके महत्व को एकमत से स्वीकार किया है। प्रसाद ने इसे 'मनुज प्राण' तो निराला ने 'कल्पना के कानन की रानी' कहा। सुमित्रानन्दन पन्त ने तो स्वय को 'कल्पना पुत्र' ही माना। महादेवी वर्मा के काव्य म भी कल्पना अनेक वर्णी होकर भाव तथा अनुभूतिया की समस्त विवृत्तियो म व्याप्त है।

महादेवी वर्मा ने काव्य को अनुभूति प्रधान माना किन्तु कल्पना को भी कम महत्व नहीं दिया। उन्होंने छायावादी काव्य की कल्पनातिशयता का कारण प्रकृति प्रेम को दिया—छायावाद तत्वत प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है, अत इसकी कल्पनायें बहुरगी और विविधरूपी हैं।[२] और काव्य जब प्रकृति का आधार लेकर चलता है तब कल्पना म सूक्ष्म रेखाओ का बाहुल्य और दीप्त रगो का फैलाव स्वाभाविक हो जाता है। महादेवी ने कल्पना को छायावाद का विशिष्ट गुण स्वीकार करते हुए अनुभूति का प्रधान माना और इसलिए वे कल्पना के लिए प्रत्यक्ष जीवन और जगत से सम्बध अवश्य मानती है क्योंकि उसे स्वप्न से अधिक ठोस धरती की आवश्यकता है—कलाकार यदि सत्य अर्थों म कलाकार हो, तो वह कल्पना को सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमे वास्तविकता का रग भरेगा और उससे जीवन सगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर लेगा। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान को कल्पना के लिए आवश्यक माना—मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बाध कर चलता रहा है। क्योकि—'*हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान म भी कल्पना और अनुमान अपना धूप-छाही ताना-वाना बुनते रहते हैं।*' यही कारण है कि व कलाकार के कल्पना सौन्दर्य के साथ वास्तविकता का भी महत्व देती है।

महादेवी वर्मा की कल्पना स्वत चालित नही है। वह मानसिक चित्रा को

---

१ I A Richards Coleridge on Imagination, P 164

२ महादवी वर्मा महादेवी साहित्य, पृ० २२ ।

रूपायित करने के लिए सायास प्रक्रिया है। महादेवी की कल्पना उड़ान मात्र न होकर कवि की सहज नियन्त्रण शक्ति लिए हुए है। यह नूतन सृजन की प्रेरणा से अनुस्यूत है। उनकी कल्पना अरूप को रूप, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष, अलौकिक को लौकिक सन्दर्भ प्रदान करती है। अन्तर की सूक्ष्म गहराइयों से उदित उनकी कल्पना तिर्यक गतिवाली है। गहन चिंतन और सूक्ष्मता ने उनकी कल्पना को अस्पष्ट, दुर्बोध और अग्राह्य बना दिया फिर भी वह कोरी भावुकता अथवा सामान्य कल्पना वृत्ति या 'डेलेरियम' नहीं है।

कल्पना के मुख्यत दो भेद किये जा सकते हैं—

१ पुनर्निमायक कल्पना,

२ रचनात्मक कल्पना।

सृजनात्मक या रचनात्मक कल्पना के पाँच प्रधान भेद हैं—(१) विभाव विधायक कल्पना, (२) तद्भव कल्पना, (३) अनुमानाश्रित कल्पना, (४) सृजनात्मक कल्पना, (५) मुक्ताहच्छिकी कल्पना।

पुनर्निमायक कल्पना के तीन प्रधान भेद हैं—(१) स्मृति निर्भर कल्पना, (२) स्मृत्याभास निर्भर कल्पना, (३) प्रत्याभिज्ञाश्रित कल्पना।

रचनात्मक कल्पना कला के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके माध्यम से ही कलाकार अपनी अनुभूतियो का चयन कर बिम्बों का विधान करता है। महादेवी वर्मा के काव्य मे सृजनात्मक कल्पना का ही वैशिष्ट्य है। उनकी कल्पनाओं को निम्न रूप मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) विराट कल्पना—

महादेवी की कल्पना भव्य व विराट है। निर्गुण निराकार प्रियतम को आलम्बन बनाकर उन्होंने अभिव्यक्ति मे भव्यता उत्पन्न की है। हिमालय, अप्सरा, गगन, बादल आदि की भव्य कल्पनाये उनके काव्य म उपलब्ध हैं—

तेरा महिमा की छाया-छवि,
छू देता वारीश अपार
नील गगन पा लेता घन सा
तमसा अन्तहीन विस्तार।

(रश्मि, पृ० ७०)

(२) मानवीकरण निर्भर कल्पना—

सर्वात्मवादी चेतना के दृष्टिकोण के कारण महादेवी के काव्य म मानवीकरण निर्भर कल्पना की प्रचुरता है—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज स
आ वसत रजनी

तारकमय नव वणी बधन
शीश फूल कर राशि का नूतन।

(नीरजा, पृ० १२)

(३) प्रकृति कल्पना—

महादेवी के गीतो मे ललित कल्पना विधान का श्रेय उनकी प्रकृति कल्पना को है। प्रकृति के विविध उपकरणो व स्पन्दनो मे वे उस 'अज्ञात प्रियतम' का आरोप करती है और ये स्वीकार करती है कि छायावाद प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है—

सिहर सिहर उठता सरिता उर
खुल खुल पडते सुमन सुधा भर
मचल मचल आते पल फिर फिर
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी।

(नीरजा, पृ० १३)

(४) सावयव कल्पना—

यह रमणीय कल्पना का एक प्रकार है। इस प्रकार की कल्पना मे कही गयी बाते एक दूसरे से सम्बद्ध रहती हैं—

इन कनक रश्मियो मे अथाह
लेता हिलोर तम सिधु जाग
बुदबुद से वह चलते अपार
बनतो प्रवाल का मृदुल कूल
जो क्षितिज रेख थी कुहर-म्लान।

(यामा, पृ० ७१)

(५) विभाव विधायक कल्पना—

इसमे आलम्बन के कलापूर्ण चित्रण द्वारा साधारणीकरण मे शक्ति उत्पन्न की जाती है—

गुलालो से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप
विहसती साध्य भरी सुहाग
दृगो से झरता स्वप्न पराग

(रश्मि, पृ० ५)

(६) स्मृति कल्पना—

महादेवी के कल्पना विधान म स्मृति निर्भर कल्पना की प्रचुरता है। वेदना और विरह काव्य होने के कारण उनके काव्य म स्मृतियों का मोह अधिक है—

विस्मृति तिमिर म दीप हो
भवितव्य का उपहार हो
बीते हुए स्वप्न हो
मानव हृदय का सार हो ।

(नीहार, पृ० १२)

(७) सकल्पित कल्पना—

इसे सृजनात्मक या रचनात्मक कल्पना की सज्ञा दी जा सकती है । विविध उपकरणो के बीच तारतम्य स्थापित कर महादेवी ने नूतन सजना की है—

नव इन्द्रधनुप सा चीर
महावर अजन ले
अलि गुजित मीलित पकज
नूपुर रूनझुन ल
फिर आई मनाने साझ
मैं वेसुध मानी नही ।

(नीरजा, पृ० ४०)

(८) भावात्मक कल्पना—

प्रगीत के लिए भावात्मक कल्पना अनिवार्य है । इसमें भाव और कल्पना का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है—

पिक की मधुमय बशी बाली
नाच उठी सुन अलिनी भोली
अरुण सजल पाटल बरसाता
तम पर मृदु पराग की रोली
मृदु अवधर दपण-सा-सर
आज रही निशि दृग-इदीवर

(नीरजा, पृ० ४०)

(९) सादृश्य निभर कल्पना—

स्मृति या साहचर्य के माध्यम से जब प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत का-सा दृश्य-विधान किया जाता है तब सादृश्य निर्भर कल्पना होती है—

विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरद भरी सी
जिसम उजियाली रातें
लुटती, घुलती मिसरी-सी ।

(नीहार, पृ० २८)

(१०) तद्भव कल्पना —

जब कवि एक ही वर्ण्य-विषय को लेकर अनेक बिम्बों की सर्जना करता चला जाता है तब तद्भव कल्पना का जन्म होता है—

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति भी।

(नीरजा, पृ० २८)

(११) क्लिष्ट कल्पना—

कल्पना की अतिशयता और अनुभूति का शैथिल्य कल्पना को कभी कभी क्लिष्ट भी बना देता है। महादेवी मे भी ऐसे स्थल मिलते हैं—

निश्वासो का नीड निशा का
बन जाना जब शयनागार
मिट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियो के वन्दनवार।

(नीहार, पृ० १५)

महादेवी वर्मा के कल्पना विधान का वैशिष्ट्य यह है कि उनकी कल्पना म भाव शृङ्खलाबद्ध है। उसकी अर्थवत्ता अन्यायाश्रित है। महादेवी की काव्य कल्पना का निरन्तर विकास होता रहा है। नीहार मे उनकी कल्पना अनुभूति प्रधान है परन्तु परवर्ती काव्य कृतियो म यह बौद्धिक और चिन्तन-प्रधान हो गयी है। उनका प्रणयमूलक काव्य-कल्पनायें सार्थक और सवेदनशील हैं, परवर्ती काव्य कृतियो मे उनकी कल्पना अत्यधिक भव्य और उदात्त हो गयी है जिसमे सौन्दर्य के अनेक आयामो के साथ चिन्तनगत सूक्ष्मता है किन्तु वह वायवी या अग्राह्य नही है। उनकी रूपविधायक कल्पना केवल रूपों का चित्रण नहीं करती बल्कि रस, गध, स्पर्श का भी अकन करती है। उनकी कल्पना बौद्धिक होते हुए भी अनुभूतिशून्य और चमत्कारमयी नही है।

उनकी कल्पना का अपना जीवन है। कालरिज ने कला को Biological माना है।[1] महादेवी की कल्पना भी जैविक और उनकी अन्तर्दृष्टि की उपज है, जो नूतन सवेदनाओ से सिक्त होकर हर बार उनके काव्य को नूतन सदर्भ देती है।

(२) बिम्ब-विधान

बिम्ब अग्रेजी के शब्द Image का पर्याय माना गया है। सामान्य रूप से इसका प्रयोग छाया, प्रतिच्छाया, प्रतिमा, मानस चित्र के लिए किया जाता है। मनो-विज्ञान मे इसका अर्थ है मानसिक पुनर्निर्माण। जो कि गध, स्पर्श, स्वाद स

१ M H Abrams The Mirror and the Lamp, P 164

सम्बधित एद्रिय होता ह कितु साहित्यिक बिम्ब मनोवैज्ञानिक बिम्ब की तुलना म व्यापक है।

स्वच्छन्दतावादी साहित्य की भावात्मक सजन प्रक्रिया बिम्बो पर ही केंद्रित है। काव्य म बिम्ब केवल सम्मूतन विधान की कला नही बल्कि कवि के भीतर की अन्त शिल्प की सौदयधारणा है, जो आवयविक एकता से युक्त होती है। सौदर्यानुसधायिका प्रतिमा का निर्माण इसी हालत मे सम्भव है।[१] वस्तुत स्वच्छन्दतावादी चिन्तन म बिम्ब सृष्टि की मनोवैज्ञानिकता से उसके आभ्यन्तर का प्रकाशन होता है।[२] केदारनाथसिंह का भी मत है—बिम्ब केवल वस्तु का चित्रण या प्रतिबिम्ब ही प्रस्तुत नही करता वरन् वह अपनी सत्ता से कवि की किसी विशेष मनोदशा और दृष्टिकोण को भी सूचित करता है।[३] डा० नगेन्द्र के मतानुसार का यबिम्ब शब्दाथ के माध्यम स कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल मे भाव की प्रेरणा रहती ह।[४] वस्तुत अनुभूति और बिम्ब म गहरा सम्बध है। बिम्ब की निर्माण प्रक्रिया अनुभूति की व्याख्या है। अनुभूतिया का वैभव भावात्मक प्रतिमाओ मे समाहित रहता है।[५]

महादेवी वर्मा ने भावो की अभिव्यक्ति के लिए बिम्ब विधान को सबसे सशक्त और प्रमुख साधन माना। चित्रकला और मूर्तिकला के प्रभाव से महादेवी के काव्य मे सजीवता दृष्टिगोचर होती है। समय भाषा म अभिव्यक्त उनके शब्द चित्र अथवा बिम्ब एक ओर जहाँ उनके सूक्ष्म और अमूर्त भावो को प्रेषणीय बनाते हैं वही दूसरी ओर वे भावो की समृद्धि और तीव्रता म भी सहायक है। चित्रकार प्रतिभा से उनके बिम्ब विधान की चित्रोपमता अपूव है। सुमित्रानन्दन पन्त न का य के लिए चित्रभाषा को आवश्यक माना है—*कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पडती है, उसके* शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हो, सेब की तरह जिनके मधुर की लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड जो अपने भाव का अपनी भाषा को अपनी ही ध्वनि म आँखो के समक्ष चित्रित कर सकें, जो झकार म चित्र और चित्र म झकार हो।[६] फ्रैंककरमोड ने वदनात्मक अ तमुखता को बिम्बसजना के लिए आवश्यक

---

१ डा० राजेश्वरदयाल सक्सेना स्वच्छन्दतावादी समीक्षा और साहित्य चितन, पृ० ३८८।

२ Franke kermode Romantic Image, P 47

३ केदारनाथ सिंह कल्पना और छायावाद, पृ० ८४।

४ डा० नगेन्द्र आस्था के चरण, पृ० १६४।

५ डा० सुरेन्द्र माथुर छायावाद और काव्य बिम्ब, पृ० ५।

६ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव, पृ० ३०।

माना ।[१]

महादेवी के काव्य मे वेदना, दु ख की प्रधानता के कारण उनके बिम्ब विधान म वेदना की आनन्दमूलकता सजीव हो गयी है—

इस मीठी सी पीडा मे, डूबा जीवन का प्याला
लिपटी सी उतराती है, केवल आँसू की माला ।[२]

वस्तुत उनका सम्पूर्ण काव्य एक पूर्ण बिम्ब है, जो अनुभूति की सर्जना है। काव्य की कुछ पक्तिया मे भावना, कुछ मे कल्पना और कुछ मे बौद्धिकता का आधिक्य बिम्ब के विभिन्न स्तरा का, आकार-प्रकारो का निर्माण करता है। महादेवी के काव्य मे शब्दबिम्ब, वर्णबिम्ब, जटिल बिम्ब, सयुक्त बिम्ब, श्रावणिक बिम्ब, गत्वर बिम्बा की प्रधानता है।

१—शब्द बिम्ब

शब्द बिम्ब मे कला का मूतरूप और अभिव्यक्ति की सक्षिप्तता होती है। शब्द बिम्ब के ही दो भेद निरूपित किय जाते हैं—भावबिम्ब और ध्वनिबिम्ब। ध्वनिबिम्ब, भावबिम्ब की अपेक्षा अधिक कलात्मक हुआ करता है। क्रम की दृष्टि से ध्वनि बिम्ब भावबिम्ब का परवर्ती है, क्योंकि काव्यापयुक्त प्रत्येक शब्द साधारण प्रयोग मे भी कोई न कोई भाव बिम्ब रखता है।[3] महादेवी के भावबिम्बो की प्रणय की मधुरता और रागात्मकता का समावेश है—

(१) बिछाती थी सपनो का जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर।[४]

(२) तुम विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अज्ञान।[५]

२—ध्वनि बिम्ब

महादेवी के काव्य मे ध्वनि बिम्बा की अधिकता नही है क्योकि भावना की अभिव्यक्ति और गति स्वरो पर अधिक निर्भर है। इसका कारण है काव्य सगीत के मूल तत्व स्वर है न कि व्यजना और भावना का रूप स्वरो के सम्मिश्रण उनकी यथोचित मैत्री पर ही निर्भर रहता है।[६] किन्तु व्यजना मिश्रित काव्य होने के कारण महादेवी के काव्य बिम्बो की व्यजना कम नहीं हो पाती—

---

१ Frank Kermode Romantic Image P 1-3
२ यामा, पृ० ६१।
३ डा० कुमार विमल छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ० १८२।
४ नीहार, १० पृ०।
५ यामा, पृ० १९।
६ पल्लव, पृ० ३८।

(१) झुक-झुक झूम-झूम कर लहरें
भरती बूदा के मोती
रजनी के श्याम-कपोलो पर ढरकीले श्रम के कन ।[१]

(२) पी पी मे चिरदुख प्यासी बनी
सुख सरिता की रग-रेली भी
सखि ! मैं हूँ एक पहेली भी ।[२]

३—वर्ण बिम्ब

तीव्र गहन सवेदनायुक्त होने के कारण महादेवी का काव्य हृदयस्पर्शी है। चित्र शब्द वर्णों की अपेक्षा रखता है। इस तरह के वर्ण बिम्बो मे महादेवी कीटस, रोजरी, स्विनबन तथा सस्कृत के बाणभट्ट और कालिदास के समान ही कुशल और प्रवीण हैं। कुशल चित्रकार होने के कारण उनके वर्ण बिम्बो का वर्ण परिज्ञान उच्च-कोटि का है—

(१) कनक से दिन, मोती-सी रात
सुनहली साझ, गुलाबी प्रात[३]

अथवा— आखो म रात बिताकर जब
विधु ने पीला मुख फेरा
आया फिर चित्र बनाने
प्राची म प्रात चितेरा ।[४]

इस प्रकार अनेक स्थलो पर वर्ण योजना और रगवाद की बारीकी से 'बिंबो' म ऐन्द्रियता और कलात्मक सौष्ठव का समावेश हो जाता है। उनके काव्य म सात्विक बिम्बो की प्रधानता है अत चाँदनी, फेन, चादी, नीहार आदि प्रयोग इसी बात की पुष्टि करता है। 'साध्यगीत' म जहाँ रगो का वैविध्य मिलता है तो 'दीपशिखा' एक दो ही रगो का विधान है जैसे हल्का नीला, सफेद।

४—श्रावणिक बिम्ब

महादेवी ने ध्वन्यात्मक सौन्दर्य के आश्रय से बिम्बो को सवेद्य अश को मूर्तिमत करने का प्रयास किया है—

नव इन्द्रधनुष का चीर
महावर अजन ले

१ यामा, पृ० १४।
२ वही, पृ० १७८।
३ वही, पृ० ७३।
४ वही, पृ० ८।

अलि गुंजित मीलित पंकज
नूपुर रुनझुन ले ।

५—गत्वर बिम्ब

कल्पना और सौंदय की प्रधानता से महादेवी के काव्य मे गत्वर बिम्बा की अधिकता है। जिन्हें दो रूपो मे बांटा जा सकता है—(१) स्मृति बिम्ब, (२) तात्कालिक बिम्ब।

(१) स्मृति बिम्ब

स्मृति बिम्ब में स्मृति के सहारे अतीति की घटनाओ, भावो और स्थितियो की मानसिक पुनरावृत्ति की जाती है। स्मृतिपरक कल्पना-व्यापार ही इस तरह के बिम्बो की सृष्टि करता है—

कौन आया था न जाने सपन मे मुझको जगाने
याद मे उन अगुलिया को, पर मुझे है युग बिताने।[२]

(२) तात्कालिक बिम्ब

तात्कालिक बिम्ब का सम्बन्ध रूप, रस, गध, ध्वनि से होता है। महादेवी के काव्य मे रूप, रस, गध का ओर-छोर नही है। गीतो मे इतना मधुकोष है कि नयन वही रह जाते हैं—

(१) मोम-सा तन घुल चुका
अब दीप सा मन जल चुका।[३]

(२) उमड आयी रे दृगा म
सजनि कालिन्दी निराली।[४]

जलने घुलने, कालिन्दी उमडने मे वेदना की व्याकुलता, करुणा की तरलता निहित है।

६—प्रसृत बिम्ब विधान

वेदना और व्यथा जैसे अमूत भावों के लिए महादेवी प्रसृत बिम्बो का प्रचुर प्रयोग करती हैं—

थकी पलकें सपनो पर डाल
व्यथा मे सोता हो आकाश
छलकता जाता हो चुपचाप
बादलो के उर से अवसाद।[५]

---

१ यामा, पृ० १५३।
२ नीरजा, पृ० १८।
३ दीपशिखा, पृ० १०७।
४ यामा, पृ० १३२।
५ महादेवी वर्मा, यामा, पृ० २०।

७—जटिल बिम्ब

चिन्तन की प्रधानता के कारण महादेवी के काव्य में कहीं-कहीं दुरूह, जटिल, संश्लिष्ट और अस्पष्ट हो गए हैं—

मेरे प्रति रोमों से अविरल
झरते हैं निर्झर और आग
करती विरक्ति आसक्ति प्यार
मेरे श्वासों में जाग-जाग।[1]

८—उदात्त बिम्ब

छायावादी कविता में उदारता पृष्ठभूमि के रूप में है। उदात्त बिम्ब के लिए 'विराट चित्र' का प्रयोग अनिवार्य माना गया है किन्तु महादेवी वर्मा ने अपने बिम्ब विधान में मसृणता और विराटता दोनों को एक साथ स्वीकृति दी—

अवनि अम्बर की सुनहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।[2]

अन्य छायावादी कवियों की भाँति महादेवी में अनेक ज्ञान बिम्बों (ब्राइट इमेजेज) के संकेत मिलते हैं जो अपनी नवीनता और उर्वरता के कारण ध्यान आकर्षित करने के साथ ही सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना को जागरित करते हैं—

यह विरह की रात का कैसा सवेरा है?
पंक-सा स्पन्दन से लिपटा अँधेरा है।[3]

महादेवी के अधिकांश बिम्ब उनकी अभिजात्यपरक सौन्दर्य-चेतना करने वाले हैं—नीलम, शृङ्गो, मरकत, स्वर्णिम रश्मि, कनक-रजत के मधु प्याले, विद्रुम हाला, प्रवाल मूँगे आदि का प्रयोग वे इसी आभिजात्यपूर्ण चेतना से करती हैं। कभी कभी महादेवी अपने काव्य में एक ही भाव की अभिव्यक्ति के लिए अनेक बिम्बों का प्रयोग करती हैं तो कहीं कहीं भावदशाओं के साथ बिम्ब में भी परिवर्तन करती हैं। 'मैं नीर भरी दुख की बदली' गीत में हमें यही विशेषता मिलती है। चित्र-प्रधान होने के कारण उनके काव्य का अर्थ शब्द निर्भर नहीं होता, वरन् वह बिम्ब व्यंग्य होता है। प्रत्येक बिम्ब अपने आप में यथासम्भव पूर्ण रहकर भी एक दूरवर्ती पूर्णता से केन्द्रित वृहत

१ महादेवी वर्मा, नीरजा, पृ० ३०।
२ महादेवी वर्मा, यामा, पृ० ८१।
३ दीपशिखा, पृ० १३२।

भिन्न वृत्त मे समाहित होने के लिए मानो निश्चित दिशा की ओर अनुधावन करता है। महादेवी के ऐसे बिम्बो मे हमे अभिव्यक्ति का लाघव या कल्पना का शार्टहैण्ड मिलता है।[1]

अनेक बार महादेवी जी भावो की अभिव्यक्ति के लिए गिने-चुने शब्दो का प्रयोग करती हैं किन्तु अपने इस दोष से वे पूर्णतया परिचित हैं। उन्हीं के शब्दों मे—साधारणत हमारे विचार विज्ञापन होते हैं और भाव सक्रामक। इसी से एक की प्रधानता पहले मानवीय होने मे है और दूसरे की सवेदनीय होने मे। कविता अपनी सवेदनीयता में ही चिरन्तन है। चाहे युग विशेष के स्पर्श से उसकी बाह्य रूपरेखाओ मे कितना ही अन्तर क्यों न आ जाये।' जहाँ तक महादेवी के काव्य बिम्बो मे जटिलता और अस्पष्टता का प्रश्न है उसका कारण उनका चित्रमोह है क्योंकि उनकी काव्य कल्पना और चित्रकल्पना सहचरी है किन्तु समगति नही।[2] अनुभव की गहनता, चित्रोपमता और वेदना की प्रधानता ने उनके बिम्बा को मधुर, ललित और कोमल बना दिया है।

३—प्रतीक विधान

प्रतीक विधान चिन्तन का आवश्यक अग है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनमे केवल अर्थमात्र ही नही प्रतीत होता वरन् भावनाओ का उद्बोधन मे होता है। जिन वस्तुओ मे तनिक भी निजी विशेषता होती है तथा जिन पर दीर्घ वासनाओ का प्रभाव पडा है वे शब्द हमारे काव्य में प्रतीक का कार्य करते हैं। प्रतीको मे स्थूल और सूक्ष्म सकेत होते हैं, जिनका ग्रहण ग्राहक को व्यजना के माध्यम स होता है। गोचर-अगोचरता दोनो प्रतीको मे निहित होती है। प्रतीक दो प्रकार के माने गये हैं—एक का प्रयोग गणितशास्त्र मे करते हैं, दूसरे का साहित्य मे। दूसरी कोटि के प्रतीको के सम्बन्ध मे डॉ० रामअवध द्विवेदी का मत है—इस कोटि के प्रतीको से केवल किसी सामान्य तथ्य अथवा वस्तु का ज्ञान मात्र नही होता और न केवल समानता का ही बोध होता है। सामान्य सादृश्य के साथ साथ कुछ ऐसे सूक्ष्म और साकेनिक तत्व मिले रहते हैं और इनके माध्यम से ऐसे विचार और भाव जागृत होते हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध हम उस प्रतीक अथवा शब्द से सरलतापूवक नही जोड सकते। एक प्रतीकात्मक शब्द अनेक स्तरो पर अपना कार्य करता है और अनेक प्रकार के भाव और मानसिक चित्र उत्पन्न करता है। प्रयास करने पर भी प्रतीको के सम्पूर्ण अर्थ को हम शब्दो में प्रगट नही कर सकते हैं, वह तो अनुभव का ही विषय बन सकता है। प्रतीक मे सूक्ष्म निर्देशन की शक्ति होती है उसकी कोई सीमा नही।[3] प्रतीक मात्र

---

१ डा० सुरेन्द्र माथुर · छायावाद और बिम्ब विधान, पृ० १७६।
२ डा० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५।
३ डा० राम अवध द्विवेदी—साहित्य रूप, पृ० २७२-२७३।

का पुनरर्थापक नहीं होता, वह भावनाओं की प्रेषणीयता का माध्यम भी है।
के द्वारा प्रस्तुत सत्य के आधार पर अप्रस्तुत सत्य का प्रत्यक्षीकरण होता है।"[1]

पाश्चात्य जगत में आन्दोलन के रूप में प्रतीकवाद का जन्म फ्रांस के साहित्य
जेराल्ड डी० नर्वल की कृतियों में उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। बादलेयर, मेलार्मे,
जोना आदि ने इसे आगे बढ़ाया। इंग्लैंड में एजरापाउण्ड और टी० एस०
ट इसके प्रमुख समर्थक थे। प्रतीकवाद में रूढ़िगत माध्यम से काव्य को मुक्त
अभिव्यंजना और शैली को नवीनतम प्रयोगों से मण्डित किया। कविता और
ा के ऐक्य और बुद्धि की अपेक्षा भावना पर इसमें बल दिया गया। साहित्य या
के क्षेत्र में प्रयुक्त प्रतीक संवेदनात्मक और भावात्मक होते हैं। उसका कारण है
प्रतीकों का निर्माण, सचयन और योजना कल्पना द्वारा होती है। इस कार्य में
ा को विशाल सांस्कृतिक उपलब्धियों और चिराचरित भावना पद्धतियों से सहा-
मिलती है।[2] जुग ने इसीलिए कहा था कि कविता हमारे वर्तमान शब्दों के
ण में दूरस्थ आदिम शब्दों की प्रतिध्वनि है।[3]

छायावादी प्रतीक विधान आन्तरिक प्रेरणा पर आधारित होने के कारण
रायुक्त सूक्ष्म अभिव्यंजनापरक है और सत्य तो यह है कि प्रतीक विधान अल-
की प्राचीन शैलियों और स्थूलता से मुक्त होने का माध्यम है। जिसमें हृदय
दर भाव उभार के बिना ही चमत्कारपूर्ण सरसता से उद्भूत किये जाते हैं।[4]

क्रोचे के अनुसार प्रतीक कला की आत्मा है जिसे सौन्दर्यानुभूति से अलग नहीं
जा सकता और इस अर्थ में सभी कलायें प्रतीकात्मक हैं। सूजन लैंगर ने 'प्रति-
सिद्धान्त' के आधार पर कलाकृति को 'वस्तु' न मानकर 'प्रतीक' माना। यद्यपि
ने 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग प्रतीक के प्रचलित अर्थ से भिन्न अर्थ में किया है
कि उन्होंने आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है—

A symbol is any device where by we are enabled to make an
raction [5]

छायावादी कवियों के प्रतीक विधान को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

Symbol's may be defiend at the representation of a reality on
one level of reference by a corresponding reality on another
Joseph T Shipley—Dictionary of World Literature, P 405
1962

दारनाथसिंह—कल्पना और छायावाद, पृ० १०४।

C G Jung Contribution to Analytical Psychology

Frank Kermode Romantic Image, P 110

Susanke Langer Feeling and From Perface, P 11

(१) परम्परागत प्रतीक (२) व्यक्तिगत प्रतीक (३) प्राकृतिक प्रतीक। हीगेल के अनुसार परम्परागत प्रतीकों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के प्रतीकों में अस्पष्टता और द्वयर्थकता निहित रहती है।[1] महादेवी के काव्य का वैशिष्ट्य उनके प्रतीक विधान में ही निहित है। वेदना की सूक्ष्म सौंदर्य अभिव्यक्ति के लिए महादेवी ने विविध प्रकार से प्रतीकों का उपयोग किया। आलम्बन की सूक्ष्मता और अतीन्द्रिय सत्ता के प्रति आकर्षण के कारण एक ओर जहाँ उनके प्रतीक रहस्यात्मकता की सृष्टि करते हैं वहीं दूसरी ओर कलात्मक सर्जना में ढले उनके प्रतीक आत्माभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। उनके साथ तादात्म्य स्थापित करना तो चाहे सम्भव न हो पर प्रभाव की छाप अमिट रहती हैं। शारीरिक सवेदन जितने अशक्त हैं, आत्मिक सवेदन उतने ही समर्थ। जो उस विशिष्ट की ओर सकेत करते हैं जिनका लालित्य बोध अद्भुत मधुमति भूमिका है। ये प्रतीक उत्पादन विशेष के प्रतिनिधि न होकर प्रत्यय विशेष के साधन हैं।[2]

महादेवी के काव्य की विशेषता है कि उनके काव्य में लगातार प्रयुक्त होने वाले बिम्ब ही कालान्तर में प्रतीकों के रूप में उपस्थित हो जाते हैं—दीप, फूल, दर्पण, शलभ, वीणा आदि कुछ ऐसे ही आरम्भिक बिम्ब हैं जो उनके काव्य में प्रतीक के रूप में बार-बार प्रयुक्त होते हैं। इन प्रतीकों की एक मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि है। फ्रायड और युंग ने प्रतीकों का सम्बन्ध अचेतन मन Unconcious mind में स्थापित किया किन्तु फ्रायड और जुंग के विचारों में अन्तर है। फ्रायड ने प्रतीकों को दमित वासनाओं की छद्म अभिव्यक्ति माना किन्तु जुंग ने उनका मूल समष्टिगत अचेतन माना। जिसमें अनन्तराल से चले आने वाले परिवारगत, जातिगत प्रभाव एवं स्मृतियाँ दबी रहती हैं और समय समय पर वे चेतन मन की ओर अग्रसर होती रहती है।

महादेवी के प्रतीकों के मूल में उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति है। महादेवी ने लौकिक प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्म, अलौकिक अमूर्त को व्यक्त करने का प्रयास किया है जिसमें यत्र तत्र उनकी अतृप्ति के सूक्ष्म सकेत भी मिलते हैं—

> मेरे प्रियतम को भाता तम के पर्दे में आना
> नभ की तारकदनियों क्षणभर को बुझ जाना।

अथवा—

> तुम्हे बाँध पाती सपने में तो
> चिर जीवन प्यास बुझा लेती
> उस छोटे क्षण अपने में।

---

1 Hegel Philosophy of fine Art

२, कृष्णदत्त पालीवाल महादेवी रचना प्रक्रिया, पृ० ११७।

किन्तु उनका काव्य ऐंद्रिय संकेतों से मुक्त है। उनकी भावनायें उदात्त और लोकोत्तर हैं। फ्रायड के आधार पर उनके स्वप्न, प्रतीक, प्रतीकों में निहित मानसिक अन्तर्द्वन्द का अध्ययन किया जा सकता है किन्तु महादेवी का काव्य Super Ego प्रधान होने के कारण उदात्तता उसमें समाहित है और यही उदात्तता उनके काव्य की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। महादेवी के गीत ही नहीं उनके काव्य संग्रहों के शीर्षक भी प्रतीकात्मक हैं—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा क्रमशः आशा, उल्लास, उपासना, साधना और आस्था और विश्वास के प्रतीक हैं।

उनके काव्य में परम्परागत, व्यक्तिगत और प्राकृतिक तीनों ही प्रकार के प्रतीक उपलब्ध हैं—

१—परम्परागत प्रतीक

वेद, उपनिषद्, बौद्धदर्शन के प्रभाव के कारण उनके गीतों में परम्परागत प्रतीक मिलते हैं—

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक है
शलभ में जिसके प्राण वह निठुर दीपक है

'कमल, चातक, शलभ, दीपक आदि परम्परागत प्रतीक हैं जिनका वर्णन पौराणिक काव्यों में प्राप्त होता है।

२—व्यक्तिगत प्रतीक

व्यक्तिगत प्रतीकों के माध्यम से महादेवी ने अपनी आत्म चेतना को अभिव्यक्त किया। उन प्रतीकों में वेदना का भावात्मक सौंदर्य और कवियित्री की मानसिक स्थिति कलात्मक रूप में अभिव्यक्त होती है—

पावन घन की उमड निखरती
शरद निशा की नीरव घरती
धो देती जग का विषाद
ढुलते लघु कन अपने में
तुम्हें बांध पाती सपने में।[1]

'मधुसिक्त' सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए महादेवी ने विभिन्न ललित कलाओं जैसे संगीत, मूर्तिकला, नृत्यकला से भी प्रतीक ग्रहण किये—

(१) वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।[2]

(२) तूलिका में कर इन्द्रधनु
तुमने रंगा उर प्यार से।[3]

---

१ यामा, पृ० १२६।
२ नीहार, पृ० ११।
३ नीरजा, पृ० ७३।

(३) मेघो मे मुखरित किंकिणस्वर
अप्सरि तेरा नतन सुदर ।[१]

चिन्तन पक्ष की प्रधानता के कारण उनके प्रतीकों म दार्शनिक भी समाहित है जिनके माध्यम से वे सृष्टि, प्रलय जीवन ससार आदि पर विचार करती हैं—

(१) जब असीम से हो जावेगा
मेरी लघु सीमा का मेल
देखोगे तुम देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल ।[२]

मे आत्मा और परमात्मा के ऐक्य का प्रतिपादन है तो—

स्वणलता सी क्व सुकुमार
हुई जिसमे इच्छा साकार
उगल जिसने तिनरगे तार
बुन लिया अपना ही ससार ।[3]

म सृष्टि रचना से सम्बन्ध पर विचार व्यक्त किया गया है ।

३—प्राकृतिक प्रतीक

भावो की तियक् योजना के लिए महादेवी ने प्रकृति की उपकरणो की भाँति प्रयोग किया । अपनी अनुभूति मे ढालकर वे प्रकृति का विशिष्ट रूप देती है जो उनकी रहस्यपरक भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न रूप ग्रहण करती हैं—

(१) दूर छूटा वह परिचित कूल
वह रहा है वह झझावात ।

(२) जग पतझर का नीरव रसाल
पहने हिमजल की अश्रुमाल
मैं पिक बन जाती डाल-डाल
सुन फूट-फूट उठते पल-पल
सुख दुख मजरियो के अकुर ।[४]

शलभ, दीपक, कमल महादेवी के प्रिय प्रतीक है । 'दीपक' और 'रात्रि' का अकन महादेवी न विविध रूपो म बार-बार किया है किन्तु प्रत्येक बार नूतन सदभ देकर । उदाहरण के लिए 'दीपक' प्रतीक—

१ यामा, पृ० १८८ ।
२ यामा, पृ० ५ ।
३ रश्मि, पृ० १०८ ।
४ यामा, पृ० १८० ।

(१) उर का दीपक शिर स्नेह अतल
    सुधि को शत शाया मे निश्चल
    सुख स भीनी, दुख से गीली
    वर्ती से साँस अशेष रही ।[1]
(२) मधुर मधुर मेरे दीपक जल ।[2]
(३) यह मदिर का दीप इसे नीरव जलने दा ।[3]
(४) क्षात होता जाता है गात
    वेदनाओ का होता अत
    किन्तु करते रहते ही मौन
    प्रतीक्षा का आलोकित पथ
    मिखा दो न नेही की रीन
    अनाखे मेरे नेही दीप ।[4]

इसी तरह रात्रि का बसन्त रजनी, ऊर्मि, विभावरी, सुकेशिनी इत्यादि रूपा मे चित्रण मिलता है ।

महादेवी के काव्य प्रतीक उनकी शिल्पगत साधना की श्रेष्ठता के प्रतीक है । अर्न्तदृष्टि विधायक कल्पना, लक्षणा और व्यजना का प्रयोग उन प्रतीका में सौन्दर्य की वृद्धि करता है । उनकी एक ही कविता मे प्रतीक की अनेक इकाइयो का प्रयाग मिलता है । विषय की ऐकान्तिकता के कारण उनके काव्य का मूल विषय है वेदना और इसीलिए प्रतीका मे वैविध्य नही मिलता किन्तु सीमित क्षेत्र म ही वैविध्य उत्पन्न कर वे प्रतीको का नूतन सयोजन करती हैं । डॉ० नगेन्द्र न उनकी प्रतीक योजना का विश्लेषण करत हुए लिखा—उपमाना मे प्रतीका मे अधिक वैचित्र्य तथा वैविध्य नही है—जीवन और जगत के अत्यन्त सीमित क्षेत्र से इनका चयन हुआ है परन्तु उनकी सयाजना म वैचित्र्य है, कहीं महादेवी चित्र की पुनरावृत्ति,नही करती । उपकरण प्राय वे ही हैं किन्तु उनकी सयोजना सर्वथा भिन्न है । इसीलिए उनका कला मे विस्तार नही परन्तु सूक्ष्म विन्यास है ।[5]

अलकार-सौष्ठव एव छन्द-योजना

अलकारा की जटिल प्रणाली भारतीय कविता के कलात्मक रूप-विधान का

---

१ दीपशिखा, पृ० ६० ।
२ नीरजा, पृ० २६ ।
३ दीपशिखा, पृ० ६७ ।
४ नोहार, पृ० ५३ ।
५ डा० नगेन्द्र आस्था के चरण, पृ० ५८४ ।

एक महत्वपूर्ण तत्व रही है ।[१] अलकार की अभिव्यजना शक्ति और व्यापक अर्थ के कारण सस्कृत के आचार्यों ने इसे काव्य की आत्मा तक माना । अलकार की सर्वप्रथम अवधारणा भरत के नाट्यशास्त्र मे मिलती है । उन्होंने चार प्रकार के अलकार माने —उपमा, रूपक, दीपक और यमक । भरत के इस चिन्तन को भामह, दण्डी, रुद्रट तथा उद्भट ने आगे बढाया । किन्तु अलकार को व्यापक अर्थ मे स्वीकार किया । आनन्दवधन और पडितराज जगन्नाथ ने वाणी की अनन्त शैलियो के आधार पर अलकार भेदो को स्वीकार किया है लेकिन वाणी केवल अलकारवादी नही, उसका अथगत मूल्य भी होता है । वह साभिप्राय होता है । इसलिए वे अलकारो को अगीरस के चारुत्व हेतु स्वीकार करते हैं ।[२]

पाश्चात्य चिन्तन मे अलकार विवेचन शब्द शक्तियो के आधार पर हुआ जो कविमानस से जोडता है । काव्य की जैविक एकता स्वीकार करने के कारण स्वच्छदतावादी कवि अनुभूति की अखडता म विश्वास करता है और इसीलिए अलकार, छन्द, शैली की बाह्यपरकता भी कल्पना के माध्यम से कवि की आतरिक भावना से जुडी रहती है । इसीलिए स्वच्छन्दतावादी काव्य म अलकार केवल शोभावर्धक वैभव के परिचायक नही, भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं—अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है, भाषा की सृष्टि के लिए, राग की परिपूणता के लिए आवश्यक उपादान है । जिस प्रकार सगीत म सात स्वर तथा उनकी श्रुति-मूर्च्छनाएँ केवल राग की अभिव्यक्ति के लिए नही होती हैं और विशेष योग, उनके विशेष प्रकार के आरोह-अवरोह के विशेष राग का स्वरूप प्रगट होता है, उसी प्रकार कविता म भी विशेष अलकार, शब्द-शक्तियो तथा छन्दो के सामजस्य से विशेष भाव का अभिव्यक्ति करने म सहायता मिलती है ।[३] क्राचे ने अलकारो की अभिव्यक्ति को तत्वो के रूप मे स्वीकार किया ।[४] स्वच्छन्दतावादी दृष्टि मे अलकार काव्य के आवयविक सौष्ठव के परिचायक होते हैं और यह काव्य की उदात्त अभिव्यञ्जना के गुण रूप होते हैं ।[५]

स्वच्छन्दतावादी होने के कारण महादेवी वर्मा के काव्य मे अलकार सौष्ठव सायास न होकर सहज, स्वाभाविक है । भाव और कल्पना के ऐक्य के कारण उनका

१ सुमित्रानन्दन पन्त ई० चेलिशेव, पृ० १७३—स० इन्द्रनाथ मदान ।

२. डा० राजेश्वरदयाल सक्सेना भारतीय काव्य चिन्तन, पृ० ७२ ।

३ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव, पृ० १८ ।

४ Here for instance it may be asked an ornament can be joined to expression Exterenally ? In that case it is always sepereted from the expression —B Croce Aesthetic, P 69

५ M H Abrams Mirror and the Lamp, P 77

काव्य प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत का आश्रय ग्रहण करता है और अभिव्यजना पक्ष को मानस अनुभूति से जोडता है। सूक्ष्म और आतरिक भावो के लिए वे विशिष्ट उक्ति भगिमायें ग्रहण करती है और इस ग्रहण में उपमा, रूपक, अनुप्रास, समासोक्ति, प्रतीप, व्यतिरेक, वक्रोक्ति, यमक, श्लेष के साथ विशेषण विपर्यय, ध्वन्यात्मकता (आनोमोटोपाइया), मानवीकरण जैसे स्वच्छदतावादी अलकारो का उनके काव्य मे समावेश हो गया है—

(१) उपमा अलङ्कार

उपमेय और उपमान के मध्य सादृश्य के आधार पर महादेवी के रूपसाम्य, धर्मसाम्य और प्रभावसाम्य उपमालकारो का उपयोग किया।

(अ) रूपसाम्य—इसमे उपमान और उपमेय के बाह्य रूप या दृश्य मे साम्य उपस्थित किया जाता है।

जैसे— बिखर जाती जुगनुओ की भाति ही
जब सुनहरे आँसुओ के हार सी।

अथवा— मृदुल अक धर, दर्पण-सा सर
आज रही निशि दृग इदीवर

मे मानवीय व्यवहार की प्रतीति होती है।

(ब) धर्मसाम्य—साधर्म्यमूलक अप्रस्तुत योजना के माध्यम से महादेवी धर्म या गुण की अनुभूति को सवेदनीय बनाती है। इसीलिए उनकी उपमाओ से बाह्य विविधियाँ (वर्णसाम्य, गुणसाम्य, कर्मसाम्य) की पूर्ति तो होती है साथ ही कही सुरुचि, कही भव्यता, कही आर्द्र ता, कहीं उपरामता जिन्हे व्यजित करना उनका लक्ष्य रहता है—शब्दो से स्वत टपकती है[१]—

उदाहरण के लिए—रात की नीरव व्यथा
तम-सी अगम मेरी कहानी।

मे हृदय के आतरिक गुणो की व्यजना है।

(स) प्रभाव साम्य—साम्य के आधार अलकृत रचनाएँ पहले भी होती थी किन्तु रीतिकाल म आकार साम्य पर हीं जोर दिया गया। छायावादी कवियो मे साम्य मुख्यत उनकी अन्तर्भावनाओ से जुडा है इसीलिए वे प्रभावसाम्य पर अधिक बल देते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है—छायावाद बडी सहृदयता के साथ प्रभावसाम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कही तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी आभ्यन्तर प्रभावसाम्य लेकर ही अप्रस्तुतो का सन्निवेश कर दिया जाता है।[२]

---

१ विश्वम्भर मानव महादेवी की रहस्य साधना, पृ० २०६-२०७।
२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६७०।

यह सागर का चचल छौना, नाप शून्य का कोना-कोना
पडा भू का सकेत, धूलि म मोती बन आता है।[1]

(२) लय बनी मृदु वर्तिका, हर स्वर जला बन लौ सजीली
फैलती आलोक-सी, झकार मेरी स्नेह गीली।[2]

रहस्य भावनाओ से पूर्ण होने के कारण महादेवी के काव्य मे रूपक की प्रधानता है—जिसमे वे अन्य अलकारो का भी मिश्रण करती है—

वृन्त बिन नभ म खिले जो
अश्रु बरसते हँसे जो
तारका के वे सुमन
मत चयन कर अनमोली री।[3]

इस पद मे रूपक और विभावना दोनो का एक साथ प्रयोग है। महादेवी के काव्य मे सागरूपको की प्रधानता है जो काव्य मे चमत्कार उत्पन्न करते हैं—

प्रिय मेरे गीले नयन बनेग आरती
श्वासो म सपने कर गुम्फित
मूक कारणो मे मधुर भरुगी भारती।[4]

गीत मे श्लेष और अनुप्रास का सम्मोहन भी है। अनुप्रास अलकार की छटा उनके पूरे काव्य अपने भेदो सहित उपस्थित है—

(१) वृत्यानुप्रास—निराली कल-कल म अभिराम
मिलाकर मोहन मादक गान।[5]

(२) छेकानुप्रास—गधवाही गहन कुन्तक,
तूल से मृदु धूम श्यामल।[6]

(३) श्रुत्यानुप्रास—युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण, प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।[7]

(४) लाटानुप्रास—नयन श्रवणमय श्रवण, नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन।[8]

---

१ दीपशिखा पृ० १४६।
२ दीपशिखा, पृ० ५।
३ यामा, पृ० १७१।
४ साध्यगीत, पृ० १६।
५ वही, पृ० ५४।
६ नीहार, पृ० ५२।
७ यामा, पृ० १४६।
८ नीरजा, पृ० १८।

(५) अत्यानुप्रास—मिथ्या प्रिय मेरा अवगुण्ठन
शाप मेरा भोलापन
चरम सत्य, यह सुधिया दशन
अतहीन मेरी करुणाकथा ।[१]

समासोक्ति महादेवी का प्रिय अलकार है—

जन्म से मृदु कज उर म
नित्य पाकर प्यार लालन
अनिल से चल पख पर फिर
उड गया जब गध उन्मन
वन गया तब सर अपरिचित
हा गई कालिका विरानी
निठुर वह मेरी कहानी ।[२]

(२) वक्रोक्ति—उक्ति वैचित्र्य के लिए इसका उपयोग मे सूक्ष्मता, व्यग्य और सौन्दयबोध के लिए किया जाता है । भरत के नाट्यशास्त्र म इसका स्रोत मिलता है जिसे वाद मे आचाय भामह और कुतल ने अत्यधिक महत्व देकर समस्त 'उक्ति सौन्दय' को काव्य कला का केन्द्र माना । वक्रोक्तिविहीन उक्ति को वार्ता माना गया । भामह ने शब्द और अर्थ दोनो का समावेश वक्रोक्ति म किया । उनके अनुसार केवल नितात आदि शब्दो के प्रयोग स वाणी म सौंदर्य नही आता । शब्द और अथ म वक्रता होनी चाहिए जो वाणी का अलकार है ।[3]

कुन्तक इस अलकरण का सीधे कवि कर्म से नि सृत मानकर उसे उच्च सौन्दय-शास्त्रीय पीठिका पर प्रस्तुत कर दते हैं । उनकी इस उद्भावना की मुख्य प्रतिपत्ति यह है कि काव्य म अलकार वाहर से आरोपित नही होते बल्कि काव्य स्वय अलकृत शब्दाथ ही है । यह अलकृत शब्दार्थ कवि कर्म का परिणाम है । इस प्रकार रसध्वनि सिद्धात की मुख्य त्रुटि का परिमाजन कर वे अपने सिद्धात का उच्चकोटि की नदनिक पीठिका प्रदान कर देते हैं ।[४] कुन्तक ने वक्रोक्ति को शास्त्रीय आधार पर अनक कोटियो म विभाजित किया—प्रकरण वक्रता, सवृत्ति वक्रता, काल वक्रता, लिगवैचित्र्य वक्रता, प्रत्यय वक्रता आदि । महादेवी का काव्य लक्षणा प्रधान है । इसीलिए काव्य म वक्रोक्ति की प्रधानता है । उनके काव्य म शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और कान्ति का सृजन करती है । जयशकरप्रसाद ने छायावाद की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ

---

१ वही, पृ० ७२ ।
२ यामा, पृ० १६३ ।
३ विजेन्द्रनारायणसिंह वक्रोक्ति सिद्धात और छायावाद, पृ० २० ।
४ वही, पृ० ३०-३१ ।

की मीमांसा में 'छाया को लावण्यवाचक, लक्षण शब्द बताया है।[1] महादेवी भी वक्रोक्ति की महत्ता स्वीकार करती है—भाषा सम्बन्धी मुक्ति किसी साहित्यकार के वक्तव्य को सरल नहीं बनाती क्योंकि अपने सृजन में विशेषता लाने के लिए उसे शब्द समुद्र में बार-बार डूबकर ऐसे महार्घ शब्द चुनने पड़ते हैं, जिससे उसके सृजन को अन्य सृजनों से भिन्न व्यक्तित्व की प्राप्ति हो सके और उसका कथ्य अपनी सम्पूर्ण मर्मस्पर्शिता के साथ सम्प्रेषणीय बन सके।[2] उनके काव्य में कुंतक द्वारा निर्धारित प्राय सभी शास्त्रीय कोटियों की वक्रोक्ति उपलब्ध होती है—

(१) प्रकरण वक्रता—तुमको पीड़ा में ढूंढा
तुमम ढूंढूगी पीडा।[3]

(२) सवृत्ति वक्रता—वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।[4]

(३) काल वक्रता—सजल बादल का हृदय कण
चू पड़ा जब पिघल भू पर
पी गया उसको परिचित
तृषित दरका पंक का उर।[5]

(४) लिंगवैचित्र्य वक्रता—सिकता पुलिनों-सी सुनो दिश।[6]

(५) प्रत्यय वक्रता—प्रत्यय वक्रता में प्रयुक्त शब्द में पुन प्रत्यय लगाकर अनिर्वचनीय सौन्दर्य का स्फुरण किया जाता है। महादेवी अक्सर 'मय प्रत्यय लगाकर शब्दों में लयात्मकता उत्पन्न करने का प्रयास करती है—जैसे—निद्रियोमय, रंगीमय, मूलामय आदि। इसके अतिरिक्त महादेवी के काव्य मे मालोपमा और विशेषण विपर्यय,[7] यमक, उल्लेख तथा प्रतीप और व्यतिरेक अलकार[8] भी प्राप्त होते हैं। महादेवी का अलकार विधान सहज स्वाभाविक है। उनके गीतों का सौन्दर्य अलकार ही बढ़ाते हैं। उनके अलकारों में निहित सौन्दर्य की तुलना केवल प्रसाद काव्य से ही हो सकती है।

---

१ जयशंकरप्रसाद काव्य कला और अन्य निबन्ध, पृ० १२४।
२ महादेवी वर्मा सन्धिनी, पृ० २१।
३ नीहार, पृ० ४६।
४ वही, पृ० ११।
५ नीरजा, पृ० ७४।
६ सांध्यगीत, पृ० ७७।
७ नीहार, पृ० ३८-४८।
८ नीरजा, पृ० ३०-३८।
९ नीहार, पृ० २७-२८।

छन्द विधान

वर्ड्सवर्थ ने काव्य निर्माण के सम्बन्ध में कहा है कि कवि की दैवी शक्ति और सृष्टि छन्द द्वारा पूर्णता की अपेक्षा रखती है अर्थात् कवि की भावनाएं जो रहस्यमय होती है, छन्दों में बंधकर स्पष्ट और पूर्ण हो जाती है। अरस्तू ने संगीत और लय को मानव की मौलिक प्रवृत्ति माना और काव्य के उद्भव का एक कारण भी स्वीकार किया किन्तु सिद्धान्त रूप में उसने छन्द को कविता के लिए आवश्यक नहीं कहा क्योंकि अरस्तू के अनुसार छन्द कविता का वैशिष्ट्य नहीं उसका वैशिष्ट्य अनुकरण है।

वास्तव में कला अपने में पूर्ण और जीवन्त रूप में अनुभूति का लय व्यापार है और लय व्यापार को सतुलित करने के लिए छन्द विधान आवश्यक है। कालरिज ने काव्य के लिए छन्दों के प्रकृत रूप को स्वीकार किया। उसके मतानुसार छन्द हर हालत में प्रवृत भाषा के भीतर संवेग की सहज उत्तेजना से प्रसूत होना चाहिये।[1]

कालरिज ने छन्दों की शास्त्रीयता का निषेध किया। साहित्य को आंगिक ऐक्य (Organic whole) मानकर कालरिज ने यह मत व्यक्त किया कि जिस प्रकार बीज से अकुर निकलकर अपने प्राकृतिक विकास में वृक्ष का स्वरूप प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार कविता या साहित्य की कृति का रूप उसकी मूलवस्तु का स्वाभाविक (या अनिवार्य) विकास होना चाहिए। इसलिए यदि किसी से कोई कविता के लिये छन्द को स्वीकार करता है तो उसे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि वह छन्द ऊपर से जोड़ा हुआ नहीं होगा, वरन् उसे कविता का प्राकृतिक अंश होना चाहिये।[2] सहज रूप से उत्पन्न होने वाले छन्दों के माध्यम से काव्य में आनन्द की प्राप्ति होती है।

छायावादी कवियों ने छन्द और काव्य के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध माना-कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन। कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होता है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते, जिनके बिना वह अपनी ही बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।[3] महादेवी के अनुसार छन्द तो भाषा के सौन्दर्य की सीमाएँ है, अतः भाषा विशेष से भिन्न करके उनका मूल्यांकन असम्भव हो जाता है। वे प्रायः दूसरी भाषा की सुडौलता को सब

1 Coleridge Biogrophia Literaria, P 206

2 Coleridge Biogrophia Literaria, P 206

3 सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ३३, पल्लव।

आर स स्पर्श नही कर पात, इसी से या तो बधनो के अनुरूप काट-छांटकर बेडोल कर देते हैं या अपनी निश्चित सीमा रेखाओ को कही दूर तक फैलाकर और कहीं सकीर्ण कर उसके बाद सम्बधी लक्ष्य से ही बहुत दूर पहुँच जाते हैं।[1] यदि कविता के लिए विशेष शब्द चयन आवश्यक है, व्यजित अर्थबोध की भाव परिणति अनिवार्य है तो छन्द एक विशेष क्रम म छन्दादित ही रहेंगे।[2]

महादेवी ने गीतो मे सगीतमयता को सुरक्षित रखने के लिए छन्द विधान को आवश्यक स्वीकार किया यद्यपि उन्होंने मुक्त छद को नही अपनाया किन्तु उनका छद विधान परम्परामुक्त है। सगीत की प्रधानता के कारण ही उनके काव्य मे वर्णिन छद की अपेक्षा मात्रिक छद की प्रधानता है। इसका कारण है—वर्णिक छद बेडियो के बराबर है जो हिन्दी की सुकुमार कविता के कोमल चरणो का जकडकर उसकी स्वाभाविक गति मे बाधा डालते हैं, उसके नूपुरा की कोमल ध्वनि का गला घाट देत हैं।[3] मात्रिक छद म ही काव्य का सगीत सुरक्षित रह सकता है। हिन्दी का सगीत केवल मात्रिक छदो म ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की पूर्णता प्राप्त कर सकता है। उन्ही के द्वारा उसमे सौदर्य की रक्षा की जा सकती है।[4]

महादेवी के काव्य मे मुख्यत मात्रिक छदो की प्रधानता है। मात्रिक छदो का अध्ययन सममात्रिक, अर्द्धसममात्रिक और विषम मात्रिक छदो के रूप मे किया जाता है—

(अ) सममात्रिक छद—महादेवी के काव्य मे १६-१६ और १४-१४ मात्राओ वाले सममात्रिक छदो की प्रधानता है।

१—निशा को धो देता राकेश	१६ मात्राये
२—चादनी म जब अलकें खोल	१६ मात्राये
३—कली से कहता था मधुमास	१५ मात्राये
४—बता दो मधुमदिरा का मोल	१६ मात्राये
	(नीहार, पृ० ८)

(ब) अर्द्धसममात्रिक छद—

मेरी आँखो में ढलकर	१६ मात्रायें
छवि उसकी मोती बन गई	१६ मात्रायें
उसके घन प्यालो मे है	१४ मात्रायें

---

१ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, पृ० ६४।
२ महादेवी वर्मा संधिनी, पृ० २०।
३ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव, पृ० २३।
४ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव पृ० २६।

विद्युत की मेरी परछाई — १६ मात्रायें

(नीरजा, पृ० ५४)

(स) विषम मात्रिक छंद—महादेवी के काव्य मे इस छद का प्रयोग कम है किन्तु कुछ स्थलो पर उसका प्रयोग मिलता है—

प्रथम प्रणय की सुषमा सी — १४ मात्राएँ
यह कलियो के चितवन म कौन ? — १७ मात्राएँ
कहता है मैंने सीमा उनकी — १८ मात्राए
आँखो से मुस्मित मौन — १३ मात्राए

मात्रिक छदो के अन्तर्गत कुछ अय छद द्रष्टव्य हैं।

रूपमाला—यह २४ मात्राओ के चरणो से निर्मित सममात्रिक छद है। जिसम १४ मात्राओ का यतिक्रम होता है। पन्त जी ने रूपमाला के सम्बन्ध मे लिखा है रोला जहा बरसाती नाला की तरह अपने पथ की रुकावटो को लाँघता हुआ कल कल नाद करता हुआ आगे बढता है वहा रूपमाला दिन भर के काम-धधे के बाद अपनी ही थकावट के बोझ से लदे हुए किसान की तरह चि ता मे डूबा हुआ नीची दृष्टि किये, ढीले पाँवो से जैसे घर की ओर लौटता है। करुण और शृगार रस के लिये यह छद उपयुक्त माना गया है—

रात के पथहीन तम मे
मधुर भरत जिसके श्वास
फैन भरते लघु कणो मे
भी असीम सुवास
कटको म सेज जिसकी
आँसुओ का ताज
सुभग ! हँस उठ, उस प्रफुल्ल
गुलाब ही सा आज।

(नीरजा, पृ० १०३)

नियम के अनुकूल होते हुए भी इन पक्तियो मे १४ मात्राओ के बाद यति का क्रम नही है। करुण रस की व्यजना के लिए महादेवी ने 'सखी छद' का प्रयोग किया। १४ मात्राओ के इस छद मे चरण के अ त मे तीन गुरु या एक लघु दो गुरु का विधान है—

कन-कन मे जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली
मैं निर्धन तब आई लें
सपनो से भरकर डाली।

चौथे चरण को छोडकर सभी चरण नियमानुकूल हैं। १६ मात्राओ के शृंगार छद का महादेवी वर्मा के काव्य मे सर्वाधिक प्रयोग मिलता है—

कितनी करुणा कितन सदेश — १६ मात्राएँ
पथ मे बिछ जाते बन पराग — ,,
गाता प्राणा का तार-तार — ,,
अनुराग-भरा उन्माद राग — ,,
(नीहार पृ० ८६)

इसके अतिरिक्त चौपाई छद,[1] गीतिका[2], विष्णुपद[3], सरसी[4], मनोरम[5], दिग्पाल[6], पीयूषवर्षी[7], लावनी[8] आदि परम्परागत छदो का प्रयोग मिलता है। महादेवी ने वर्णिक छदो का उपयोग बहुत कम किया केवल दुर्मिल सवैया छद का प्रयोग ही मिलता है—

पथ म नित स्वर्ण पराग बिछा
तुझे देख जो फूली समाती नहीं
दलो से दलो मे घुला मकरन्द
पिलाती कभी अनखाती नही
किरणो म गूथी मुक्तावलियाँ
पहनाती रही सकुचाती रही
अब भूल गुलाब मे पकज की
अलि कैसे तुझे सुधि आती नही।[9]

सगीत और करुण की प्रधानता से महादेवी के काव्य मे छद विधान अनिवार्य रूप से समाहित है। तथापि वे स्थान-स्थान पर प्रसाद और निराला की तरह अतुकान्त छद का भी प्रयोग करती है। नीहार और रश्मि मे इस तरह के प्रयोग देखे जा सकते हैं। नूतनता की दृष्टि से उन्होंने मिश्रित छदो के अतिरिक्त स्वनिर्मित छदो का भी प्रयोग किया।[10]

---

१ नीहार, पृ० ३०।
२ नीरजा, पृ० ७४।
३ सधिनी, पृ० ७४।
४ सधिनी, पृ० ६६।
५ नीहार, पृ० १६।
६ यामा, पृ० ६१।
७ रश्मि, पृ० २५।
८ रश्मि, पृ० ८७, नीरजा, पृ० ६६।
९ यामा, पृ० ९८।
१० नीहार, पृ० २१।

महादेवी के गीत और उनका सगीत विधान

काव्य की ऊँची-ऊँची हिमालय श्रेणियो के बीच गीत मुक्तक एक सजल कोमल मेघखण्ड है जो न तो उनसे दबकर टूटता है और न बँधकर रुकता है, प्रत्युत हरकिरण से रगस्नात होकर उन्नत चोटियो का शृङ्गार कर आता है और हर भोंके पर उड-उडकर उस विशालता के कोने-कोने में स्पन्दन पहुँचाता है।[1] इसीलिए महादेवी ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए गतिविधा को चुना। महादेवी का गीतिकाव्य अन्तव्यथा और आत्मचेतना की अभिव्यक्ति है। उसम एक आवेश है जो रागात्मक है, वह ऐकान्तिक वैयक्तिक अनुभूति की व्यजना है, जो मार्मिक है, यह व्यक्ति के आत्म-दर्शन की सगीत मुखर ध्वनि है।[2] वेदना और व्यथा के बीच आत्म-साक्षात्कार करते हुए महादेवी के गीतो में एक ऐसा अन्त सगीत है जो उनके काव्य को समग्रता देता है जाक मारिता का कथन है कि सगीत चेतना कवि के कलात्मक सहज ज्ञान का एक अश है।[3]

आई० ए० रिचड् स ने 'द ऐम्पास ऑव म्यूजिक थी थार' निवध मे कविता के अर्थ सगीत पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया और बताया कि काव्य की सगीत उसकी आतरिक लय मे होता है।[4]

वस्तुत गेयता शब्द मे ही रागतत्व निहित है। पन्त ने तो छायावादी काव्य की मूल प्रेरणा ही 'रागतत्व' को माना।[5] छायावादी कवियो ने शास्त्रीय स्वर सगीत की अपेक्षा शाब्दिक सगीत को महत्व किया क्योकि यदि एक विशेष प्रकार के शब्दो का नियोजन किया जाय तो शब्द भी सगीतमय हो उठते हैं। गीत के छाट से सृजन क्षण मे महादेवी आत्म-विस्तार करती है। नीहार से दीपशिखा तक व इसी साधना मे रत हैं और इसीलिए सगीत के पखो पर चलने वाले हृदयवाद की छाया मे गीत विविध रूप हो उठे। स्वानुभूत सुख दुखा के भाव गीत लौकिक विरह-मिलन, आशा-निराशा पर आश्रित जीवन गीत, सौंदर्य को सजीवता देने वाले चित्रगीत सबकी उपस्थिति सहज हो गई।[6]

बचपन मे ही माँ से सुने हुए भजन, मीरा के गातो का प्रभाव महादेवी पर

---

१ गीतपर्व भूमिका—महादेवी वर्मा, पृ० २५।
२ डा० धनजय वर्मा काव्य का स्वरूप, पृ० ६६।
३ Jacques Maritain Creative intuition in Art and Poetry, P 83-84
४ I A Richards Principles of Literary Criticism, P 168, 1955
५ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव, पृ० ४०।
६ महादेवी साहित्य, पृ० २७७।

पड़ा इसीलिए गयता उनके गीतों का प्रमुख पक्ष है। महादेवी गीत का परिभाषित करते हुए लिखती हैं—सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिन चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना गीत है।[१] इस परिभाषा के आधार पर गीत के निम्न तत्व निर्धारित किये जा सकते हैं—गेयता, आत्माभिव्यक्ति, अन्विति, संगीतता, सहज अन्त प्रेरणा। काव्य और संगीत परमुखापेक्षी नहीं है क्योंकि एक की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वर है तो दूसरे का शब्द। जैसे रने वेले ने कहा है—उच्चकोटि का काव्य संगीत की ओर अनिवार्यतः नहीं झुकता, इसी प्रकार उच्चकोटि के संगीत का भी शब्दों की आवश्यकता नहीं रहती।[२]

महादेवी के काव्य में शास्त्रीय पद्धतियों पर आधारित संगीत न होकर स्वच्छन्द दृष्टि से निर्धारित सार्थक शब्दों में युक्त गयता प्राप्त होती है क्योंकि स्वर के साथ जब सार्थक शब्दावली की संगति हो जाती है तब संगीत और काव्य दोनों व्यापक तथा गहराई की दृष्टि से जीवन की अलक्ष्य सीमाएँ छू लेते हैं।[3] महादेवी के संगीत पक्ष पर शब्द संगीत और अर्थसंगीत की दृष्टि से विचार किया जा सकता है। शब्द संगीत में मूर्तता होने के कारण वह सर्वग्राह्य होता है जबकि अर्थसंगीत अमूर्त और मार्मिक। महादेवी के काव्य में शब्द संगीत और अर्थ संगीत का समन्वय है। वे छायावाद के वसन्त वन की सबसे मुखर पिकी है।[४] इसलिए एक ओर जहाँ शब्द संगीत के लिए अनुप्रास और वर्णों का कलात्मक विन्यास करती हैं वहीं दूसरी ओर अर्थसंगीत के लिए वे लोक गीतों का लय ग्रहण करती है। दीपशिखा संगीत की दृष्टि से उनकी सबसे श्रेष्ठ रचना है।

महादेवी ने स्वर और व्यंजन की मैत्री द्वारा शब्द संगीत की योजना की है। अनुप्रास का प्रयोग उन्होंने स्थूल एवं सूक्ष्म दो रूपों में किया है। स्थूल रूप से अनुप्रास केवल अन्त्यानुप्रास की आवश्यकताओं को पूरा करने का माध्यम है और सूक्ष्म रूप में वह शब्दों में पग-पग पर जैसे तबले की थाप के समान थिरकता चलता है।[५] महादेवी के काव्य में स्थूल अनुप्रास तो स्थल-स्थल पर है परन्तु उनके काव्य की कुशलता अनुप्रास के सूक्ष्म नियोजन में ही द्रष्टव्य है।

हास [।] का मधुदूत भेजो।

शब्द संगीत के लिए महादेवी शब्दों की मसृणता और कोमलता का ध्यान रखती हैं। महादेवी के गीत अन्य प्रमुख छायावादी कवियों की तुलना में बड़े हैं किन्तु,

१ महादेवी साहित्य, पृ० २७७।

२ रने वेले और आस्टिन वारेन साहित्य के सिद्धान्त, पृ० १२१।

३ महादेवी वर्मा संधिनी पृ० २४।

४ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव, पृ० ३५।

५ डा० लक्ष्मण गौतम महादेवी का काव्य और उनका व्यक्तित्व, पृ० ६१।

चे प्रचलित गीतो की अपेक्षा पर्याप्त लघु है। उनके गीतो मे छन्द प्राय आठ से सोलह मात्राओ तक है। इस दृष्टि से वे सक्षिप्त है। रागो की दृष्टि से भैरवी, आसावरी आदि गम्भीर रागो के उपयुक्त उनके गीत है क्योकि उनका मूलस्वर करुणा, वेदना है। वेदना को सगीत स्वरो मे नहलाकर वे उसे गेय बना देती है। वैयक्तिकता उनके गीतो का मुख्य विशेषता है। अन्त प्रेरणा के आधार पर निर्मित उनके गीतो मे सामान्यता है और इसलिए वे दूसरो के सुख-दुख, उल्लास-विषाद से सामञ्जस्य स्थापित कर लेते हैं। वर्डसवर्थ ने काव्य को भावनाओ का सहज उच्छवास कहा है। महादेवी के गीत भी सहज अन्त प्रेरणा से उद्भूत लोकगीतो की भांति ताजगी, स्फूर्ति, अकृत्रिमता और सहजता लिये हुए हैं। सचेतना उनके कलागीतो का निर्माण करती है, कलागीतो मे लोकगीत की भांति निरावरणता और सहजता नही मिलती। इस दृष्टि से महादेवी के गीतो का विभाजन कलागीत और लोकगीत के रूप मे किया जा सकता है—

(१) कलागीत—

महादेवी के प्राय समस्त गीत 'कलागीत' के अन्तर्गत आते हैं। शिल्पगत सजगता के कारण उनके गीतो मे कल्पना, वायवीयता और कलात्मकता के साथ, राग-रागिनी को शास्त्रीय पद्धति भी मिलती है। नाद पर आधृत होने के कारण सगीत मे सूक्ष्म सौन्दर्य लहरियो की जो स्वाभाविक व्याप्ति रहती है वह उनके गीतो मे अत्यन्त निखरे हुए रूपो मे वर्तमान है। उन्होने सगीत की स्वर चेतना और रागात्मक कल्पना के विरल सामञ्जस्य को मुखरित करने का सदैव प्रयास किया है।[1]

(२) लोकगीत—

महादेवी के गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतो की धरती पर पले हैं। महादेवी का विचार है कि लोकगीतो की परम्परा मे ही साहित्य की मूल प्रवृत्तिया सुरक्षित है।[2] इसलिए लोकगीतो की ताजगी, अकृत्रिमता और मिठास महादेवी के कई गीतो मे मिलती है—

(१) हठीले होले-होले नाल
मुखर पिक होले-होले बोल।[3]

(२) कहो से आयी हूँ कुछ भूल
किसी अश्रु मय घन हूँ कन।
टूटी स्वर लहरी का कम्पन

---

१ सुरेशचन्द्र गुप्त महादेवी वर्मा और उनका आधुनिक कवि, पृ० ६२।
२ महादेवी वर्मा गीतपर्व, पृ० ३६।
३ नीरजा, पृ० ३७।

या ठुकराया गिरा धूलि म
हूँ मैं नभ का फूल ।[1]

(३) कहाँ से आये बादल कारे गजरारे मतवाले ।[2]

(४) पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नही ।[3]

महादेवी के गीतो मे अन्तरा-विधान का एक ही लक्ष्य मिलता है । स्वर में उत्कृष्टता और विरोध लाकर प्रभावोत्पादन उत्पन्न करना । जैसे—'घन बनू वर दो मुझे प्रिय ।' गीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । सचेष्ट कलात्मक सज्जा, सगीतमय वर्णमत्री और लोकगीतो का स्वर साधन इनके गीत के अनिवाय तत्व हैं ।[४] महादेवी की कविता मे भाव और शिल्प की अनुकूलता रहती है । फलस्वरूप इनकी कविताओ मे सर्वत्र एक गीतिवेग (Melic impulse) मिलता है जो इनके काव्यगत नाद सौन्दर्य की प्रेषणीयता म एक बोध भर देता है । अत इनके गीतो मे ध्वन्यात्मक शब्दो (सानिक टम्स) के अनेक पुष्ठ प्रयोग मिलते हैं ।[५] इसीलिए महादेवी के काव्य मे तीनों प्रकार की ध्वन्यात्मकता मिलती है जो क्रमश कोमल पदो, विशेषण के कुशल प्रयोग और सगीत की प्रधानता के कारण है ।

भाषा की गुजकता और चित्र बिम्बो की प्रधानता ने उनके 'चित्रराग' की उत्पत्ति की है । चित्रभाव के साथ भावो के घनिष्ठ सामजस्य स ही चित्रराग की उत्पत्ति होती है । भाव और स्वर की मधुर सधि, भाषा की निर्झरिणी की भाँति गति और रव ने उसके गीतो का सगीत की दृष्टि से श्रेष्ठ बना दिया है । विचार और सगीत दानो उनके काव्य मे बराबर हैं । शापेनहावर ने एक स्थल पर कहा है—'सगीत विचारो का अभिव्यक्त करन का कार्य नही करता किन्तु वह विचारो के बराबर स्थान रखता है' ।[६] डा० देवराज ने छायावादी कविया मे सगीत की दृष्टि से महादेवी को ही एक मात्र श्रेष्ठ माना—'अन्य छायावादी कवियो की रचना मे मधुर ध्वनि एव श्रुति सुखद पदयोजना का सगीत है, इसके विपरीत महादेवी जी म ध्वनियो क लयपूर्ण सगठन का मार्मिक सगीत है । महादेवी जी के सुगठित गीतो की तुलना म पन्त का शब्द-सगीत अपेक्षाकृत मर्महीन जान पडता है । यों महादेवी जी ने

१ यामा, पृ० ११० ।

२ दीपशिखा, पृ० ८३ ।

३ नीरजा, पृ० ३६ ।

४ प्रतिमा कृष्णबल छायावाद काव्य का शिल्प पक्ष, पृ० ६४ ।

५ डा० कुमार विमल छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ० ४८ ।

६ Schopenhauer affirms that music does not express ideas but parulled with ideas, will itself

—B Croce Aesthetic, P 306

बहुत अधिक छन्दों का उपयोग नहीं किया है किन्तु थोड़े ही छन्द रूपों की परिधि में उन्होंने जितनी लयात्मक विविधता का विधान किया है वह अद्भुत है। परिचित से परिचित छन्द को वे इस तरह विभक्त और ग्रथित करती हैं कि पाठक अनिर्वाच्य नवीनता की अनुभूति से पुलकित हो जाता है।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है न हृदय की ऐसी भावभंगी।[2]

भाषिक चेतना और शब्द संस्कार तथा लक्षणा व्यंजना शिल्प का औदात्य

भाषा मूलतः एक अखण्ड चेतना है।[3] अतः उसके विविध अंग अथवा अवयव उसी में मिलकर प्राणवान होते हैं। काव्य भाषा अरूप भावों व विचारों को शब्दों के माध्यम से कल्पना चक्षुओं के सामने मूर्तिमान करती है।[4] वस्तुतः भाषा प्रेषणीयता का माध्यम मात्र न होकर मानवीय अन्तर्जगत की तादात्मकता या ध्वन्यात्मकता अनुभूतियों को व्यक्त करने का माध्यम है। महादेवी वर्मा ने साहित्यिक और व्यावहारिक भाषा में भेद करते हुए लिखा—'किसी हाट के क्रय-विक्रय के लिए आवश्यक शब्दों की संख्या अधिक नहीं होती, परन्तु जब हम अपने भावजगत, विचारमंथन, सौन्दर्यबोध को आकार देने बैठते हैं तब हमें ऐसी शब्दावली की आवश्यकता पड़ती है जो हर हल्के गहरे रंग को व्यक्त कर सके।[5] स्पष्ट है महादेवी शब्द की आंतरिक संगति को ध्यान में रखने की बात करती है क्योंकि 'भाषा केवल संकेत-लिपि नहीं है प्रत्युत उसके हर शब्द के पीछे सांकेतिक वस्तु स्पन्दित रहती है और प्रत्येक शब्द एक सजीव इतिहास होता है।[6] पंत ने काव्य की तुलना संगीत से की।[7]

पुनरुत्थानवादी युग (द्विवेदी युग) से ही काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग काव्य भाषा के लिए किया गया किन्तु छायावाद ने नये छन्द-बन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकती थी अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप तौलकर और काट छाँटकर तथा कुछ नये गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को

---

१ डा० देवराज साहित्य चिन्ता, पृ० २०३।
२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२०।
३ कलाकार की सिसृक्षा और सर्जन सामा आलोचना, पृ० २७।
४ डा० रामेश्वर खंडेलवाल जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला, पृ० ३६०।
५ महादेवी वर्मा क्षणदा, पृ० १०२।
६ वही, पृ० १०६।
७ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव, पृ० २०।

कोमल कलेवर दिया ।[1] शब्द अनुभूति सौन्दर्य की अगध्वनि होत हैं, विचारा की दीप्त चिगारी के सदृश्य होते है ।[2] स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी आपस मे घनिष्ठ होते हैं । *जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध है, उसी प्रकार* शब्द भी, इनका आपस का सम्बन्ध अनुराग, विराग, प्रीति, मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता कर लेना क्या आसान है ?[3], शब्दो के इसी पारस्परिक अन्तसम्बन्ध पर अनेकार्थ सकेत निर्भर होत हैं । काव्य की भाषा प्रतीकात्मक होती है । अत उसमे ध्वन्यात्मकता शब्द और अर्थ के काव्यात्मक स्वरूप से उत्पन्न होती है और यह ध्वन्यात्मकता लक्षणा, व्यजना शब्दशक्तियो पर आश्रित होती है जिसका सम्बन्ध कल्पना से होता है ।

शब्द-सयोजन की दृष्टि से महादेवी के काव्य मे तत्सत्, तद्भव, देशज, अनुकरणात्मक शब्दो के साथ ही अरबी, फारसी के विविध शब्द मिलत हैं । सस्कृत साहित्य की मर्मज्ञ होने के कारण महादेवी के काव्य मे तत्सम् शब्दो की बहुलता है । सूक्ष्म और सगीतमय शब्दभावो की अभिव्यक्ति के लिए महादवी तत्सम् शब्द ग्रहण करती है पर इनके प्रयोग से उनकी भाषा दुरूह नही है । तत्सम् शब्दो के उपयोग से उनके काव्य म सामाजिक पदा की प्रचुरता है—उदाहरण के लिए—

(१) मैं चिर चचल
मुझसे है तट रेखा अविचल
तट पर रूपो का कोलाहल
रस-रग-सुमन-तृण-कण पल्लव ।[4]

(२) घिरते नभ निधि आवत्त मेघ ।[5]

तत्सम् के साथ ही महादेवी के काव्य मे तद्भव शब्दो की भी प्रधानता है—बनास, बयार, रैन, हठोला, अजान, अधियारी, गुजार, पतझार आदि ऐसे ही शब्द है । लाकगीतो के प्रभाव से ग्रामीण शब्दो का भी समावश है—

(१) गुलाला से रविपथ लीप ।[6]

(२) इन्ही पलको ने कटकहीन
किया था वह मारग बेपीर ।[7]

---

१ महादेवी वर्मा साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबध, पृ० ६८-६९।
२ Shedly—Defence of Poetry
३ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव पृ० २९ ।
४ दीपशिखा, पृ० ७४ ।
५ दीपशिखा, पृ० १३२ ।
६ रश्मि, पृ० ५ ।
७ यामा, पृ० ७४ ।

(३) मुखर पिक होले वाल ।[१]
(४) लोट जाओ मलय मारुत के झकारे ।[२]

इसके अतिरिक्त नूतनता के लिए महादेवी जी अंग्रेजी, अरवी, फारसी के शब्दो का भी प्रयोग करती हैं। अरमान, दाग, प्याला, दीवानी (फ़ारसी), बुलबुल, साकी, तूफान, खार (अरवी) तो कही 'हिम अधर' जैसे अंग्रेजी शब्द के अनुवाद भी अनायास उनके काव्य म सम्मिलित हो गये हैं। शब्दो का रूप गठन प्राय नियमो पर निर्धारित होता है। चूंकि महादेवी एक सचेत कलाकार हैं इसलिए उनके काव्य मे व्याकरणसम्मत दोष अत्यन्त न्यून हैं किन्तु स्वच्छन्दता के कारण कही-कही लिंगदोष, वचनदोष और विभक्ति दोष मिल जाते हैं—

(१) लिंग दोष—

निशि रचता जाता नूपुर-स्वप्न
हो न जिसका खोज सीमा मे मिला।
(दीपशिखा, पृ० ७३)

(२) वचन दोष—

कितनी करुणाओ का मधुर।
(यामा, पृ० १२१)

(३) विभक्ति दोष—

उनकी इस निष्ठुरता को जिसमे मैं भूल न पाऊँ।

इसके साथ ही कही-कही नूतन क्रिया रूप मिलते है—

आज न सज अलका से हीरे
चौंका के जग मास न सीरे।
(यामा, पृ० १५८)

शब्द शक्ति की दृष्टि से चूंकि महादेवी का काव्य रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक और अन्तर्मुखी है अत उसमे लक्षणा और व्यंजना की प्रधानता है। यद्यपि उसमे अभिधा का प्रयोग भी है पर अल्पमात्रा म। उदाहरण के लिए अभिधा का प्रयोग निम्न पदो मे देखा जा सकता है—

(१) मुखर पिक होले होल बोल
हठीले होले होले बाल।
(नीहार, पृ० २५)

(२) कह दे मा क्या देखू
देखू खिलती कलिया या
प्यासे अधरो को दखू।
(नीहार, पृ० ३०)

---

१ नीहार, पृ० २८।
२ दीपशिखा, पृ० १३८।

व्यजना लक्षणामूला और अभिधामूला दोनों हाती है। लक्षणामूला व्यजना के भेद उपादान लक्षणा तथा लक्षणा लक्षणा पर आश्रित है। उपादान लक्षणामूला ध्वनि के प्रभेद का नाम है– अर्थान्तर सक्रमित-वाच्य ध्वनि और लक्षणा-लक्षणा ध्वनि का नाम है अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि। लक्षणा क दो मूलभेद हैं—रूढि और प्रयोजन।

महादेवी के काव्य मे 'अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि' का प्रयोग इन पक्तियो मे देखा जा सकता है—

कलियो की घन जाली मे, छिपती देखू लतिकाएँ
या दुर्दिन के हाथा, मे, लज्जा की करुणा देखू।

(यामा, पृ० १०२)

यहाँ तुलनात्मक चित्रों के द्वारा 'लज्जा' म अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है, साथ ही 'हाथो' तथा करुणा' मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि। 'व्यजनाशक्ति' का प्रयोग सूक्ष्मता, तीव्रता और गहनता के लिए किया जाता है। इसके दा भेद किय जाते हैं—शाब्दी व्यजना और आर्थी व्यजना।

शाब्दी व्यजना क भी दो भेद किये जाते हैं—

(१) अभिधामूला शाब्दा व्यजना, (२) लक्षणामूला शाब्दी व्यजना।

(१) अभिधामूला शाब्दी व्यजना

इसम अभिधा के आधार पर व्यग्यार्थ ग्रहण किया जाता है। इसम अनकार्थी शब्दा से एक अथ का बाध कराया जाता ह—

एक तार अगणित कम्पन का
एक सूत्र सबके बधन का।

(यामा, पृ० ७६)

यहाँ 'तार' का अथ 'तारे' और सूत्र न होकर वाद्य यत्र के तार से है।

(२) लक्षणामूला शाब्दी व्यजना

लक्ष्यार्थ का प्रयाजन जिस शक्ति क ज्ञान से होता है उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यजना कहते हैं—

मोम सा तन धुल चुका, दीप सा मन जल चुका है 'मोम' के सदृश घुलने और जलने म साधना को सकल्पता, दृढ़ता निहित है।

(३) आर्थी व्यजना

जिसने जिसको ज्वाला सौंपी
उसन उसम रूप भरा
आलाक लुटाता वह घुल घुल
दता धर यह सौरभ बिखरा।

इन पक्तिया मे 'दीप' और 'फूल' के माध्यम से जीवन की सघपशालता की व्यजना है।

निष्कर्षत महादेवी के काव्य म लक्षणा और व्यजना की प्रधानता उनके काव्य मे चित्रोपमता, साकेतिकता, प्रतीकात्मकता प्रदान की है। महादेवी की विशेषता है कि वे रचनाओ को एक ही बार लिखती है उसे सशोधन, खराद या पालिश की कसौटी पर नहीं कसती। यही कारण है कि उसमे कृत्रिमता का आभास नही मिलता और वे हृदय से उद्भूत भावा और अनुभूतियो की एकरूपता प्रदर्शित करती है। इस अकृत्रिमता के कारण उनकी भाषा अत्यन्त मधुर, अत्यन्त कामल है। डा० नगेन्द्र न उनकी कला को तितली के पखो व फूल की पखुडियों से चुराई हुई कहा—'पन्त की कला मे जडाव और कढाव है अत उनके चित्रो की रेखाये पैनी होती हैं। महादेवी की कला मे रगघुली तरलता है जैसे कि पखुडियो मे पडी ओस मे होती है।

लाजाइनस का उदात्त तत्व और महादेवी वर्मा का काव्य

प्लेटो और प्लाटिनस के बीच जिस यूनानी समीक्षक ने पाश्चात्य समीक्षा का प्रभावित किया वह है लाजाइनस। लाजाइनस शास्त्रीय युग का स्वच्छन्दतावादी विचारक था। उसने अपने ग्रन्थ 'आन दी सब्लाइम' मे जिस उदात्त सिद्धान्त की स्थापना की, उसमे वाह्याकार की अपेक्षा आतरिक तत्वो का समावेश आवश्यक माना। उदात्त सिद्धान्त के माध्यम से लाजाइनस ने उत्कृष्ट काव्य के प्रभाव को स्थापित करन का प्रयास किया। इसीलिए वह कहता है—सभी महान् लेखक मर्त्य-प्राणी से ऊपर हाते हैं, उत्कृष्टता उन्हे इश्वर के विस्तृत मानस तक ले जाती है। 'लाजाइनस' अरस्तू के समान हो भावात्मक सतोष को काव्य का उद्देश्य मानता है लेकिन लाजाइनस इस उद्देश्य मे एक विशिष्ट और अतीव हर्षोन्माद का आग्रह करता है जो प्लेटो के प्रेरणा सिद्धान्त के निकट की चीज है।[1] इस प्रकार लाजाइनस के सिद्धान्त मे तीन तत्व मिलत हैं—महानता, सुन्दरता और उत्कृष्टता। अभिव्यजना की भव्यता और उत्कृष्टता से इस सिद्धान्त म आत्मोद्बोधन की अध्यात्म धारणा की गहराई और पूर्णता आ गयी है। इसम क्रोचे की सहजानुभूति का दशन और अभिव्यजना का मनोविज्ञान दिखाई देता है। दोनो ने उदात्त और सौन्दर्य का अभिव्यजना के सन्दभ मे देखा है, लेकिन लाजाइनस पूर्णतया कलाविवेचक था और क्रोचे मूलत दार्शनिक।[2]

आधुनिक युग के अनेक विचारको और दार्शनिको ने उदात्त तत्व की विवेचना

---

१ डा० राजेश्वरदयाल सक्सेना स्वच्छन्दतावादी समीक्षा और साहित्य चिंतन, पृ० १८०।

२ वही।

की जिसम प्रमुख नाम है—काट, हीगल, ब्रैडले, कैरिट, सान्तायना, क्रोचे। काट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'क्रिटिक आफ जजमेंट' मे सौन्दर्य की उदात्त की तुलना करते हुए लिखा—जहाँ सौन्दय का सम्बध वस्तु के रूप पक्ष से है वहाँ औदात्य का उसके गुण स है। सौन्दय अनुभूति का विषय है जबकि औदात्य बोध से सम्बधित है। सौन्दर्य रागमूलक, औदात्य, विरागमूलक, सौन्दर्य प्रवृत्ति-मूलक है औदात्य निवृत्तिमूलक।[१] हीगल ने इसे 'आध्यात्मिक तत्व' मानकर महान धारणाओ से सम्बधित माना। ब्रैडले ने इसे 'अद्भुत महानता' पर आधारित किया। कैरिट ने औदात्य की मीमासा करते हुए स्पष्ट किया कि औदात्य के कारण ही पीडा, वेदना, मृत्यु जैसी वीभत्स एव भयानक भी कला मे सुखद एव आनन्दप्रद प्रतीत होते हैं। इसी के कारण कुरूप, करुण एव भयानक आनन्द की अनुभूति म परिणत हो जाता है।[२]

लाजाइनस ने उदात्त के पाँच स्त्रोत माने—

(१) महान धारणाओ की क्षमता
(Power of forming great conceptions)

(२) उद्दाम और प्रेरणाप्रसूत सवेग
(Inspired and vokment passion)

(३) अलकारो की समुचित योजना
(Formation of figures)

(४) उत्कृष्ट पदविन्यास
(Nobhe diction)

(५) गरिमामय और भव्य रचना विधान
(Elenated composition)

प्रथम दो तत्व नैसर्गिक शक्ति को उपज है जिनमे प्रतिभा, कवि मानस तथा दार्शनिकता निहित रहती है अन्य तीन तत्व कला द्वारा उत्पन्न होते हैं जिनमे काव्य प्रक्रिया, काव्य स्वरूप, कवि कल्पना पर विचार होता है। लाजाइनस ने प्रेरणाप्रसूत सवेग को उदात्त का उद्गम स्त्रोत माना जिसमे कल्पना प्रमुख भूमिका निभाती है। इसीलिए कल्पना भव्य होती है और काव्य को सौन्दर्य, नूतनता और उत्कृष्टता प्रदान करती है। विचारो की उत्कृष्टता काव्य के वस्तु-विन्यास पर निर्भर होती है। प्रभावपूर्ण होने के लिए काव्य के वस्तु-विन्यास पर निर्भर होती है। प्रभावपूर्ण होने के लिए काव्य के वस्तु-वियास को ओगिक इकाई (Organic whole) के रूप मे होना आवश्यक है। उदात्त सिद्धात का अन्तिम तत्व गरिमामय और भव्य रूप

१ A C Bradle Oxford Lectures on Poetry, P 41

२ डा० गणपतिचद्र गुप्त महादेवी, नया मूल्याकन, पृ० ३१५।

विधान काव्य की पूर्णता का द्योतक शब्द है। इसी में काव्य की लयात्मकता विद्यमान रहती है। इसी लय सिद्धांत के द्वारा लाजाइनस काव्यालकार और लक्षणा का औचित्य निर्धारित करता है। भाषा की उत्कृष्टता, अलकार, लक्षणा को लाजाइनस प्रथम तत्व महान धारणाओ के भीतर स्वीकार करता है और उसने कवि के व्यक्तित्व की महानता को आवश्यक माना।

लाजाइनस के सिद्धात के आधार पर जब हम महादेवी के काव्य का देखते है तो हम उदात्त सिद्धान्त के सार तत्व उनके काव्य म अपने समूचे रूप मे दृष्टिगत होते हैं। वे छायावाद की महान कवियित्री स्वीकार की जाती हैं, उनका समूचा काव्य अलौकिक ब्रह्म की साधना है। अध्यात्म के अमूर्त आकाश म ही उनके भाव खग पख पसारे उडते हैं। अध्यात्म का विषय अपने आप म ही ऊँचा और उदात्त है। महादेवी अपने काव्य की मूल भावना के लिए उसे ही आधार रूप मे ग्रहण करती है और करुणा, वेदना, निर्वेद की भावनाओ के माध्यम से उसे अभिव्यक्ति देने का प्रयास करती है। 'महादेवी की वेदना उस उदात्त भूमि पर है, जहाँ सम्पूर्ण विश्व के प्रति वेदना चन्दन बन जाती है। सत्य का अनुसधान व सौंदर्य के माध्यम से करती है। अपने पथ की बाधाओ का उन्हे ज्ञान है पर चिन्ता नही। उनके स्पन्दन मात्र ने झझा का हर-हर सधान कम कर दिया है। दुगम शिलाए पारस सी गल गई हैं, दुर्गम नभ चन्दन का आगन बन गया है, रज अगराग बन गई है, आतप आलेपन बना है।'[1]

भावो की विशिष्टता आत्मिक मूल्यो की शाश्वत, अन्तरग क्षणो की एकता उनके काव्य की उच्चतम भावभूमि पर प्रतिष्ठित करती है। वे स्वय कहती हैं—मेरे इन गीतो के उरस का कारण अनन्त और असीम सत्य का बोध ही है। यद्यपि ये मेरी सीमित वाणी से मुखरित है, तथापि इनका मूल विराट और व्यापक है। बादल की तरह उठकर ये उदात्त भावलोक मे विचरण करने वाले हैं, किन्तु धरती से इनका सम्बन्ध बराबर बना रहता है। सागर के खारे जल को मीठा बनाकर जिस प्रकार बादल पृथ्वी की प्यास बुझाते हैं, उसी प्रकार मेरे गीत धरती की कटुता को उदात्त भावो का सस्पर्श देकर उसी के कल्याण के लिए निरन्तर प्रयुक्त होते रहते हैं—करुणा के रूप मे विश्व का कल्याण करते हैं। इन्हें न तो किसी का मार्ग निर्देशन चाहिए और न पाथेय की क्योकि परावलम्बी न होकर ये सहज स्फूर्त हैं। जैसे विद्युत से आकाश और सौरभ से काटे सुन्दर और सहज बन जाते हैं, वैसे ही मेरे हृदय का करुणामय माधुर्य जीवन के दुख और पीडा को सहज और मधुर बना देता है। 'स्व'

१ कृष्णचन्द्र पालीवाल महादेवी, रचना प्रक्रिया, पृ० ११८।
२ महादेवी वर्मा, गीतपर्व भूमिका।

से 'पर' की ओर ले जाने वाले इसी लोक मंगल की भावना से प्रेरित होकर वे अपनी करुणा का विस्तार करती हैं—

जब यह दीप थके तब माना
यह चंचल सपने भोले हैं
दृग जलचर पाले मैंने, निज अलकों पर ताले हैं
दे सौरभ के पंख इन्हें सब नयनों म पहुँचाना।[1]

स्थूल के स्थान पर महादेवी ने सूक्ष्म का अंकन किया। उदात्त का मूलाधार स्थूल वस्तु रूप न होकर सूक्ष्मतत्व बोध होता है। इसी अलौकिक तत्व की लौकिक अभिव्यक्ति करते हुए भी उनके काव्य मे ऐन्द्रिय और आंगिक रेखाओं का अभाव है। करुणा और निर्वेद की भावना काव्य-काव्य की पंक्ति-पंक्ति में है। सुख की अपेक्षा दुःख का ग्रहण निर्वेद को उस स्थिति को समक्ष रखता है जिसमे हृदय की सात्विकता दृष्टिगत होने लगती है—

उसम मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों मे करुण काव्य
वह लिख जाता!
वह उर म आता बन पाहुन,
कहता मन से 'अब कृपण न बन',
मानस की निधियाँ लेता गिन,
दृग-द्वारों को खोल विश्व भिक्षुक
पर, हंस बरसा जाता।[2]

महादेवी का अभिव्यंजना पक्ष उनके वस्तु विन्यास की भाँति ही स्वाभाविक, संयत और गौरवपूर्ण है। कल्पना की उत्कृष्ट व्यंजना में आध्यात्मिक आग्रह है किन्तु 'मोनोटोनी' नही। चिंतन और दर्शन के ऐक्य ने रहस्यवाद की उत्पत्ति की। जो वस्तु विन्यास को सूक्ष्मता और गंभीरता प्रदान करता है। पीड़ा, करुणा से सिक्त सभी प्रतीक आराधना, अर्चना, वन्दना के भाव प्रतीक है। भाषा लाक्षणिक और व्यंजनपरक है, जिसमे कोमलकान्त पदावली के प्रयोग से शब्द बोलते से प्रतीत हैं। लांजाइनस के मत मे 'शब्दों का अपना निजी सौंदर्य होता है। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली ने महादेवी की काव्य शैली मे गरिमा के साथ एक संगतिपूर्ण संघटना

---

१ महादेवी वर्मा, दीपशिखा, पृ० ८०।
२ महादेवी वर्मा, यामा, पृ० ७६।

(Harmonious setting of words) उत्पन्न करती है और यही सघटना उनके काव्य के नैसर्गिक उल्लास और आनन्द की व्यंजक है। लांजाइनस ने अलंकार का मूल कवि के भावों में निहित माना—अलंकार उस स्थान पर सर्वाधिक प्रभावपूर्ण होता है, जहाँ यह तथ्य छिपा रहता है कि वह अलंकार है। महादेवी के काव्य में अलंकार सौष्ठव उनके मानस अभिव्यक्ति से जुड़ा होने के कारण स्वाभाविक और सहज है।

महादेवी का समूचा कला विधान एक सम्पूर्ण चेतन प्रक्रिया है जिसमें आवयविक दृष्टि की प्रधानता है और इस दृष्टि से उदात्त के पाँचों तत्व उनके काव्य में तरंग रूप में समाहित हैं। कल्पना व्यापार द्वारा निर्मित उनका काव्य उनकी मनसधारणा की रूप-प्रतिकृति है क्योंकि रूप का उत्कर्ष और उसकी सम्पूर्ण विधायक योजना कवि मानस शक्ति पर आधारित होती है।[1]

महादेवी वर्मा का चित्रकला पक्ष

चित्रकला का विकास अत्यंत प्राचीनकाल से ही माना जाता है। पाषाणयुगीन आदिम मानव की चित्रकला के अवशेष दक्षिण रोडेशिया, पेरू आदि के गुहागृहों में प्राप्त होते हैं। क्रमशः यहीं से चित्रकला विकसित होती गयी और विभिन्न शैलियों का उदय हुआ। सिंधु घाटी की सभ्यता के अवशेषों में एक विशिष्ट प्रकार के शब्द-चित्रों की उपलब्धि हुई। बौद्धधर्म से सम्बन्धित भित्तिचित्र अजंता-एलोरा की गुफाओं में मिलते हैं। जिनमें गौतम बुद्ध के जीवन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित चित्रों का अंकन है। १६वीं से १८वीं शताब्दी के मध्ययुग में राजपूत शैली का विकास मिलता है। इस शैली को आनन्दकुमार स्वामी ने प्रमुख स्थान दिया और उसे राजस्थानी, पहाड़ी दो शैलियों का अंग बताया।[2] कृष्ण-लीला इसका प्रमुख विषय रही है।

क्रमशः मुगलशैली ने भारतीय चित्रकला को नया मोड़ दिया। अकबर, जहाँगीर के युग में चित्रकला अपने उन्नत रूप में सामने आयी। सूक्ष्मता और साम्यता का अंकन इस शैली की विशेषता रही। इसके पश्चात् राजा रवि वर्मा और टैगोर बंधुओं ने चित्रकला के सृजनात्मक पक्ष को नूतन आयाम दिया। जिसे बाद में विकसित करने का श्रेय वसुन्साई, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, नंदलाल घोष, यामिनी राय, शैलेन्द्र डे आदि को है। बंगला स्कूल के पतन के बाद अमृता शेरगिल, सतीश गुजराल, शिवकुमार शर्मा, हुसैन, हैब्बर, प्रकाशचन्द्र बरुआ आदि ने भारतीय चित्रकला में लोक शैली और पाश्चात्य कला का सम्मिश्रण कर उसे उन्नत बनाया।

हिन्दी में प्रथम चित्रकर्मी के रूप में हमारे सामने महादेवी वर्मा ही आती हैं। चित्रकला का विकास महादेवी में बचपन से ही हो चुका था—शैशव से ही रंग और

---

१ M H Abrams The Mirror and the Lamp, P 73

२ डा० जगदीश गुप्त मना के पदचिन्ह, पृ० १३३।

रेखाओ के प्रति मेरा कुछ वैसा ही आकर्षण रहा है जैसे कविता के प्रति ।[१] स्वभाव से ही व इस ओर प्रेरित थी इसीलिए यदि 'चिडिया' पर कविता लिखी तो उसके साथ चाच ही चित्रित कर दी ।[२] और इसीलिए उनकी रगीन कल्पना के जा रग शब्दो मे न समाकर छलक पडे या जिनकी अभिव्यक्ति पूर्ण रूप सतुष्टि न कर सकी वे ही तूलिका के आश्रित हो सके ह ।[3] पाश्चात्य कवियो मे विलियम ब्लेक मे हमे इसी प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है । बगला साहित्य म अवनीन्द्र ठाकुर, असितकुमार हल्दार आदि मे यही प्रवृत्ति थी । हिंदी म महादवी प्रथम कवि चित्रकार हैं ।

महादेवी ने लिखा है—'दीपशिखा' मे मेरी कुछ ऐसी रचनाएँ सग्रहित हैं जिन्हे मैंने रगरखा की धुधली पृष्ठभूमि देने का प्रयास किया है ।[४] 'यामा' मे चित्रकला वर्जिता की सहयोगिनी थी पर 'दीपशिखा' तक आते-आते पृष्ठभूमि दन के आग्रह के कारण वह उसकी अनुचरी मात्र रह गई है । कविता और चित्र दोनो दृष्टियो से 'यामा' और दीपशिखा का महत्व अभूतपूर्व है । महादवी चित्र को अन्य सभी कलाओ की तुलना म काव्य का विश्वस्त सहयोगी स्वीकार करती है । विस्तृत रूप म चित्रकला का काय महादेवी न सन् १९३५ से पारम्भ किया था । प्रमुख रूप से कवि होने के कारण व स्वीकार करती हैं । चित्र तथा कविता दोनो कलाएँ जहा भी रही हैं वहाँ एक प्रधानता और दूसरी का सकोच अनिवार्य है । चित्रो के उपयोग से व गीतो को बाह्य वातावरण देन की चेष्टा करती हैं—मेरे अन्तमुखी चित्रो म जो यह एक एकाग्रता ही व्यक्त हो सकती है, परतु चित्र मे उनका बाह्य वातावरण भी चित्रित हो सका है । इसीलिए वे 'यामा' मे चित्रकला को निरीक्षण और कल्पना पर तथा काव्य को भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर बतलाती ।[५]

'यामा' और 'दीपशिखा' के अतिरिक्त 'पथ के साथी', 'स्मृति की रेखाए', 'मेरा परिवार' मे उन्होंने सचित्र रखाचित्र दिये हैं । 'कामसूत्र' के टीकाकार यशोधर ने शास्त्रीय दृष्टि से चित्रकला के छ तत्वो का निरूपण किया—

रूपभेदा प्रमाणानि भाव लावण्य योजनम् ।
सादृश्य वर्णिका भग इति चित्र षडागकम् ।

अर्थात् रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्ययोजना, सादृश्य, वर्णिका भग । रूपभेद से तात्पय है लघु गुरु आकार का और प्रमाणानि का अर्थ है दूरस्थ अथवा समीपस्थ वस्तुओ की माप । अग्रेजी का 'पर्सपेक्टिव' शब्द इनका समुच्चय है । भावहून्य पक्ष है

---

१ यामा, पृ० ८ ।
२ वही, पृ० ८ ।
३ वही ।
४ दीपशिखा, पृ० ५६ ।
५ महादेवी वर्मा यामा, पृ० ८ ।

और लावण्य योजनम् सौन्दर्य पक्ष। सादृश्य के द्वारा चित्र से समानधर्मी वस्तुओं की ओर सकेत है और वर्णिका भग मे रगरेखाएँ और हल्का, गहरा, आलेखन सभी कुछ आ जाता है।[१]

महादेवी के काव्यचित्रो मे इन सारे तत्वो का ध्यान रखा गया है। रूपरेखाओ का अकन यद्यपि प्रारम्भ मे सशक्त नहीं है किन्तु बाद के काव्यो म रेखाचित्र और काव्यचित्रों मे उन्होंने रग, आकार, अनुपात आदि सभी का ध्यान रखा है। प्रमाण की दृष्टि से आकृति का अनुपात, अवयवो का समावेश, क्रम का पूर्ण पालन उनके काव्य मे हुआ है। इस दृष्टि से 'यामा' का 'यात्रा का अत' चित्र उल्लेखनीय है।[२] भाव पक्ष की प्रधानता के कारण उनके सारे गीत ऐहिकता से दूर आँसुओ में या 'चदन-चादनी' के देश मे निर्मित हुए जान से पडते है।[३] और इसलिए उनके चित्रो का साध्य उनके गीतो की भावभूमि को पेशलत्व देकर वस्त्रालकारो को काल्पनिक रूप से चित्रित कर वे चित्र भावो का कविता के निकट लाने का प्रयास करती है। इसलिए सामान्यतया हाथों म विवशता, पैरा म गति, नेत्रा म करुणभाव विशेष रूप से तरल होकर आया है। लावण्य हेतु वे बाह्य सौदय का भी ध्यान रखती है इस दृष्टि से 'दीपशिखा' का 'मलय मारुत के झकोरे' चित्र[४] का उल्लेख किया जा सकता है। सादृश्य की दृष्टि से भाव और चित्र के बीच श्लाघनीय सादृश्य कायम किया गया है।

रगो की दृष्टि से वे 'वाश टेक्नीक' मे चित्र अकित करती है। प्राय 'यामा' के चित्रो मे बैगनी, नीला, हरा, सफेद, लाल रगो का प्रयोग मिलता है। 'नीला' उनका प्रिय रग है। इसके अतिरिक्त बगाल के दुर्भिक्ष के समय उन्होंने 'अन्नपूर्णा नामक तैलचित्र भी तैयार किया था। अजन्ता की चित्रकला और मूर्तिकला से भी वे प्रभावित हैं। अत उनके चित्रा की मुद्राओ म मूर्तिकला का प्रभाव देखा जा सकता है। महादेवी ने स्वय स्वीकार किया है—"कुछ अजन्ता के चित्रा पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से चित्र म यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गयी है।"[५]

इसी मूर्तिकला के प्रभाव से उनके चित्रा म अगविन्यास की बारीकता, आकार की सुनिश्चितता, काट-छाँट दिखाई देती है। 'हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन' कोई यह आँसू आज माँग ले जाता। आदि गीतो म मूर्तिकला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

---

१ डा० जगदीश गुप्त भारतीय कला के पदचिन्ह, पृ० ४८।
२ महादेवी वर्मा यामा, पृ० ८१।
३ डा० जगदीश गुप्त भारतीय कला के पदचिन्ह, पृ० ५०।
४ महादेवी वर्मा दीपशिखा, पृ० ४१।
५ वही, पृ० ८०।

'यामा' और 'दीपशिखा' के चित्रों में चरणो या हाथो के चित्रण में मनोभावो के व्यजन का कौशल और भौहे, आँख तथा नाखून का प्रलम्ब रूप अजन्ता के प्रभाव की घोषणा करते हैं। किन्तु अजन्ता के चित्रों की तुलना मे महादेवी की कुछ अपनी विशिष्ट विशेषताएँ भी हैं। सूक्ष्म भावयोजना, प्रकाश छाया का कुशल निरूपण, रगसयोजन, आकृतियों का अनुपात अपनी अलग विशेषताएँ रखते हैं। मसृणता, कोमलता, स्वप्निलता कल्पना का अति प्रयोग, अवयवों की पेशलता, गति उन्हे बगाल स्कूल के चित्रकार शैलेन्द्र डे, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के निकट रखता है तो कागडा-पद्धति का प्रभाव उनके चित्रो मे अकित केश विन्यास मे देखा जा सकता है।

उनके चित्रो में दीपक, कमल जैसे भारतीय परम्परागत प्रतीकों का अकन अधिक मिलता है। महादेवी ने अपने चित्रो मे 'कमल' का चित्रण विविध रूपो मे किया। 'यामा' के नारी चित्रो में एक नारी के हाथो मे 'कमलपुष्प' के साथ दोनो हाथ काँटो से बिंधे हुए हैं तो कहीं 'लीलाकमल' का प्रयोग है जो नारी पात्रों के शृङ्गार का प्रमुख साधन है। इन सभी विशेषताओं के साथ यत्र तत्र कुछ दोष भी मिलते हैं इनमे आकृति अनुपात प्रमुख है। महादेवी के चित्रों मे अगों के विन्यास मे लघु गुरु लम्बता मिलती है। इसके अतिरिक्त हल्के रगों का सम्मिश्रण धुधलापन, अस्पष्टता उत्पन्न करती है। किन्तु इन नगण्य दोषों के होते हुए भी उनका चित्रकला पक्ष अत्यन्त समृद्ध और कलापूर्ण है। हिन्दी में प्रथम कवि चित्रकर्त्री के रूप मे महादेवी चिरस्मरणीय रहेंगी।

रहस्यवाद

विश्व साहित्य में श्रृङ्गार, करुण और शात की रसात्मकता ही केन्द्र मे रहा है। मूलवर्ती चेतना के विकास म भी यह रसात्मकता रही है। ग्रीक त्रासदी मे भी इसी त्रिकोण का समन्वय रहा। ग्रीक त्रासदी के लौकिक, आध्यात्मिक पहलुओ मे श्रृङ्गार और शातरसोन्मुख करुण की जैसी सगीतात्मक मधुराभिव्यक्ति हुई है वह आज भी सहृदयों के मन को आप्लावित करती है। शेक्सपियर की त्रासद भावना का समूचा चरित्र ही श्रृङ्गार और करुण की उच्चतर एव उदात्त अनुभूतियों मे दिखाई देता है। भारत मे भी आदिकवि से लेकर कालिदास, भवभूति तक श्रृङ्गार, करुण और शातरस की सागीतिक-ध्वनियो में जीवन के मार्मिक पहलुओं का उद्घाटन हुआ है और हम कह सकते हैं कि जीवन की अभिव्यक्ति और निष्पत्ति इन तीन रसों के समाहार मे ही होती है।

श्रृङ्गार और करुण की एकरसता में जीवन के लौकिक आधार अपनी समूची गहराइयो के साथ अभिव्यक्त होते हैं और मानवीय नियति से बँधकर जीवन की दार्शनिक रूपरेखा का निर्माण करते हैं। कविता या काव्यकला मे श्रृङ्गार या करुण मे जीवन के रचना स्रोत और उनकी प्रकृति का पता चलता है तो शात मे जीवन की पूर्णता का, उसके मूल्य और उसकी सारगर्भिता का पता चलता है। अत इस रसत्रय के त्रिकोण से ही ससार के श्रेष्ठ काव्य की सत्ता बनी हुई है।

हिन्दी की छायावादी रचनाओं में भी रसत्रय की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम और श्रृङ्गार की वियोगातमूलक भूमिका से छायावादी कविता मे जीवन के सुख-दुख का चित्रण हुआ है, किन्तु यह सुख दुख की सीमा नही, मनुष्य की नियति भी नहीं, बल्कि उसस आग जीवन का आध्यात्मिक लाभ है। इसमें समूची जीवन प्रक्रिया का हल दृष्टिगत होता है। छायावाद के रचनाकारो मे प्रसाद, पत, महादेवी ने जीवन रचना का जो स्वरूपाकन किया है और उसके अस्तित्व बोध की जसी मीमासा की है उसमे वेदना का प्रमुख स्थान है। यह वेदना एक ओर तो सृष्टि और प्रकृति की परिवर्तनशील दृष्टि से निर्मित होती है, दूसरी ओर इसकी रचना मे अगणित अज्ञात शक्तियाँ हैं, जो मनुष्य के जीवन को स्थिर नही होने देती और तीसरी ओर इसका एक सुनिश्चित दर्शन हमे मिलता है।

प्रसाद और महादेवी पर वेदात के साथ बौद्धधर्म का भी गहरो प्रभाव है और इसीलिए छायावाद की वेदनामूलक काव्य सृष्टि में श्रृगार और शात की एकरसता दिखाई देती है। वेदना वस्तुत मानवजीवन में ही नही सम्पूर्ण प्रकृति मे

ब्याप्त है, वेदना गति का मूल और जीवन का सर्वस्व है। इस वेदना मे ही जीवन की समग्रता, द्वन्दो का समाहार है। इसलिए महादेवी वर्मा का काव्य वेदना प्रधान है और इसलिए उनके गीत आत्मनिवेदन मात्र होते हुए भी सारे ससार को एकसूत्र मे बाँधने की क्षमता रखते हैं। आत्मा के अतरगी कक्ष मे प्रवेश कर तथा अपन पूर्ण आत्मसाक्षात्कार के क्षणों म वे उस ऐक्य को पाती हैं जो सचराचर जगत को एकसूत्र मे बधित करती है।

महादेवी की यह वेदनानुभूति उनके काव्य मे वेदना, करुणा, दु ख के रूप म दृष्टिगत होती है। जो एक ओर उन्हे निर्वेद या शातरस के पोषक के रूप मे उपस्थित करती है और दूसरी ओर व्यापक करुणा और सहानुभूति का सचार कर जड चेतन के प्रति उन्हे सहृदय बनाती है। उन्होंने दु ख का सर्वव्यापी स्वरूप निरूपित किया, नश्वरता की सराहना की अमरता के प्रति उदासीनता प्रगट की, मृत्यु को उत्सुकता से आमन्त्रित किया पर निराशावश नही बल्कि अनन्त मिलन की आश से और इसीलिए वे रवीन्द्रनाथ टगोर की तरह मुक्ति और मोक्ष की अपेक्षा सासारिक बन्धनो मे प्रियदर्शन का प्रयास करती है।[1]

गौतम बुद्ध ने दु ख को अत्यधिक महत्व दिया और बौद्धधर्म के करुणादर्शन के प्रभाव के कारण महादेवी भी वेदना को जीवन का पर्याय स्वीकर करती है। उनकी वेदनामात्र पीडा नही, मधुर करुणात्मक चेतना का पर्याय है और इसीलिए वे लिखती हैं—'विश्वजीवन मे अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।'[2] उनकी वेदना युग-युग से परितप्त जीव की यात्रापरक वेदना है। यह वेदना ही आत्मा को परमात्मा से मिलाती है। वेदना की यही अनुभूति समस्त सूफी काव्य में कबीर, नानक, मीरा में है और यही महादेवी मे भी है।

बौद्ध दर्शन के प्रभाव के होते हुये भी उनमे निराशावादी स्वर मुखरित नही है। यद्यपि वे कहती हैं—निराशाओ के झोकों मे वेदनाओ के झझावात उत्पन्न किये और जीवनकूल को बिखरा दिया है—

---

१ Deliverance ? Where is this deliverance to be found, our matter himself his joyfully taken upon the Bonds of creation, he is bound with us all for ever —Tagore Sadhna

महादेवी भी कहती है—'मृत्यु का प्रस्तर सा उर चीर,
प्रवाहित होता जीवन नीर
चेतना से जड का बन्धन
यही सस्कृति का हृदकम्पन। —यामा, पृ० २४७।

२ महादेवी वर्मा यामा, पृ० १२।

निराशा के झोंकों ने देव
भरी मानस कुंजो मे धूल
वेदनाओ के झझावात
गये बिखरा यह जीवन फूल ।[1]

किंतु निराशा उनके काव्य का प्रमुख स्वर नहीं है। उनकी वेदना में निराशा नहीं, थकान नहीं, अकुलाहट नहीं बल्कि एक दृढ विश्वास है जो उनके काव्य का मूलाधार है। जिसका प्रमाण उनकी रचनाओं मे उपलब्ध है—

मैं क्यो पूछूं यह विरह निशा कितनी बीती क्या शेष रही ।[2]

उनके काव्य में दुःख के तीन रूप प्राप्त होते हैं—

प्रथम सुख दुःख के सहअस्तित्व की व्याख्या के रूप मे, द्वितीय दुःख की भाव प्रसारिणी क्षमता क रूप मे जो करुणा और सहानुभूति के रूप में व्यक्त होता है तृतीय जीवनास्था क रूप मे जहाँ वे मृत्यु को भी चरम विकास के रूप मे देखती हैं।

सुख और दुःख की व्याख्या मे वे चिन्तन के व्यापक धरातल पर पहुँचकर मानव विकास प्रक्रिया का अनुसन्धान करती है। विघटन और विनाश के स्वरो म भी निर्माण के अमर तत्वो का खोज करती है—'सृष्टि का यह अमिट वरदान, एक मिटने मे सौ वरदान' ।[3] वे जानती हैं सुख अहम् केन्द्रित करता है और दुःख सकुचित सीमाओ से ऊपर उदात्त भूमिका पर प्रतिष्ठित कर समाजनिष्ठ बनाता है और इसीलिए वे दुःख की भावभूमि पर वृत्तियो का समाजीकरण करती है—

'दुःख के पद छू बहते झर झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर
लघु मानस मे वह असीम
जग को आमन्त्रित कर लाता ।'[4]

सुख दुःख से बँधा यह जीवन करुणा और वेदना मे विस्तार पाता है। अज्ञेय ने 'शेखर की जीवनी' मे वेदना के दो रूप स्वीकार किए हैं— 'एक ऐसी वेदना होती है जो व्यक्ति को कुण्ठित कर देती है, दूसरी ऐसी जो उसे सघर्ष, विद्रोह या नवसृजन के लिए प्रेरित करती है। एक वेदना व्यक्ति को ह्रासोन्मुख बना देती है और दूसरी ससार के दुःख का अवलोकन कर उसे सम्पूर्ण शक्ति के साथ हटाने को विवश करती है।' महादेवी ने वेदना के दूसरे पक्ष को ही अधिक महत्व दी है—'दुःख मेरे निकट

१ यामा नीहारा, पृ० ४० ।
२ दीपशिखा, पृ० ११६ ।
३ यामा, पृ० ८४ ।
४ वही, पृ० ७६ ।

जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे ससार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असख्य सुख हम चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नही गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सबको बाँटकर।' मुझे दुःख के दानों ही रूप प्रिय हैं एक वह जो मनुष्य के सवेदनशील हृदय को सारे ससार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बांध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन मे पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।'[1] उनके गीतो मे सम्पूर्ण ससार को बाँधने वाला दुःख ही व्यक्त हैं। यथा—

'अश्रु ने सीमित कणो मे बाध ली,
नही घन सी तिमिर सी वेदना?
क्षुद्र तारों से पृथक् ससार म
क्या कही अस्तित्व है झकार का।'[2]

महादेवी ने करुणा को जीवन का प्रेय माना। वेदना अपने सम्पूर्ण परिवेश मे उन्हें अनेक विभूतियो का साक्षात्कार करने का अवसर देती है, किन्तु 'ससार क्या है?' के साथ साथ उनकी चिर जिज्ञासा का विषय 'क्षितिज के उस पार' क्या है, बन जाता है और वे इस चिरजिज्ञासा मे कण कण से परिचित होने के लिए उत्सुक हो जाती है और उनकी वेदना मधुरता का रूप धारण कर रहस्यबोधक बन जाती है और उनके काव्य म रहस्यवाद के विविध पक्ष दिखाई पडने लगते हैं —

रहस्यवाद की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि और महादेवी की रहस्यभावना

रहस्यवाद जिज्ञासामूलक भावना है, जिसमे जीवन और जगत के प्रश्नो पर भावात्मक धरातल से चिन्तन किया जाता है और इस जगत के सृष्टा को जानने की इच्छा इस भावना म प्रबल रहती है।

रहस्यवाद भावात्मक स्थिति में चरमसत्ता से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की विशिष्ट दशा है।[3] श्री जयशकर प्रसाद ने रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए

---

१ यामा : अपनी बात, पृ० १२।

२. यामा (रश्मि) पृ० ११३।

3 Mysticism, a phase of thought or rather perhaps of feeling which from its very nature is hardly susceptible or exact definition It appears in connection with the endevour of the human mind to grasp the divine essence or the altimate reality of things and to enjoy the blessedness of actual communion with lighest —Encyclopaedio Britonnica

लिखा है—'इसमे अपरोक्षानुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहं' का 'इदं' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।[1] रहस्यवादी कवि अपने अन्तर की समस्त रागात्मक भाव सत्ता के साथ चिरन्तन सत्य के प्रति आत्मनिवेदन करता है। आत्मनिवेदन मे उल्लासमय और अश्रुपूर्ण प्रणयोद्गारो को अभिव्यक्ति होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये प्रणय भाव अन्तश्चेतना की क्रिया प्रतिक्रिया है। मनुष्य की रहस्यो मुखता अथवा आध्यात्मिकता के अनेक मनोवैज्ञानिक कारण है।

सिग्मण्ड फ्रायड ने साहित्य और कला की अनुभूतियों मे अचेतन मन की दमित कामवृत्तियो का सहज विकास मानते हैं। उनके मत मे—'कलाकार मूलत मनस्तापी होता है। कलाकार की मनोवृत्ति अन्तर्मुखी होती है—वह सम्मान, शक्ति, सम्पत्ति, यश और नारी प्रेम प्राप्त करना चाहता है, किन्तु इन परितुष्टियों के प्राप्ति के साधनो से वंचित है। इसलिए असतुष्ट कामभावना के कारण दूसरे व्यक्तियों के समान ही वह वास्तविकता मे दूर हट जाता है और अपनी सारी अभिरुचि और कामोत्तेजना को रम्य-कल्पना के जीवन में अपनी इच्छाओं की सृष्टि की ओर लगा देता है जिससे मन स्ताप उत्पन्न होता है यह सुविदित है कि कलाकार अधिकतर अपनी शक्तियों के आंशिक निरोध से तथा मन स्ताप से ग्रस्त होता है। सभवत उसकी सरचना मे उदात्तीकरण की सबल शक्ति होती है। वह जानता है कि अपने दिवास्वप्नो का किस प्रकार विस्तार करे उसमे वह रहस्यात्मक योग्यता भी होती है जिससे अपनी विशिष्ट सामग्री को इस प्रकार ढाल दे कि कल्पनागत विचारों की अभिव्यक्ति हो जाये।[2]

फ्रायड ने Dream और Occutt मे अपने रहस्यवाद सम्बन्धी विचारों को प्रगट किया है। उनके मत मे रहस्यवाद या Occutticism का सामान्य अर्थ है 'एक दूसरा ससार' जो इस सामान्य ससार से भिन्न है। फ्रायड के मत मे रहस्यवाद की ओर प्रेरित करने का कारण यह है कि सामान्य जीवन में हमारे ऊपर बड़ा अनुशासन होता है, फलस्वरूप हमारे अन्दर नियमों और विचारों की एकरूपता के विरुद्ध विरोध करने की शक्ति बढ जाती है। विवेक हमारा शत्रु बन जाता है और हम आनन्द की सभावनाओ से दूर हो जाते हैं। फलत रहस्यवाद के सनकीपन में हमें एक क्षण के लिए आनन्द मिल जाता है। इसलिए Occult के सिद्धात, तत्व और नियमों के Breaches है।[3]

---

१ काव्य, कला और अन्य निबंध, पृ० ६८।

२ इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइकोअनलिसिस, पृ० ४८।

३ इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइकोअनेलिसिस, पृ० ४८।

फ्रायड के अनुसार साहित्य या काव्य मे व्यक्ति की कुंठित कामना का बहिर्मुखी विकास होता है, यह भी उदात्तीकृत रूप में और यह उदात्तीकरण उसे रहस्यात्मकता की ओर ले जाती है।

वैयक्तिक मनोविज्ञान के प्रतिष्ठापक अल्फ्रेड एडलर ने मानव जीवन की मूल प्रेरणा 'अधिकार भावना' को स्वीकार किया जिसके पीछे हीनता की ग्रंथि (Complex of Inferiority) छिपी रहती है। उसके मन मे श्रेष्ठता की भावना हर व्यक्ति मे रहती है और 'कवि में तो हर कोई जानता है किन्तु मुख्यत यह रहस्यमय अधकार मे छिपी रहती है और पागलपन अथवा हर्षातिरेक की दशा मे ही निश्चित रूप से उभरकर आती है। एडलर आगे लिखता है—'जो दिव्यता का यह मार्ग गभीरता से अपनाएगा उसे शीघ्र ही वास्तविक जीवन से भागने की ओर जीवन के भीतर एक अन्य जीवन की कल्पना कर उससे समझौता करने को बाध्य होना पड़ेगा। यदि वह भाग्यशाली रहा तो यह कला मे संभव होगा, अन्यथा भक्ति प्रवणता, मनस्ताप या अपराध में।'[1]

स्पष्ट है कि काव्य में श्रेष्ठता और हीनता की भावना के कारण ही कवि भक्ति और रहस्य की ओर उन्मुख होता है। जीवन की क्षणभगुरता, नश्वरता उसे दिव्य या आध्यात्मिक जीवन की कल्पना स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है।

विश्लेषक मनोविज्ञान के जन्मदाता कार्ल गुस्ताफ युग ने जिजीविषा को जीवन की मूल प्रेरणा मानकर मानव स्वभाव को अन्तर्मुखी (Introvert) और बहिर्मुखी (Extrovert) के रूप में स्वीकार किया। उसके मत मे बहिर्मुखी की प्रवृत्ति वस्तुनिष्ठ और स्थूल होती है। इसके विपरीत अन्तर्मुखी आत्मनिष्ठ और सूक्ष्म की ओर प्रेरित होता है। बहिर्मुखी आशावादी, उत्साही, सामाजिक और विषयपरक होता है, किन्तु अन्तर्मुखी निराशावादी, सकोची, असामाजिक, चिन्तनशील होता है, आत्मनिष्ठ होने के कारण वह विषयी प्रधान हो जाता है और चिन्तन और सूक्ष्म की ओर रुचि उसे रहस्यमयी, अध्यात्ममयी अनुभूतियो में लीन कर देती है।

जहाँ तक महादेवी वर्मा के वेदना के मनोवैज्ञानिक पहलुओ का प्रश्न है, उनका काव्य व्यक्तिगत वेदना अथवा निजी पीडा का सघर्ष होते हुए भी उन्नयन अथवा उदात्तता की भूमि पर है। निराशा, उदासीनता, मान और उन्नयन की विभिन्न मानसिक स्थितियो के बीच उनके काव्य में Libido का सघर्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'भारतीय नारी' का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—ऐतिहासिक दृष्टि से साम तीय सन्दर्भों में

१ मनोविश्लेपण और साहित्यालोचन, पृ० १६ से ले० क० अहमद, देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रथम सस्करण १९६९।

(काव्यशास्त्रीय तथा काव्यशास्त्रीय नायिका भेदो को छोड़कर) नारी के चिन्तन, चेतना तथा चिति में बस प्रभु और पति का शक्तिशाली आतंक व्याप्त हो गया था आत्मसमर्पिता, पति प्रभु सेविका, आज्ञाकारिणी, अनुगामिनी (दासी) चरण-पुजारिनी, स्वामी बन्दिनी जसे सामन्तीय संस्कृति चक्र में उसे एक मात्र ऐसी कर्तव्य-परायण नारी बनाकर अवनत कर दिया, जिसके आत्म विकास और 'सेक्स' परितृप्ति की लगभग कोई सम्भावना बाकी नही बची। अधिकांश मनोवन्दिनी नारियो के समूचे मनोविज्ञान में आज भी यही सामन्तीय भारतीय नारी की शाश्वत आत्मा की मिथ्या चेतना बनकर पोर-पोर में रमा हुआ है।[1]

महादेवी वर्मा के काव्य मे भी यही नारी त्रासदी आदर्शीकरण और अमूर्तिकरण के रूप में रूपायित हुई। इसलिए वे अपने पद्य काव्य में अज्ञात प्रिय के लिए तुम, कौन आदि अमूर्त शब्दों का प्रयोग करती है। गद्य के क्षेत्र मे वे जहाँ नारी विद्रोह की पुकार करती है वही पद्य के क्षेत्र में सामन्तीय नारी का परिचय देती है और इसी-लिये उनके काव्य में स्वप्नो और स्मृतियों की प्रधानता है। उनमे आत्मपीडन व आत्मरति (नार्सिसिज्म) दोनों भावनाएँ प्रबल हैं जो क्रमश काव्य व गद्य के माध्यम मे प्रगट होती है।' आत्मपीडन की भावना के कारण ही वे लौकिक व यथार्थ परिवेश को अस्वीकृत कर अपनी अस्मिता की खोज अज्ञात और असीम लोक में करती है किन्तु महादेवी का रहस्यवाद दमित वासनाओं का परिमार्जित रूप न होकर उनके अन्तर्मुखी स्वभाव की विशेषता है। उनकी इस रहस्योन्मुखता के पीछे उनके व्यक्तित्व का विरागमय आकर्षण और पारिवारिक संस्कार प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। बचपन के धार्मिक वातावरण ने उनकी रुचियों को ऐन्द्रियक, सासारिक बनाने की अपेक्षा बौद्धिक और त्यागपरक बनाया। पिता की दुलारी पुत्री के रूप ने, किशोरावस्था के आधुनिक वातावरण ने उनके Super Ego (नैतिक मन) का विकास किया। गृहस्थ जीवन के प्रति अरुचि, बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा के कारण आत्मनिर्भरता को उन्होंने आत्मव्यंजना के लिए अंगीकार किया। एकाकिनी तपस्विनी के रूप ने उनकी रहस्यमयता मे वृद्धि की जिसके पीछे Super Ego प्रमुख है।

Super Ego और Unconscious mind के टकराव ने उनमे गतिशीलता उत्पन्न की। सामाजिक यथार्थ और लौकिक अनुभवों की अस्वीकृति के कारण उनकी रहस्य चेतना आध्यात्मिक प्रतीकों के रूप मे अभिव्यक्ति हुई। दर्शन ने उनकी रहस्या-नुभूति को भाव ज्ञान की संवेदनात्मक पृष्ठभूमि पर आधारित कर दिया।

महादेवी ने सौन्दर्य, प्रेम और मानवता पर अवलम्बित अध्यात्म को महत्व दिया।[2] उनका यह दृष्टिकोण उनकी परिनिष्ठित उदात्त भावना का परिचायक

---

१ रमणगुप्ता मेघ आलोचना, पृ० ६०।

२ साहित्यकार की आस्था एवं अन्य निबन्ध, पृ०६६।

होने के साथ ही साथ आधुनिक बोध को लिए हुए है। महादेवी ने रहस्यवाद को छायावाद का दूसरा सोपान स्वीकार किया।[1] सामान्यत रहस्यानुभूति आत्मा परमात्मा की अद्वैत अनुभूति की प्रतीक समझी जाती है परन्तु महादेवी वर्मा ने इसे व्यापक अर्थ मे ग्रहण किया और प्रत्येक कर्म सौन्दर्य और सामजस्य भावना की अनुभूति को भी रहस्यानुभूति माना है—'व्यापक अर्थ म तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सौन्दर्य या प्रत्येक सामजस्य की अनुभूति भी रहस्यानुभूति है। यदि एक सौन्दय अश या सामजस्य खण्ड हमारे सामने किसी व्यापक सौन्दय या अखण्ड सामजस्य का द्वार नही खोल देता तो हमारे अन्तजगत का उल्लास से आदोलित हो उठना सम्भव नही है। इतना ही नही किसी कर्म से सौन्दर्य और सामजस्य की अनुभूति ही रहस्यात्मक हो सकती है। इसी से मनुष्य ऐसे कर्मों का आलोक स्तम्भ बना बनाकर जीवन पथ मे स्थापित करता रहा है।[2] क्योंकि सौन्दर्य चिर परिचय मे भी नवीन है पर विरूपता अनिपरिचय में नितान्त साधारण बन जाती है इसी से सौन्दर्य की रहस्यानुभूति ही अन्तहीन काव्य क्रम मे नये परिच्छेद जोडती रहती है।[3]

सौन्दय की अनुभूति एक प्रकार से रहस्यानुभूति ही है। बाह्य जगत के अतिरिक्त हमारा अन्तजगत भी महत्वपूर्ण होता है। स्थूल और सूक्ष्म के सामजस्य मे ही जीवन है। कम का जितना महत्व जीवन म है भावना का उसमे कम नही है। हमारे जीवन म सूक्ष्म और स्थूल की जैसी समन्वयात्मक स्थिति है वही कला को केवल स्थूल या केवल सूक्ष्म मे निर्वासित न होन देगी। जब हम एक व्यक्ति के काय को स्वीकार करेगे तब उसकी पटभूमिका पर बने हुए वायवी स्वप्न सूक्ष्म-आदश, रहस्यमयी भावना आदि का भी मूल्य आकना आवश्यक हो जायेगा।[4]

अन्तजगत की यह स्थिति रहस्यानुभूति म आनन्द को मीलित करती है। इस व्यापक अथ को स्वीकार करने मे महादेवी का दृष्टिकोण दाशनिक का न होकर सौन्दर्यवादी का रहा है।

उनकी रहस्यानुभूति को प्रमुख रूप से दो रूपो म विभाजित किया जा सकता है—(१) प्रवृत्तिमूलक रहस्यानुभूति (२) निवृत्तिमूलक रहस्यानुभूति।

(१) प्रवृत्तिमूलक रहस्यभावना

कविता के मूल्य मानवीय होते है और कवि लौकिक मानव। अन्य सामान्य व्यक्तियों की भाँति वह भी सुख और दुख का अनुभव करता है पर कुछ अधिक तीव्र

१ महादेवी साहित्य, पृ० २३७—म० ओंकार शरद।
२ दीपशिखा, पृ० २८-३०।
३ वही, पृ० ९८।
४ वही, पृ० ८।

मात्रा मे। अपनी अपूणता में प्रति वह सचेष्ट भी होता है, यह सचेष्टता उसे पूर्णता की ओर ले जाती है। अन्तर्मन का परिष्कार तब तक नही होता जब तक एन्द्रिय जगत और अतीन्द्रिय जगत अनुभूति मे एक नही हो जाते, लौकिक सीमाए सीमातीत म नही मिल जाती और इस एक के लिए लौकिक प्रेम का माध्यम आवश्यक है।[1]

महादेवी की प्रगीत रचनाओ मे विशेषकर 'नीहार' और 'रश्मि' में लौकिक प्रणय भावना अपने सात्विक रूप म दृष्टिगत होती है, क्योकि उनकी प्रेमभावना एक स्थूल शारीरिक आकर्षण मात्र तक सीमित नही बल्कि उसमे आत्मा के अह का विसर्जन एव समपण का उत्कर्ष है।[2]

अतीत की प्रणयकालीन स्मृतियो मे लौलिकता का सस्पर्श यत्र-तत्र मिलता है—

यथा —बिखरते स्वप्नो की तस्वीर ?
अधूरा प्राणो का सदश
हृदय की लेकर प्यासी साध
बसाया है अब कौन विदेश ?
रो रहा है चरणो के पास
चाह जिनकी थी उनका प्यार।[3]
चाहता है यह पागल प्यार
अनोखा एक नया ससार।[4]

उनके काव्य म शास्त्रीय दृष्टि से रति, विलाप, शोक और शम जैसे स्थायी भावो की प्रधानता है। इसके साथ ही सात्विक भावो के रूप म रोमाच, कम्पन, वैवर्ण्य और अश्रु तथा व्यभिचारियो के बीच ग्लानि, निद्रा, स्वप्न, उन्माद, भय, मोह, चपलता, स्मृति, वितर्क, आवेग, विषाद, निर्वेद, चिन्ता, शका, त्रास, गर्व और व्रीडा का इनकी रचनाओ म पुष्कल विनियोग मिलता है। इनके भाव दो हैं—रति और करुणा।[5]

रसिक सम्प्रदाय मे 'लगन' को भावसाधना स्वीकार किया गया है। इस

---

१ क्योकि लौकिक प्रेम के परिष्कृततम रूप मे प्रेमपात्र भी परमतत्व की अभिव्यक्ति बन जाने की क्षमता रखता है।—महादेवी साहित्य, पृ० २५२।

२ महादेवी का काव्य वैभव, डा० सुधेश, पृ० ६७।

३ नीहार पृ० ५०।

४ यामा पृ० ११।

५ कुमार विमल, पृ० १५२। (स०—इन्द्रनाथ मदान)

भाव की प्रथम उद्भावना-'विरह'-के रूप म होती है। मिलन की सम्पूर्ण सम्भावनायें 'विरह' मे ही निहित रहती है। इस 'लगन' की परणति 'प्रीति' मे होती है। 'लगन' की भावना महादेवी के काव्य मे उपलब्ध है—

१—तुम्हे बाँध पाती सपने मे ता
चिर जीवन प्यास बुझा लेती
उस छोटे क्षण अपने मे।[1]

२—सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी, प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।

सयोग की दृष्टि से महादेवी म केवल 'स्वप्नसयोग' मिलता है—

१—अश्रु मेरे माँगने जब नीद मे वह पास आया।
स्वप्न सा हँस पाया।[2]

२—बिछाती थी सपनों का जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर।[3]

जीवन की रागात्मक सत्ता का स्वीकार करत हुए, सूफी प्राकृतिक रहस्यवाद की भाँति महादेवी भी प्रकृति म उस विराट की छाया और अपनी छाया का अकन करती है।[4] और कभी 'नीर की बदली' के रूप म कभी मैं बनी मधुमास आली, 'विरह का जल जात जीवन', रात की नीरव व्यथा तुम सी अगम मेरी कहानी, प्रिय साध्य गगन मेरा जीवन के रूप मे स्वय को चित्रित करती है और कभी उस विराट सत्ता क अकन के लिए उसे 'अप्सीरी' का रूप दती है।[5] उनके रहस्यवाद की कोमलता का कारण प्रकृति ही है। प्रकृति उनके प्रियतम का सदेश दो वाली सहचरी है। अपन असाम की ओर बढती हुई महादेवी प्रकृति के कण-कण से परिचित होती है और सबके लिए 'करुणा का चन्दन' बन जाती है।

लौकिक रूपको मे प्रयुक्त प्रतीको मे उनकी काम सवेदना से कई मन स्तर दृष्टिगत होते हैं। फ्रायड न मानसिक चेतना के तीन रूपो की कल्पना की—अहम्, पराहम् और इदम् (Ego, Super Ego, Id) विवेक शून्य, दमित वासनाओ का मूलकेन्द्र है। अहम् यथार्थ से सम्बन्धित है और पराहम् जीवनादर्शों की ओर उन्मुख करने वाला है। Id और Ego का सघर्ष महादवी के काव्य म अनेक स्तरो पर परिलक्षित होता ह। इसका परिष्कार उनके गीतो म हुआ है, उनमें करुणा का

१ यामा (नीरजा) पृ० १३६।
२ नीहार पृ० २३।
३ नीहार पृ० ८।
४ यामा अपनी बात, पृ० ६।
५ यामा पृ० १३२।

विवेचन (वैर्यासिस) मानना होगा क्योंकि उनमे कलात्मक परितोष (Aristic Pleasure) उपलब्ध हैं। उनका Id प्रिय प्रिया की आखमिचौली मे रमा है और 'लिबिडो' म प्रेम, स्नेह, वेदना, निराशा, अवसाद, मान, क्षोभ, मनुहार की झलक है।

जैसे—(१) क्या आ त्रिया पाया उसको, मेरा अभिनव शृङ्गार नही।

(२) सो रहा है विश्व पर, प्रिय तारको म जागता है।

अत उनकी वदना आरोपित नही है, वह बहिर्मुखी नही, अन्तर्मुखी है, उसम अनुभूति की उष्मा है—

इन ललचाई पलको पर, पहरा था जब व्रीडा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीडा का।

उनकी अनुभूतिया सूक्ष्म और कोमल है। उनमे तीव्रता, आवेग की अपेक्षा मधुरिमा है। चिन्तनशील प्रवृत्ति के कारण उनका अहम् सघर्ष स ऊपर उठकर प्रिय मे तदाकार हो जाता है—

तुम मुझम प्रिय फिर परिचय क्या
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।

और यहीं से प्रिय की अविचल साधना उनकी सिद्धि और आत्मोपलब्धि बन जाती है।

२—निवृत्तिमूलक रहस्य भावना

महादेवी के सम्पूर्ण काव्य का साध्य है चिरतन प्रिय आर यह चिरतन ही हृदय की कोमल भावनाओ के माध्यम से कलात्मक रूप से अवतीर्ण हुआ है। लौकिक प्रतीको मे महादेवी न अलौकिक प्रिय को व्यक्त करना चाहा है। आध्यात्मिक बोध मन की सकल्पात्मक अनुभूति को बल देता है और उनके व्यथा बोध का व्यक्तिगत भूमि से उठाकर लोक मगल की उदात्त भावभूति तक ल जाता है। इसी कल्याण कामना मे ही तो उनके वन्ना गीतो का सौन्दर्य छिपा हुआ है। 'शृङ्गार करुण शात की पृष्ठभूमि मे होते हुए' इन गीतो के उत्स का कारण अनन्त और असीम सत्य का बोध ही है—'यद्यपि य मेरी सीमित वाणी स मुखरित हैं तथापि इनका मूल विराट और व्यापक है। बादल की तरह उठकर य उदात्त भाव लोक म विचरण करन वाले हैं, किन्तु धरती से इनका सम्बन्ध बराबर बना रहता है। सागर के खारे जल का मीठा बनाकर जिस प्रकार बादल पृथ्वी की प्यास बुझाने के लिये बरस पडत हैं, उसी प्रकार मेर गीत धरती की कटुता को उदात्त भावो का सस्पर्श देकर उसी के कल्याण के लिए निरन्तर प्रयुक्त होत रहते हैं—करुणा के रूप म विश्व का कल्याण करत हैं। इन्हें न तो किसी का मार्ग निर्देशन चाहिए और न पाथेय ही, क्योंकि परावलम्बी न होकर ये स्वत स्फूर्त है। जैसे विद्युत से आकाश और सौरभ से काटे, सुन्दर और

सहज बन जाते हैं, वैसे ही मेरे हृदय का करुणामय माधुर्य जीवन के दुख और पीड़ा को सहज और मधुर बना देता है।[१]

'नीहार' में उस अलौकिक अनुभूति की कुतूहल मिश्रित वेदना है, जिसमें असीम में ससीम के पर्यवसान की तीव्राकांक्षा के साथ अपना अस्तित्व रक्षा का प्रयत्न भी है। 'रश्मि' में अनुभूति से अधिक चिन्तन प्रिय हो जाता है।[२] 'नीरजा' में चिंतन और अनुभूति की प्रधानता है। अद्वैत भावना उसमें रागात्मक तल्लीनता के साथ उपस्थित है। 'सांध्यगीत' में भाव तन्मयता से भाषा मौन हो जाती है और सुख दुख में सामंजस्य का अनुभव होने लगता है। 'सांध्यगीत' में उपासना और साधना भाव चरम सीमा पर है और 'अतृप्ति' जीवन बन जाती है—

प्यास ही जीवन, सकूँगी तृप्ति में
मैं जो कहाँ।[३]

'दीपशिखा' सिद्धि और साधना का अमर गायन है। 'वेदना' का आनन्द सौन्दर्य उनके आत्मविश्वास को दृढ़ करता है और वे कहती हैं—पथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला। दीपशिखा महादेवी की आध्यात्मिक भाव व्यंजना की सशक्त पृष्ठभूमि है।

महादेवी ने रहस्य भावना के लिए द्वैत की स्थिति और अद्वैत का आभास दोनों आवश्यक माना है—'क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा अधिकार खो देता है।[४]

रहस्यवाद की पाँचों अवस्थायें महादेवी में उपलब्ध हैं—

(१) जिज्ञासा—मुस्कराया जब मेरा प्रात, छिपाकर लाली में चुपचाप
मुनहला प्याला लाया कौन ?[५]

(२) आस्था—छिपा है जननी का अस्तित्व, रूदन में शिशु के अर्थविहीन
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान, चित्र की जड़ता में लीन।[६]

(३) अद्वैत भावना—चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वर संगम।[७]

---

१ महादेवी वर्मा गीत पर्व की भूमिका।
२ महादेवी वर्मा 'यामा', पृ० ६।
३ महादेवी वर्मा सांध्यगीत, पृ० २१०।
४ महादेवी वर्मा साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० १०६।
५ नीहार, पृ० १८।
६ यामा, पृ० ८६।
७ यामा, पृ० १४१।

(४) मिलनानुभूति —पत्नी से कहना था मधुमास
बना दी मधु मदिरा का मोन।
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार।[१]

(५) विरहानुभूति —पीड़ा का साम्राज्य बस गया उस दिन दूर क्षितिज के पार
मिटना था निर्वाण जहाँ, नीरव रोदन था पहरेदार।[२]

महादेवी की आस्था जीवन के उदात्त मूल्यों, विचारों और मानव जीवन रागमय विराम में है। जीवन के प्रति आरम्भ में उनका अनुराग इन पंक्तियों में स्पष्ट है—

नई आशाओं का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन।[३]

किन्तु आगे चलकर बौद्ध दर्शन के निवृत्तिमूलक दर्शन, उसकी विराग भावना, यथार्थ बोध ने उनकी धारणा का खंडन किया—

मोह मदिरा का आस्वादन
दिया क्या है भोले जीवन
तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आस।[४]

जीवन स्वभावतः दुःखपूर्ण है। उसका संचालन उद्देश्यपूर्ण चेतन सत्ता द्वारा न होकर विवेकशून्य तृष्णा द्वारा होता है। तृष्णा के कारण मानव जीवन हमेशा दुःखपूर्ण रहता है।

शापनहावर भी कहता है—

"But the never satisfied wishes, the frustrated efforts, the hopes mercifully crushed by fate, the unfortunate errors of the whole life with increasing suffering and death at the end are always a tragedy."

जीवन और जगत के यथार्थ स्वरूप से वंचित होने के कारण हम उसके आकर्षण जाल में बंधे रहते हैं परन्तु वस्तुतः यह दुःखपूर्ण निराशापूर्ण है। 'बायरन' ने अपनी 'यूथानेसिया' नामक कविता में एक स्थल पर लिखा है— मनुष्य यदि आनन्द

१ नीहार, पृ० ९।
२ वही, पृ० १२।
३ वही पृ० ५५।
४ वही, पृ० ५६।

पूर्ण क्षणों की गणना के साथ-साथ ही दुःख और वेदना से विमुक्त दिनों की भी गणना करे तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि यदि संसार में उसका अस्तित्व ही न होता तो अधिक अच्छा होता।'

जीवन क्षणभंगुर है और इसी क्षणभंगुरता की ओर संकेत करते हुए महादेवी कहती है—

न रहता भौरो का आह्वान
नही रहता फूलो का राज्य
यहाँ किसका अनन्त यौवन
अरे अस्थिर छोटे जीवन।[१]

फिर इस नश्वर जीवन का अभिमान क्यो ? जो अंत मे सिकता में अंकित रेखा की भाँति या वात-विकम्पित दीपशिखा की भाँति क्षण भर अपना रूप दिखाकर काल-कपालो पर आँसू की बूंद की भाँति ढलक जाता है—

सिकता में अंकित रेखा सा, वात विकम्पित दीपशिखा सा
काल कपालों पर आँसू सा, ढल जाता हो म्लान।

किंतु यह निराशा की भावना स्थायी नही रह पाती क्योकि जीवन के प्रति महादेवी आस्थावान हैं और इसलिए वे मृत्यु को भी विश्व जीवन के उपसंहार के रूप, जीवन के चरम विश्राम के रूप में देखती है। जीवन की क्षणिकता को जानते हुए भी अपनी वेदना के माध्यम से इस जगत में अपना स्मृति चिह्न छोड़ जाना चाहती है। महादेवी की तुलना सागर पार के उस नाविक से की जा सकती है जो 'कुटिल काल के जालो से गरजती हुई लहरियो में मचलना भी चाहता है और उनसे हार भी नहीं मानता और इसीलिए वे सुख का स्वप्न भी देखता है—'इससे (दुःख की उपासना करने से) मेरा अभिप्राय यह कदापि नही कि मैं जीवन भर आँसू की मालाएं ही गूथा करूँगी और सुख वैभव एक कोने में बंद पड़ा रहेगा।' (रश्मि की भूमिका)

स्पष्ट है बौद्ध दर्शन के दुःखवाद को उनके हृदय मे नूतन रूप में जन्म लेना पड़ा है और इस वेदना के लिए वे अमरो का लोक भी ठुकरा देती है—

'क्या अमरो का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार।
ऐसा तेरा लोक वेदना नही, नहीं जिसमे अवसाद।

मध्ययुगीन रहस्यदृष्टियाँ और महादेवी की रहस्यदृष्टि

छायावाद में जिस नूतन आध्यात्मिक विचारधारा का जन्म हुआ, उसे ही रहस्यवाद की संज्ञा दी गयी। छायावादी कवियो ने प्रकृति के समष्टि रूप सौन्दर्य को चेतन व्यक्तित्व के रूप में दृष्टिगत किया और उसके समक्ष संवेदनात्मक आत्म-

---

१ नीहार, पृ० ५६।

निवेदन किया। छायावादी रहस्य भावना मे अध्यात्म की अभिव्यक्ति जीवन के विराट कैनवास पर हुई, जिसने वेदो एव सर्ववाद का उदात्त रहस्य भावना के साथ ही आधुनिक युगबोध स प्रेरणा ग्रहण की। तटस्थ एकात साधना की अपेक्षा जीवन और ससार की सार्थकता को स्वीकार करके इस रहस्यवाद न सास्कृतिक और वैज्ञानिक चेतना दृष्टि से स्वय का सम्पन्न किया।

यह रहस्यवाद मध्ययुगीन रहस्यवाद से प्रवृतिगत एव वस्तुगत दोनो ही आधारो पर भिन्न था। मध्ययुगीन रहस्यवाद और आधुनिक रहस्यवाद को तुलना करते हुए महादेवी वर्मा न 'साध्यगीत' की भूमिका म लिखा है—'प्राचीनकाल दशन म रहस्यवाद का अकुर मिलता अवश्य है परन्तु इसक रागात्मक रूप क लिय इसम स्थान कहाँ। आज गीत म हम जिस नय रहस्यवाद के रूप का ग्रहण कर रह है वह प्राचीनकाल की विशेषताओ से युक्त होन पर भी उन सबसे भिन्न ह।'[1] मध्ययुग का रहस्यवाद धम और भक्ति से प्रेरित रहा है आधुनिक रहस्यवाद दशन स प्रभावित है, इसके भौतिकवादी कारण भी है। मध्ययुगीन रहस्यवाद मे रागात्मक भाव का और आधुनिक रहस्यवाद मे बौद्धिक ताटस्थ्य का स्वरूप भी दिखाई देता है। मध्ययुग के रहस्यवाद पर परवर्ती बौद्ध दशन क विविध सम्प्रदायो का (सहजयान, वज्रयान, काल चक्रयान) शैव शाक्त, तान्त्रिको का, सिद्ध काव्यो का तथा सूफियो का स्पष्ट प्रभाव रहा है जबकि आधुनिक रहस्यवादी वेदान्त और प्रकृति क सम्बन्धो म अपना अस्तित्व जिज्ञासा बढाता ह। मध्ययुगीन रहस्यवाद क मूल म ब्रह्म, ईश्वर आर भगवान है जो क्रमश वेदान्त, योग और भक्ति के अनुरूप है, जबकि *आधुनिक युग की रहस्यवादी चिंता क भीतर मनुष्य क अस्तित्वबोध का, उसकी* अस्मिता का स्थान प्रमुख है। मध्ययुगीन सतो का तरह छायावादी कवि आत्मब्रह्म और आत्म-परिवार की खोज मे न जाकर विश्वात्मा तथा विश्व जीवन की खोज की ओर अग्रसर हुए। अत उनकी प्रेरणा का स्रोत मध्ययुगीन भारतीय अन्तश्चेतना (साइकी) ही न रहकर विश्वचेतना (युनिवसल साइकी) रही।[2]

छायावादी रहस्यवाद म मानवीय अस्तित्व की चिंतना का प्रकृति के मध्य उसकी नियति का, उसमे उसका क्रियाशील सस्कृति आर उसके मूल्य का स्थान उल्लेखनीय ह। प्रसाद, निराला, पत तथा महादेवी न अपनी रहस्य चिंता म मनुष्य और ईश्वर के प्रकृत सम्बन्धो का तथा ब्रह्माण्ड म मनुष्य का स्थिति स सम्बन्धित जिज्ञासाओ को रूपायित किया है। अत छायावादी रहस्यवाद न तो वैष्णवधर्मी भक्ति का आधुनिक रूप है और न ही मध्ययुगीन निगुण निराकार का तार्किक अथवा बौद्धिक मीमासा है। छायावादो मे रहस्यानुभूति का यदि किसी हद तक वाणी भी

१ महादेवी साहित्य पृ० २३८।
२ सुमित्रानन्दन पत छायावाद पुनर्मूल्याकन, पृ० १५।

मिली तो वह रहस्य-भावना मध्ययुगीन सतों की सी निषेध घोषित अनाद्रिय अनुभूति न होकर नये विश्व-जीवन तथा विश्व-चैतन्य की खोज तथा जिज्ञासा की भावानुभूति रही। मध्ययुगीन कबीर आदि के रहस्यवाद और छायावाद मे सबसे बडा और महत्वपूर्ण भेद यह है कि मध्ययुगीन रहस्यवाद लोकनिष्क्रिय तथा निवृत्तिमूलक था और छायावाद जीवन सक्रिय तथा प्रवृत्तिमूलक रहा। आत्मबोध के निर्गुण निरजन सोपान पर चढने के लिए जिस जीवन, मन, प्राण तथा राग भावना के स्तरो की मध्ययुगीन सतो ने उपेक्षा की विश्वात्मा की वैचित्र्य-भरी एकता के बोध की साधना मे तत्पर छायावादी कवि ने मानव जीवन मन, प्राण तथा राग-भावना के स्तरो को अपने नवीन प्रवृत्तिमुखी सौन्दर्य-वैभव के बोध से पुन मण्डित कर जीवन विमुख दृष्टि का व्यापक विश्व-जीवन की गरिमा की ओर उन्मुख किया।[१] इसीलिए छायावादी रहस्यवाद म मध्ययुगीन साधना-मूलकता तथा योग तान्त्रिक का कोई स्थान नही है। वह सूफियो के प्राकृतिक रहस्य-वाद स मिलता जुलता अवश्य है, किन्तु सूफियो की शरीयत, तरीकत, मारफत और हकीकत का कोई आचारमूलक भाग नही है। इश्कमजाजी और हकीकी का उतार-चढाव अवश्य है किन्तु आख्यान-दृष्टान्तो के बदले प्रगीतात्मकता है। छाया-वादी, रहस्यवादी अपेक्षाकृत अधिक आत्मपरक है वह मुक्तक-आख्यानक दृष्टान्तो म आचार-व्यवहार की परम्पराओ से भरा-पूरा नही है। मध्ययुगीन रहस्यवाद श्रद्धा और विश्वास की साधना वस्तु है किन्तु छायावादी रहस्यवाद चिन्तन, भावना, कल्पना पर आधारित है। इसीलिए प्रसाद ने काव्यावस्था के पर्याय रूप मे 'असाधारण दर्शन' को रहस्यवाद कहा और महादेवी ने 'अनुभूति निरपेक्ष' प्रवृत्ति की अनेकरूपता पर आरोपित मधुरतम व्यक्तित्व के प्रति आत्मनिवेदन को रहस्य वाद कहा। दोनो ही अर्थों मे छायावादी रहस्यवाद मध्ययुगीन रहस्यवाद से भिन्न भूमिका पर प्रस्थित है।

महादेवी की रहस्यानुभूति की तुलना मध्ययुगीन रहस्यवाद से की जाये तो स्पष्ट रूप से अन्तर ज्ञात होता है। कबीर का प्रभाव कवीन्द्र-रवीन्द्र पर स्पष्ट रूप से मिलता है। उन्होने "Hundred Poems of Kabır" नामक पुस्तक मे कबीर के रहस्यवादी पदो का सकलन किया था किन्तु प्रसाद और महादेवी पर कबीर और उनकी परम्परा का प्रभाव दिखाई नही देता। महादेवी के काव्य का उद्देश्य निवृत्ति-मूलक आत्मा-परमात्मा का मिलन नही है। साधन की अपेक्षा जागरूक सामाजिक चेतनाबोध उनकी रहस्य-दृष्टि म इस प्रकार समाहित है कि वह व्यक्तिगत प्रतीत होता है। इसीलिए शुष्क बौद्धिकता की अपेक्षा राग-विराग की उन्मत्त और आकर्षण-मय रूपव्यजना उनके काव्य मे उपलब्ध है।

---

१ छायावाद पुनर्मूल्याकन पत, पृ० १८।

सूफी कवि जायसी की रहस्य-भावनायें प्रबन्ध काव्य में पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई और महादेवी की गीतो द्वारा आत्मनिवेदन के रूप में। जायसी का रहस्यवाद साधनापरक और यौगिक क्रियाओं की ओर अधिक झुका हुआ है। उसमें एक ओर शुद्ध आत्मा-परमात्मा का प्रणय निवेदन है तो दूसरी ओर गोरखपंथी योग का शवना है। किन्तु महादेवी का रहस्यवाद भावात्मक अधिक है—'उसने पराविद्या की अपार्थिवता की वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-सूत्र भाव में बाँधकर एक निराले स्नेह-बंधन की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण आलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय मस्तिष्कमय बना सका।'[1] 'जायसी प्रेम का पुजारी था पीर का मर्मी था पर मानव के जिस सूक्ष्म स्तर में विचरण कर प्रेम के इन्द्रधनुष का महादेवी जी ने चित्रित किए हैं वहाँ निरन्तर निवास तो दूर आस्था रखने की शक्ति भी कम प्राणियों में होती है।[2]

महादेवी की रहस्यदृष्टि मध्ययुगीन दृष्टियों से भिन्न चिन्तनमय होते हुए प्रेम, करुणा, त्याग की मानवीय सात्विक वृत्तियों को अपने में सजोये हुए है।

महाकवि रवीन्द्रनाथ की रहस्य भावनाओं की विराट पटभूमि 'गीतांजलि' में उपलब्ध है। किन्तु उनकी रहस्य दृष्टि महादेवी से सर्वथा भिन्न है। रवीन्द्रनाथ की रहस्यभावना प्राचीन भक्ति से भिन्न मात्र दिव्य-रति या अनुरक्ति है जो अपने मूल में प्रेमपरक है और वे इस अनुरक्ति भावना को ईश्वर के साथ विभिन्न सम्बन्धों के रूप में व्यक्त करते हैं—प्रभु, सखा, माता, पिता आदि सभी रूपों में उनकी प्रेम-भावना अभिव्यक्त हुई है किन्तु महादेवी में इन सम्बन्धों का अभाव है और मात्र एक माधुर्यपूर्ण प्रणय सम्बन्ध ही दृष्टिगोचर होता है क्योंकि हृदय के अनेक रागात्मक सम्बन्धों में माधुर्य भाव-मूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुँच सकता है जो सब रेखाओं में रंग भर सके सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्मनिवेदक को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके। (दीपशिखा, पृ० २२) विश्व के प्रति जितनी मोहदृष्टि रवीन्द्र की है उतनी महादेवी की नहीं। मृत्यु के प्रति दोनों की दृष्टि अनुरागमयी है। जितने विविध भावों की अभिव्यक्ति गीतांजलि में हुई, उतनी महादेवी के काव्य में नहीं किन्तु गीतांजलि' में भावों के तारतम्य का अभाव है और महादेवी में यह तारतम्य उपलब्ध है। 'गीतांजलि' में भक्त की उपासना दृष्टिगत होती है जबकि महादेवी का काव्य प्रणय की माधुर्यपूर्ण भावव्यंजना है। रवीन्द्र का काव्य यदि आनन्द का जयगान है तो महादेवी का वेदना का।

---

१ महादेवी साहित्य सं० ओंकार शरद, पृ० २३८।

२ महादेवी का रहस्य साधना विश्वम्भर मानव पृ० २३८।

यदि महादवी की तुलना मध्ययुगीन कवयित्री मीरा स की जाय तो लगेगा कि मीरा की तरह निर्गुण और सगुण साकार की समूची परम्परा उनकी कविताओ म सुरक्षित है। आचाय न ददुलारे बाजपेयी ने महादेवी और मीरा की तुलना करते हुए लिखा है-'मीरा और महादेवी के काव्य आधार बहुत अशा मे एक-सा है किन्तु ये दोना दो युगो की सृष्टियाँ हैं। अपने-अपन युगा के अनुरूप इन दोना का काव्य व्यक्तित्व है। मीरा का काव्य नैसर्गिक भावोद्रेक का नमूना है। वह अलौकिक प्रेम और विरह से भीगे हुए हृदय का उद्गार है। इसम काव्यकला की बारीकिया हम नही मिलती, मूर्तिमान विरह की तडप और मिलन के स्वप्न सुन पडते हैं महादेवी म अनुभूति की सच्चाई और गहराई है किन्तु व काव्य-कला म सजकर आई है।'[1]

उनका प्रियतम सगुण साकार की भूमिका मे निगुण निराकार की निस्सीम भूमिका का प्राप्त हो जाता है। इतना होन हुए भी महादेवी की काव्य-दृष्टि भक्तो जैसी नही है। मध्ययुगीन भक्तो मे पूण समर्पण है। महादेवी म अह सुरक्षा की प्रबल इच्छा बल्कि महादवी इस सगुण निगुण भाव की आधार-भूमि पर अपन अह का, अपन व्यक्तित्व को परिवर्तित, सवर्धित, परिमार्जित करती है। अत महादेवी की रहस्यानुभूति मीरा की अपेक्षा अधिक विशद, गहन, तत्वावेषी है और अधिक स्वस्थ धरातल पर है।

यदि महादेवी की रहस्यानुभूति का प्लेटानिक विचारधारा के अन्तगत रखें और शेली की रहस्यदृष्टि स तुलना करे तो लगेगा कि महादवी की कविता के व्यक्त आधारा के पीछ वह विचार है जो ईश्वर की सत्ता के प्रामाणिक रूप मे होने का द्योतक है। इसीलिए महादेवी का रहस्यदृष्टि प्लेटानिक रहस्यदृष्टि से मिलती-जुलती है। वह छाया प्रकाशात्मक है जिसम नानातीत तार्किको की रचना होती है जिसमे अज्ञेय और अन त का मूर्तिकरण होता है। जिसम Absolute और Infinite का प्रकाशन हाता है जिसमे इस उदात्तीकृत अहम् (Ego sublimation) भी कहा जा सकता है। महादेवी ने अपने रचना-सस्कारा मे अपने सस्कार रूप अहम् का अथवा व्यक्तित्व का दशन द्वारा अभिव्यक्ति दी है, यद्यपि इसके मूल म शान्तरसोन्मुख भाव निहित है जो विरागात्मक है और जिसमे लौकिक भोग का निषेध है। जहा तक रहस्यानुभूति के कलात्मक उत्कर्ष का प्रश्न है, रचनाशिल्प का प्रश्न है, महादेवी ने दशन को ललित अथवा अलकृत करने का प्रयास किया है और दशन जब ललित हो जाता है ता कविता जावन की अस्तित्व निर्धारक समस्याओ से मुक्त हो जाती है।

आधुनिक हिन्दी कविता मे वेदना भाव के विविध रूपो और शैलियो का सयोजन तथा महादेवी का वैशिष्टय निरूपण—
(अस्तित्ववादी वेदनादर्शन से तुलना)

छायावाद के पश्चात् उत्तर छायावाद का प्रारम्भ सन् १९३७ से स्वीकार

---

१ आधुनिक रचना और विचार आचार्य न ददुलारे बाजपेयी, पृ० १९० ।

किया जाता है। जिसमें एक ओर बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, शम्भुनाथसिंह, गिरजाकुमार माथुर, दिनकर, अज्ञेय जैसे कवियों की रचनायें वैयक्तिक भूमिका पर मुखरित हैं, दूसरी ओर विषमताओं, सामाजिक यथार्थता के रूप में उपलब्ध होती हैं जो छायावादी संस्कारों से युक्त होते हुए भी युग के नूतन स्वरों से मण्डित हैं। सन् १९३० के बाद द्वितीय महायुद्ध की विषमता, अशांतिपूर्ण वातावरण समाज के व्यक्तिमानस को उत्तर छायावाद ने अभिव्यक्ति दी। जहाँ एक ओर बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', रामनाथ 'सुमन' जैसे कवि अपनी भावाभिव्यक्ति में स्पष्ट रूप से पश्चिमी प्रभाव से मुक्त हैं, वहीं प्रगतिवादी, प्रयोगवादी कवि पश्चिम के अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद, अतियथार्थवाद, प्रतीकवाद जैसे साहित्यिक आन्दोलनों से प्रभावित हैं। व्यक्तिगत प्रवृत्ति में यदि उनके काव्य में सारे समाज को चुनौती है तो दूसरी ओर व्यापक अनास्था, पीड़ा और अकेलेपन की भावना में वे पश्चिम के युद्धोत्तर कवियों से साम्य रखते हैं। भौतिकवादी दृष्टिकोण ने कवि मानस को ईश्वर की कल्पना से वंचित कर दिया, फलस्वरूप वह अपनी आत्म सुरक्षा के लिए अधिक आत्मनिष्ठ होता गया।

उत्तरछायावादी युगीन कवियों में बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, रामनाथ 'सुमन', तारा पाण्डेय आदि कवियों की वेदना यद्यपि व्यक्तिगत थी किन्तु उन्होंने अपनी वेदना को रहस्यवादी भावनाओं के रूप में भी व्यक्त किया। इन कवियों के सम्मुख उनकी आत्मपीड़ा और जग की पीड़ा दो भिन्न रूपों में सामने आयी और उन्होंने इन दोनों पीड़ाओं को एक-दूसरे में विलय करने की अपेक्षा अलग अलग रूपों में अभिव्यक्ति दी।

'बच्चन' इन कवियों में प्रमुख हैं जो न तो पुरातनता का मोह छोड़ पाते हैं न नूतन का पूर्णत: ग्रहण। जीवन को खुले तौर पर भोगने का साहस उनमें नहीं है। वे ऐसी निराधार स्थिति में खड़े हैं जहाँ रात्रि का गहन अंधकार है जहाँ वह जोर-जोर से गाकर स्वयं को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वे भयभीत नहीं हैं। यह द्वन्द्वमय मन:स्थिति बच्चन के सम्पूर्ण काव्य में दृष्टिगत होती है। महादेवी वर्मा और निशा-निमन्त्रण के कवि के जीवन-दर्शन में यही अन्तर है, जहाँ महादेवी की वेदना प्रधान अध्यात्मसूक्ष्म कल्पना जीवन की प्रेरणा देती है, वहाँ बच्चन की वेदना निराशा के आधिक्य में कटु और विषादमय हो जाती है। महादेवी की वेदनापरक रहस्य-भावना संशयरहित है, आत्म-विसर्जन का भाव लिए वे लिखती हैं—

मेघ सी घिर चली है,
भीति का यदि मिट चली
नभ से ज्वलित पग की निशानी,
प्राण में रुके हरी है

पर सजल मेरी कहानी,
प्रथम जीवन के स्वयं मिट
आज उतरकर चली मैं,
मेघ सी घिर चली हूँ ।[१]

वही बच्चन भाग्यवादी रूप मे निराशामय भावना व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

मनुज के अधिकार कैसे।
हम यहाँ लाचार ऐसे,
कर नही इकार सकते, कर नही सकते वरण भी
स्वप्न भी छल, जागरण भी।
जानता यह भी नही मन—
कौन मेरी थाम गर्दन
है विवश करता कि कह दू, व्यर्थ जीवन भी, मरण भी
स्वप्न भी छल, जागरण भी।[२]

महादेवी जीवन के प्रश्नो का उत्तर देकर, अपने व्यक्तित्व को समष्टिगत करुणा मे लीन करती है अत विषाद और पाश्चाताप की भावना का उनमे अभाव है। इसके विपरीत बच्चन के काव्य म भाग्यवाद स देह और मृत्यु की भयानकता उनकी भावनाओ को निराशामय और विषादमय बना देती है। बच्चन के काव्य को इन निराशापरक भावनाओ के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी उनका व्यक्तिगत कारण रहा। प्रारभिक रचनाओ के पश्चात् उमरखैय्याम के प्रभाव ने इनके मन के नैराश्य को एक नूतन मोड प्रदान किया जो एक ओर 'अनत तृषा' और 'क्षणिक तृप्ति' मे आत्मसुख पाने का प्रयास करता है तो दूसरी ओर सूफियो की भाति ईश्वर को हाला और स्वय को प्यासा प्याला मानता है—

प्रियतम तू मेरी हाला है
मैं तेरा प्यासा प्याला।[३]

वस्तुत छायावाद अपने व्यापक सर्वात्मवादी या विश्वव्यापी दृष्टिकोण मे जिस प्रकृति के जीव व्यक्ति को भूल गया था बच्चन के काव्य ने उसके सुख दुख की प्राणिक सवेदना को वाणी देकर छायावाद द्वारा उपेक्षित हृदय के कोने पर उस व्यक्तिगत, स्वच्छद भाव मुक्ति की प्रतिमा को स्थापित किया। यद्यपि कही-कही वह सामाजिक

१ दीपशिखा, पृ० २८।
२ निशा निमत्रण पृ० ३०, १९६७।
३ मधुशाला रुबाई ३।

चेतना के अन्तगत जीवन के वैशम्य को भी चिन्तन सशक्त वाणी देने का प्रयत्न करता है।[१]

रामनाथ 'सुमन' का रहस्यवाद आध्यात्मिक प्रणय की वेदना पीडा और आत्म-विसर्जन की दु खात्मक अनुभूतिया तक सीमित है। जीवन और जगत के प्रति उनका दृष्टि भी निराशावादी है।

डा० रामकुमार वर्मा के रहस्यवादी गीता म दु खात्मक अनुभूतिया और वेदना की निराशापूण अभिव्यक्ति है और उसी मन स्थिति मे वे आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होकर रहस्यवादी भावा की व्यजना करत हैं। उत्तर छायावादा काव्य म जीवन और जगत की अनित्यता, मरणशीलता का भाव निहित है। कुछ कवियो न जैसे दिनकर ने अपने काव्य जीवन सगीत और परदशी' म इस अत्यधिक मह व दिया। (जहां इनमे व्यक्तिगत चेतना प्रमुख है)।

महादेवी का रहस्यवाद इन कविया के रहस्यवाद से भिन्न भूमिका पर प्रतिष्ठित है। महादेवी की रहस्यदृष्टि रूप वस्तु दोना ही स्तरा पर पूणतया छायावादी है। वस्तु जगत का सूक्ष्म और सारतत्व उनकी भावसत्ता म घुलकर गीता के रूप मे व्यक्त हुआ है जो पूणतया छायावादी है। अध्ययन के स्तर पर वह रहस्यमय है परन्तु अनुभूति क स्तर पर नहीं। उनकी रहस्यभावना म काव्य का सम्पूण सतरगा वातावरण, कल्पना की चित्रोपमता और भावना की गहनता विद्यमान है। महादेवा म रहस्यवाद काव्य का गुण न होकर आत्मा का गुण बनकर आया है। यथा--

जो न प्रिय पहचान पाती
किसलिए पावक हृदय मे
प्राण म चातक बसाती।[२]

इसके विपरीत छायावादोत्तर व्यक्तिवादी कविता मे रहस्यवाद का पुट बना रहा है जिस पर पश्चिमी अस्तित्ववाद की स्पष्ट छाप है। पश्चिम का अस्तित्ववाद भी निराशा और वेदनामूलक है। उसके मूल म शापेनहावर और नीत्शे की दुखान्त-दृष्टि व्याप्त है जिसे पश्चिम मे विघटित जीवन का परिणाम कह सकते हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् पश्चिम के जीवन का रागात्मक उल्लास समाप्त हो गया और अस्तित्वचिन्ता प्रमुख हो गयी। जब कभी सस्कृति के अस्तित्व की चिन्ता प्रमुख हो जाती है तो मनुष्य का विचारधारा म वेदना और निराशा का आधार भी स्पष्ट रूप से उभरकर आने लगता है। विज्ञान के उदय के पूव यूरोप म ईसाई धम एकमात्र धम था। विज्ञान ने यह सिद्ध किया कि यह विश्व जड भौतिक नियमा, भौतिक पदार्थों द्वारा रचित हुआ है। किसी स्रष्टा द्वारा उसका निर्माण नही हुआ है, इसका

१ छायावाद पुनमूल्याकन सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ११५।
२ दीपशिखा, पृ० ९६।

कोई अंतिम लक्ष्य नहीं है और जब ईश्वर पर से विश्वास हट जाता है तब नैतिकता को विधान का आविष्कार माना जाता है और वह हमारी रुचियों अरुचियों की अभिव्यक्ति बन जाती है। अच्छा वह होता है जो हमारी इच्छाओं को संतुष्ट करे, बुरा वह होता है जो हमारी इच्छाओं को कुण्ठित करता है और हमारे स्वार्थ का विरोध करता है।[1]

शापनहावर और नीत्शे की वियोगात्मक और निराशावादी दृष्टि ने आधुनिक युग के अस्तित्ववाद की बुनियादी नींव डाली, जिसकी दो प्रमुख शैलियाँ थीं—(१) आस्तिक अस्तित्ववाद जिसे ईसाई धर्म प्रेरित अस्तित्ववाद भी कह सकते हैं। (२) नास्तिकता-मूलक अस्तित्ववाद—जिसमें ईश्वरीय चिंता की जगह मनुष्य की चिंता केंद्रिय रही है।

शापनहावर आधुनिक मानव मूल्यों के विघटन के सर्वप्रथम उद्‌गाता थे। स्वच्छन्दतावादी काव्य में जिस मृत्युचर्या, पलायन अथवा संसार की प्रतिकूलता की अनुभूति, आत्मरति की भावनायें अभिव्यक्ति हुईं, उनकी पीठिका शापेनहावर के विचारों से तैयार हुई। शापनहावर ने बताया कि संसार अनिवार्यत बुरा है। संसार हमारी समस्त इच्छाओं की पूर्ति नहीं करता। इच्छाएं अनन्त हैं किन्तु उसकी पूर्ति के साधन सीमित हैं। पीडा ही संसार की मुख्य वस्तु है सुख पीडा के निषेध का नाम है। संसार इसलिए बुरा है क्योंकि वह व्यक्ति को सदैव दुःखी और पीडित बनाए रखता है। जीवन तो जन्म से मृत्यु तक दुःख का एक असह्य कारण है, जिस पर व्यक्ति मृत्यु से भयभीत होकर धर्म की शरण में आता है। उसी प्रकार वह दुःख से बचने के लिए पागलपन का सहारा लेता है। प्रमत्तता दुःख की चेतना को भुलाने का एकमात्र पथ है। इसीलिए शापेनहावर समझता है कि जीवन मिथ्या है और मृत्यु सबसे बड़ा वरदान है।[2] नीत्शे ने ईश्वर की हत्या घोषित करके मनुष्य की आत्मा को इस ब्रह्माण्ड में भटकने की स्थिति में ला दिया। स्टेटान दृढतापूर्वक कहता है कि ईश्वर के लिए सिर्फ एक ही बात कही जा सकती है कि उसका अस्तित्व नहीं है।[3] आधुनिक रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा का विच्छेद और आत्मा का भटकन ही दिखाई देता है। वह एक ऐसी असहाय अवस्था में था, जहाँ न उसके पास परम्परागत धर्म था न आदर्श, न वह भौतिकता जो पूर्वयुगों में उसे रचना और विकास के लिए प्रेरित करती थी। इन्द्रियातीत जगत का सम्पूर्ण निषेध करने के पश्चात् मनुष्य केवल

१ आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान—डा० नरेन्द्रदेव वर्मा, पृ० ९, प्र० स० १९७१।

२ आ० पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान—नरेन्द्रदेव वर्मा, पृ० १३।

३ आधुनिक युग में धर्म डा० राधाकृष्णन, पृ० ३२।

मनुष्य रह जाता है। एक अनन्त अंधकार मे घिरा हुआ मनुष्य जहाँ अपने कार्यों के परिणामो का उत्तरदायित्व स्वय उस पर ही है।[1]

आत्मा और परमात्मा का विच्छेद और आत्मा की भटकन का नये काव्य और कलाओ मे जैसा स्थान मिला है वह एकदम छायावादी शैली का नहीं है। छायावाद म ईश्वर है, उसकी हत्या नही हुई। वह आत्मा का प्रेरक और सरक्षक है उसी आस्था के साथ छायावादी रचनाकार समूची प्रकृति म उनकी व्याप्ति देखता है, अपने व्यक्तित्व को उसम प्रक्षेपित करता है। उत्तर छायावाद की आत्मा अस्तित्ववादी दृष्टि मे भटकाव, बेचैनी, व्यक्तित्व का विघटन, उसकी अनास्थामूलक, असाधक दृष्टि की देन है। अनन्त अंधकार के बीच पगु, साहस और धूमिल चरणो स वह इस अकेलेपन को भोगता है। जबकि छायावाद जीवन को असार्थक नही मानता, छायावादी दृष्टि मे एक तात्विक मूलक सोद्देश्यता है। छायावाद न being को और अस्तित्ववाद ने Nonbeing को व्याख्यायित करने की कोशिश की है। इस प्रकार हम छायावादी और अस्तित्ववादी दृष्टि का अ तर देख सकते हैं।

किन्तु यह द्रष्टव्य है कि अस्तित्ववादी दशन मे रहस्यवाद एक प्रमुख धारा नही है। वह तो प्रसगवश विशष रूप से ईसाई धर्म से प्रेरित अस्तित्ववाद म दिखाई देती है। जिसके जन्मदाता कीर्केगार्ड और ग्रेबियल मार्सल हैं। कीर्केगार्ड का दशन ईसाई धार्मिक मान्यता से बहुत अधिक प्रभावित था और उसके चिन्तन के चरमबिन्दु पर ईश्वर का अधिक युगो पुराना आस्थागत सम्प्रत्यय प्रतिष्ठित था।[1] अत छायावादी रहस्यवाद और ईसाई धर्म प्रेरित रहस्यवाद की तुलना ही सभव है।

जहा तक छायावादोत्तर कविता के रहस्यवाद का प्रश्न है—चूकि रहस्यवाद एक अमूत, अज्ञेय और अनन्त की भावना हुआ करता है अत छायावाद और अस्तित्ववाद की इस रहस्यात्मक अनुभूति म आदशवाद का सधान करना होगा। जब तक हम इस Idealism को केन्द्रीय स्थिति मे नही रखेंगे। तब तक छायावादी और अस्तित्ववादी रहस्यवादी जिज्ञासाओ का सधान नही कर सकेंगे। अज्ञेय, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुवरनारायण आदि की कविता म एक प्रत्ययमूलक आदशवाद का पुष्ट आधार दिखाई देता है जो इह छायावादी रहस्यवाद के निकट ले जाता है।

अज्ञेय अस्तित्ववाद और बौद्ध एव औपनिषदिक चि तन दोनों ही विचार-धाराओ से प्रभावित है। 'आगन के पार द्वार' की अधिकाश कविताएँ एक आध्यात्मिक सवेदना से सम्पृक्त है जिसकी पृष्ठभूमि म औपनिषदिक बौद्ध एव ईसाई चिन्तन है। बौद्ध धर्म करुण भावना और शाति का दूत है व ईसाई चिन्तन भी इन्ही धारणाओ पर आधारित है। मास्स की प्यार की धारणा (Conception of Love) का मिलाप

१ अस्तित्ववाद और नयी कविता, पृ० ४१।

सहज ही इस करुण-भावना के साथ हो गया। अत जब चैतनिक स्तर पर अज्ञेय को औपनिषदिक एव बौद्ध शून्यवादी विचार पद्धतियो ने प्रभावित किया तो उसमे भी करुणा का समावेश हो गया। इसी कारण अज्ञेय काव्य म जिस 'सून विराट' की सृष्टि हुई उसम सात्र के 'न कुछ' का भय व छटपटाहट नही ह—यह करुणामय विराट को पूर्व की निजी विशेषता है जिसमे यास्पस का Transcendent भी घुल मिल जाता है।[1]

अज्ञेय का आध्यात्मिक स्वर मानवीय अस्तित्व का गरिमा प्रदान करता है और अपनी इन्ही विचारधाराओ स वे छायावाद के निकट आ जात हैं। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' तथा 'आनन के पार द्वार' मे उनका काव्य चैतन्य छायावादी चैतन्य के अत्यत निकट आ गया है। बल्कि छायावादी चैतन्य-बोध को ही उन्होंने अनेक अन्य नये कविया की तरह नयी कविता की शिल्पकला के लिबास म प्रस्तुत किया है। स्तर उसका वही है दृष्टि वैचित्र्य अज्ञेय का अपना है।[2] यदि अस्तित्ववादी नियतिवादी 'नदी के द्वीप' की धारणा उनम मिलती है, जो ह्रासयुगीन स्वर है तो 'इद्रधनु रौंदे हुए' के अन्तर्गत 'सतु' जैसी व्यापक जीवनदृष्टि भी मिलती है जो मूल्यबोध की दृष्टि से बिलकुल ही छायावादी सर्वात्मवाद की भूमि की ही उपज ह।[3]

धर्मवीर भारती का 'अधायुग' मूल्य का दृष्टि से छायावादी प्रकाशबोध का अधकार की चेतना के कला-शिल्प द्वारा प्रस्तुत करने मे सफल हुआ।[4] कुवर नारायण, शमशेर और नरेश महता म अमूर्त भावबोध, सूक्ष्म व्यजना भगिमा, अन्तर्मुखी अनुभूति आदि उन्हे छायावादी रहस्यवादी वेदना के समीप ले जाती है और इसलिए अज्ञेय छायावादी कवियों के स्वर म स्वर मिलाते हुए कहते है—जीवन का आतरिक गहराई स ग्रहण कर लेने के कारण इन कविया ने वेदना और दु ख को आत्मान्वेषण का और उसके माध्यम से आत्मोपलब्धि का कारण माना है। यह दु ख सबको माजता है। अत उससे बचने की आवश्यकता नही वरन् इस स्वीकार करना ही वास्तविक जीवन है। यह वेदना का कोर ही मानव के हृदय का आलोक है जिससे उसका चेतना की नदी *गतिशील रहती है, कुण्ठित नही होती।*[5]

यही उत्तर छायावाद के ये कवि महादेवी के रहस्यवाद के निकट आ जाते हैं किन्तु महादेवी के रहस्यवाद म अतर्भूत आदर्शवाद, दर्शन, अध्यात्म अतीन्द्रिय मन स परे बुद्धि म सत्य को स्थापित करने का चरम लक्ष्य, स्थूल से सूक्ष्म की ओर झुकाव,

---

१ अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ० ५६-५७।

२-३ छायावाद पुनर्मूल्याकन सुमित्रानन्दन पत, पृ० १२४-१२६।

४ छायावाद पुनर्मूल्याकन सुमित्रानदन पन्त, पृ० १२४।

५ बावरा अहेरी वेदना वही की धार—अज्ञेय, पृ० १७५।

काव्यानुभूति की अलौकिकता को मानवीय धरातल पर ग्रहणीय बनाने की चेष्टा द्रष्टव्य है। उनमें लौकिक प्रेम, जीवन-जगत की जिज्ञासा, वेदना का रहस्यात्मक और दार्शनिक रूप होते हुए 'अहं सुरक्षा' की भावना प्रबल है। जो उन्हें अस्तित्ववाद के निकट ले जाती है। महादेवी की यह भावना आधुनिक नारी की विशिष्टता को व्यक्त करती है। जो व्यक्तिगत अहंकार से ज्यादा जातीय स्वाभिमान है। एकाकीपन, अकेलापन उत्तरछायावादी कविता का प्रमुख विषय है किन्तु महादेवी में यह बोध भी अनुभूति विशिष्ट है।

उस सोने के सपने को देखे कितने युग बीते
आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसाकर रीते
अपने इस सूनेपन की मैं हूँ-रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती रखवाली।

उनका यह सूनापन आंतरिक रागात्मक चेतना में बद्धित है जो व्यापक मानवतावादी पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखता है—

चिन्ता क्या है हे निर्मम बुझ जाय दीपक तेरा
हो जायगा तेरा ही पीडा का राज्य अंधेरा।

महादेवी ने एक स्थान पर कहा है—उनकी कविता में चाहे नवीन प्रभात के वैतालिकों का स्वर न हो, परन्तु उनकी यह दीपशिखा की लौ रात की सघनता को नष्ट करने में अवश्य समर्थ है। रात्रि के तम की समाप्ति की घोषणा कर महादेवी अपने काव्य की मानवतावादी भूमिका को मजबूत करती है। आस्थावान रहस्यवादी में निराशा के स्वर नहीं आश्वासन की गूंज होती है—

Blessed are they that weep, for they shall be comforted

इसीलिए महादेवी का काव्य युग-युगीन अनादि संघर्ष की प्रक्रिया में 'पाथेय दीप' का कार्य करता रहेगा—

दूसरी होगी कहानी, शून्य में जिसके
मिटे स्वर धूलि में खोई निशानी
आज जिस पर प्रलय विस्मित
मैं लगाती चल रही नित
मोतियों का हार और चिनगारियों का एक मेला।

———

उपसंहार

आधुनिक भारत में पुनजागरण की बहिर्मुखी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग मे और अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ छायावाद मे व्यक्त होती है। जहा द्विवेदीयुग समष्टिमूलक, मानवतावादी, आदर्श की काव्य मान्यताओ से ओतप्रोत रहा है, वही छायावाद व्यष्टिमूलक, मानवतावादी काव्य चिंतन का प्रस्थापक रहा है।

छायावाद म व्यष्टिमूलक जीवन के 'सूक्ष्म किन्तु व्यक्त' आधारो की ललित अभिव्यक्ति हुई है। पश्चिम के स्वच्छदतावादी दर्शन म तथा काव्य और कलाओ मे 'व्यष्टि' तत्व रूप है, वह केन्द्र मे है, उसी का अनुमुखी विकास होता है। स्वच्छदतावादी-छायावादी कविता म तत्व रूप व्यष्टि अर्थात् प्रकृति और जगत के विविध रूपो और व्यापारो का व्यष्टियन होता है, समूचे जागतिक व्यापारो का सश्लिष्टीकरण होता है—और वे आत्मरूप हो जाते हैं। यह सब कुछ प्रक्षेपण पद्धति से होता है। इस तरह स्वच्छदतावाद और छायावाद म मानवीय आत्मा के सूक्ष्म और विराट, लघु और विस्तृत फलको का स्पष्टीकरण हुआ है।

पश्चिम के विद्वानो ने स्वच्छदतावादी विचार दर्शन मे कल्पना तत्व को प्राथमिकता दी है। यह कल्पना तत्व सृजनधर्मिता का पर्याय है। चूकि सृजन आकारविहीन नही होता, इसलिए कल्पना के सृजन तात्विक और रूपतात्विक अनुपगो का विशद विवेचन हुआ है। जब स्वच्छदतावादी कल्पना तत्व पर फिक्टे, श्लेगल, हीगल, वर्ड्सवथ, कालरिज, शेली के विचार प्रयोगो को देखते हैं तथा वेद और उपनिषदो के ऋषियो की कल्पना को देखते हैं तो लगता है कि समूची वेदान्तिक कल्पना की प्रकृति स्वच्छदतावादी रही है। पश्चिम की त्रासदी और भारत के आनन्दवाद दोनो की दार्शनिक विवृत्तियो मे कल्पना तत्व का व्यापक समाहार दिखाई देता है। दोनो म मनुष्य और समूचा सृष्टि के परिवेश का सम्बन्ध योग बनता है, दोनो म धाराओ अन्तर्धाराओ का एकीकरण होता है। उक्त प्रकार के लयात्मक सयोग म व्यष्टि अपनी चेतना या आत्मा के स्तर पर अखण्ड हो जाता है। इस तरह स्वच्छदतावादी व्यष्टि मे दृष्टि अत्यत गभीर और व्यापक है।

स्वच्छन्दतावादी-छायावादी कविता का वस्तु पक्ष विरल नही है। स्वच्छदतावादी उपन्यासो म, कहानियो म, नाटको मे सामाजिक जीवन के द्वन्द्वपूर्ण परिवेश का चित्रण हुआ है, उनमे समाज की सामयिक समस्याओ का समाधान भी होता है। अन्तर यह है कि स्वच्छन्दतावादी रचनाकार समस्याओ के सामयिक एव यथार्थ कारणो का दार्शनिकरण कर देता है और इस तरह उसकी निष्पत्तियाँ अपेक्षाकृत

अधिक आदर्शवादी हो जाती हैं। ऐसा वह इसलिए करता है क्योंकि वह सामयिक और यथार्थ की कटी हुई विभक्त दृष्टि को स्वीकार नहीं करता। वह उसमें नैरन्तर्य लाता है और इस तरह वह उसे अतीत, वर्तमान और भविष्य की चेतना से जोड़ देता है, उसे इतिहास दर्शन की पीठिका में प्रस्तुत करता है।

स्वच्छंदतावादी रचनाकार अर्थ संश्लेष को उसके जैविक रूपों में उपस्थित करता है। इसीलिए स्वच्छंदतावादी रचना आत्मपूर्ण जैविक ईकाई के रूप में होती है। पश्चिम और भारत के समीक्षक स्वच्छंदतावाद और छायावाद का अध्ययन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि स्वच्छंदतावादी रचनाशिल्प और उसके उपकरण जैविक चेतना सम्पन्न इकाई के रूप में होते हैं। वे अन्तरंग लयों से बँधे होते हैं और इस निबंधन का कार्य रूपविधायक कल्पना से होता है। स्वच्छन्दतावाद में रूप और वस्तु के भेद का कोई स्थान नहीं, दोनों में से किसी एक को प्राथमिक नहीं माना जा सकता। अनुभूति और अभिव्यक्ति के अद्वैत सम्बन्धों पर ही स्वच्छन्दतावादी दृष्टि आधारित है।

प्रगतिशील समीक्षक डा० रामविलास शर्मा ने छायावाद की अधिकतम विशेषताओं को महादेवी की कविता में घटित करते हुए कहा है कि छायावादी सौंदर्य चेतना के जितने गुण महादेवी में है उतने अन्य रचनाकारों में नहीं। व्यष्टियन का जितना सफल रूप महादेवी में है, दूसरों में नहीं, आकृति सौष्ठव की जितनी बारीकी महादेवी में है, उतनी अन्यों में नहीं। महादेवी की कविता के केन्द्र में है—मानवीय दुःख, पीड़ा, वेदना और करुणा। पीड़ा और वेदना का यह संसार निषेधात्मक नहीं है। इसकी दार्शनिक, सैद्धांतिक भूमिका स्पष्ट है। नये रचनाकारों में जो पीड़ा, संत्रास दिखाई देता है वह नकारात्मक है, उत्तेजनाप्रद है और उसकी कोई सैद्धांतिक विचारधारा नहीं है। महादेवी ने दुःख, वेदना और करुणा के लौकिक और आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्यों को स्पष्ट किया है। महादेवी की समूची कविता का परिप्रेक्ष्य सुस्पष्ट है, जिसमें इनकी वेदना को अर्थ मिल सका है।

महादेवी की दीर्घकालिक रचना यात्रा में अनेक पड़ाव दिखाई देते हैं। उन्होंने आधुनिक जीवन की समस्याओं पर प्रौढ़ गद्य लिखा है तथा जीवन की शाश्वत समस्याओं पर पद्य लिखा है जिसमें युगयुगीन भारतीय संस्कृति की दार्शनिक, मनो-वैज्ञानिक और नैतिक अवधारणाओं को प्रक्षेपित किया है। इसीलिए उनकी प्रत्येक रचना में प्रकृति और मनुष्य के निरन्तर विषम होते हुए सम्बन्ध योगों की आत्मपरक अभिव्यक्ति हो सकी है।

महादेवी का समूचा काव्य आस्तिक संस्कारों का काव्य है, आस्थामूलक काव्य है लेकिन यह आस्तिकता और आस्था मध्ययुगीन श्रद्धा और भक्तिभाव से भिन्न है। महादेवी ने आस्था और अस्तित्व की समस्याओं का विवेकीकरण कर दिया है, बौद्धिकरण कर दिया। इसीलिए निर्गुण और निराकार के प्रति उनका समर्पण बौद्धिक

जिज्ञासाओं का समर्पण है। ईश्वर के प्रति गहरी आस्था और समर्पण का यह रूप गुणात्मक दृष्टि से मध्ययुगीन भक्ति कविता से भिन्न है तथा आधुनिक युग की अनुभववादी दार्शनिक जिज्ञासाओं के अनुकूल है।

महादेवी का रहस्यवादी अध्यात्म दर्शन आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों मे स्पष्ट होता है किन्तु इस सम्बन्ध योग की रचना मनुष्य और प्रकृति के बहुल रूपों मे हुई, यह सर्वात्मवादी है फिर भी महादेवी ने इन सम्बन्ध रूपों मे मानवीय बना दिया है। निर्गुण और निराकार को मानवी व्यापार मे रूपान्तरित कर देना निश्चय ही दुरूह कार्य है। जिस रचनाकार को शब्द और अर्थ की जितनी गहरी पहचान होगी, ध्वनि या व्यजना पर जितना अधिकार होगा वही इसका निर्वाह कर सकता है। इस दृष्टि से महादेवी अत्यत सफल रचनाकार है। उनकी प्रत्येक रचना में अन्तग्रथित सवेदना व्यापार की सुडौल और सुव्यवस्थित आकृति बनाती है। महादेवी की रचना मे शोक के नैसर्गिक रूप से छदमय हो जाने की अवस्थाएँ स्पष्ट हो सकी हैं। वे वेदना की आवृत्तिमूलक अभिव्यक्ति कर सकी हैं। इसीलिए शब्द बिम्ब, पक्ति बिम्ब और पद बिम्ब के अनेक रूप दिखाई देते हैं।

हिन्दी की नई कविता मे अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव है। उसमे व्यक्ति की अस्मिता को, उसकी नियति को निर्धारित करने का प्रयास हुआ है। मनुष्य के 'होने और निरन्तर बने रहने की' आत्मपरक व्याख्यायें की गयी हैं साथ ही उसकी 'क्षणभगुरता' पर सशय भी प्रगट हुआ है। आज का मनुष्य अपने बाह्य परिवेश से कटा हुआ, एकाकी और अजनबी सा है, वह अपनी सोद्देश्यता खोजता है लेकिन चारो ओर मूल्यहीन, सस्कारहीन वातावरण है, ऐसी हालत मे वह आत्मकेन्द्रित होकर ही सुरक्षित रह सकता है। अस्तित्ववादी रचनाकार आत्मा के स्तर पर बाह्य परिवेश से सघर्ष करता है, उसे नकारता है तथा एक उच्चतर, सूक्ष्मतर और महत् सत्य का आत्म साक्षात्कार करता है। इस तरह नये रचनाकार में रहस्यवादी अन्तर्चेतना व्याप्त है।

महादेवी वर्मा का दर्शन अस्तित्ववादी नही है, वह निषेधात्मक नही है, वह भीतर से उच्छिन्न नही है फिर भी उसमे आत्म-सत्य का प्रगट करने वाली स्थितियाँ और परिस्थितियाँ हैं जो नये रचनाकार के परिवेश से बहुत भिन्न नही है। यदि अस्तित्ववाद प्रासगिक है तो महादेवी की रचना भी अनिवार्य और प्रासगिक है।

महादेवी ने जिस 'ससार' की रचना की है वह न तो आद्य रूपात्मक मिथकों का है और न भयावह फंटेसियों का है। महादेवी ने जीवन की मूल्यपरक चेतना के सर्वथा प्रकृत और शुद्ध रूपों को निर्मित किया है जो सहज है, जिनमें निश्छलता है इसीलिये उनकी रचना सर्वग्राह्य है। उन्होंने आत्मनिष्ठ जीवन के बिम्बों की रचना की है।

———

सन्दर्भ ग्रन्थ

—संस्कृत—

१—ऋग्वेद
२—ईशावास्योपनिषद्
३—छान्दोग्य उपनिषद्
४—श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण
५—मेघदूत
६—अभिज्ञान शाकुन्तल
७—उत्तर रामचरित

—हिन्दी—

१—अनामिका, निराला, भारतीय भण्डार, प्रथम संस्करण संवत् २००५ इलाहाबाद।

२—आँसू, जयशंकर प्रसाद, भारतीय भण्डार, अठारहवाँ संस्करण सम्वत् २०२६ वि०, इलाहाबाद।

३—आधुनिक कवि, सुमित्रानन्दन पन्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० २०१२।

४—आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, दसवाँ संस्करण १९६७।

५—आधुनिक साहित्य, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, सम्वत् २०१८ वि०।

६—अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, सं० २००७ वि०।

७—आधुनिक युग में धर्म—सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, राजकमल प्रकाशन दिल्ली—६, प्रथम संस्करण, १९६८।

८—आधुनिक परिवेश अस्तित्ववाद—डॉ० शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७३।

९—आधुनिक काव्य रचना और विचार—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, साथी प्रकाशन, सागर (म० प्र०) तृतीय संस्करण, १९६५।

१०—आकुल अन्तर—हरिवंशराय बच्चन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६१।

११—अजातशत्रु—जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद ।
१२—आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद—डा० शम्भुनाथ पाण्डेय, आगरा बुक स्टोर, आगरा, प्रथम सस्करण, सवत् २०११ वि० ।
१३—आधुनिक हिन्दी-मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन, डा० मनोहर काले, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, प्रा० लि० बम्बई—४, प्रथम सस्करण १९६३ ।
१४—आस्था के चरण—डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम सस्करण १९६७ ।
१५ – अज्ञेय की काव्य तितिषा—नन्दकिशोर आचार्य, सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर, प्रथम सस्करण, १९७० ।
१६—आधुनिम पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, डा० नरेन्द्रदेव वर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम सस्करण १९६७ ।
१७—अरस्तू का काव्यशास्त्र—डा० नगेन्द्र, भारतीय भण्डार इलाहाबाद, प्रथम सस्करण, स० २०१४ वि० ।
१८—अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा—रमेशकुन्तल मेघ, मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण १९७७ ।
१९—कानन कुसुम—जयशकर प्रसाद, भारतीय भण्डार इलाहाबाद, सप्तम सस्करण, स० २०२३ वि० ।
२०—कामायनी—जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सप्तम सस्करण, स० २०२३ वि० ।
२१—काव्यदर्शन और शैव सौन्दर्यबोध—डा० राजेश्वर दयाल सक्सेना, विद्यार्थी प्रकाशन, शिवनगर, नई दिल्ली—१८, प्रथम सस्करण १९७६ ।
२२—काव्य मे अभिव्यजनावाद—लक्ष्मीनारायण सुधाशु, सवत २००७ वि० ।
२३—काव्य रचना प्रक्रिया—डा० कुमार विमल, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम सस्करण १९७४ ।
२४—कालिदास की लालित्य योजना—हजारीप्रसाद द्विवेदी,—राजकमल प्रकाशन दिल्ली—६, द्वितीय सस्करण, १९७० ।
२५—कल्पना और छायावाद—केदारनाथसिंह, हस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० स० १९५७ ।
२६—कदलीवन—नरेन्द्र शर्मा, वितान महल इलाहाबाद, प्र० स० १९५४ ।
२७—कवि निराला—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, प्र० स० १९६५ ।
२८—काव्यसर्जना और काव्यास्वाद—डा० वेंकट शर्मा, आत्माराम एण्ड दिल्ली, प्र० स० १९६६ ।

२९—कला के सिद्धान्त—आर० जी० कलिंगवुड, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर—४, प्र० संस्करण १९७२।

३०—कवियित्री महादेवी वर्मा—डा० शोभनाथ यादव, वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा० लि० बम्बई—२, प्र० स० १९७०।

३१—क्षणदा—महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, इलाहाबाद सम्वत् २०१३।

३२—गीतिका—निराला।

३३—गीतपर्व—महादेवी वर्मा, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, प्र० स० १९७०।

३४—गीताजलि—रवीन्द्रनाथ टगोर, अनुवादक लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' द्वितीय संस्करण, १९६६।

५—गुजन—सुमित्रानन्दन पन्त, भारतीय भडार इलाहाबाद, नवम् संस्करण स० २०१५ वि०।

३६—ग्रन्थि—सुमित्रानन्दन पन्त, भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण।

३७—गौतम बुद्ध—जीवन और दर्शन—डा० राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, द्वितीय संस्करण १९७१।

३८—धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त—स० त्रिपिटकाचार्य भिक्षुधर्मरक्षित, महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस, प्र० स० १९४९।

३९—धम्मपद—भिक्षुधर्मरक्षित, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, प्र० स० १९५९।

४०—चन्द्रगुप्त—जयशंकर प्रसाद—भारती भडार इलाहाबाद, तृतीय संस्करण स० ९८।

४१—चन्द्रकिरण—रामकुमार वर्मा, ग्रन्थागार, ३० अमीनाबाद पार्क लखनऊ प्र० स० स० १९९४ वि०।

४२—चिन्ताधारा—जानकीवल्लभ शास्त्री।

४३—चिन्तामणि—प्रथम भाग, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्रा० लि० इलाहाबाद, १९७१।

४४—चिन्तामणि—द्वितीय भाग, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, काशी, संवत २००६ विक्रम।

४५—चितम्बरा—सुमित्रानन्दन पन्त, राजकमल प्रकाशन, १९५९।

४६—छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली—६, प्र० सं० १९७४।

४७—छायावाद का काव्य शिल्प—डॉ० प्रतिमा कृष्णबल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली—६, १९७१।

४८—छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि-डा० सुषमा पाल, नशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली—६।

४६—छायावाद और काय बिम्ब—डॉ० नरे द्र माथुर।

५०—छायावाद पुनमूल्याकन—सुमित्रान दन प त, लाक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण १६६५।

५१—छायावाद की प्रासगिकता-रमेशच द्र शाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-६, १६७३।

५२—छायावाद युग—डॉ० शम्भुनाथसिंह, सरस्वती मदिर, वाराणसी, द्वितीय सस्करण १६६३।

५३—जयशकर प्रसाद वस्तु और कला—डा० रामेश्वर खडेलवाल, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली—६, प्रथम सस्करण, १६६८।

५४—जयशकर प्रसाद—न ददुलार बाजपेयी, भारतीय भडार, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण, स० २०२३ वि०।

५५—झरना जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, सप्तम सस्करण, स० २०३२ वि०।

५६—दीपशिखा महादेवी वर्मा, भारती भडार इलाहाबाद, षष्टम् सस्करण, स० २०३२ वि।

५७—ध्यान दिग्दर्शन—राहुल साकृत्यायन, किताब महल इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण १६४७।

५८—निराला स० इन्द्रनाथ मदान, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद—१

५६—नये साहित्य का सौ दयशास्त्र—गजानन माधव मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली—६, १६७१।

६०—नीहार महादेवी वर्मा, साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद, छठवाँ सस्करण १६६२।

६१—नीरजा महादेवी वर्मा, भारती भडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, सोलहवाँ सस्करण १६७०।

६२—नाटक की परख—एम० पी० खत्री, साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग, प्र० स० १६४८।

६३—पथ के साथी—महादेवी वर्मा, भारती भडार इलाहाबाद, चतुर्थ सस्करण १६७१।

६४—पल्लव—सुमित्रान दन पन्त, राजकमल प्रकाशन दिल्ली—६, आठवाँ सस्करण १६६७।

६५—पतझर—सुमित्रान दन पन्त, राजकमल एण्ड सन्स दिल्ली—६, प्रथम सस्करण १६६६।

६६—परिक्रमा—महादेवी वर्मा, साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र० संस्करण १९७४ ।

६७—प्लेटो के काव्य सिद्धांत—डा० निर्मल जैन, नशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—६, प्रथम संस्करण १९६५ ।

६८—प्रणय पत्रिका—हरिवंशराय बच्चन, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं० १९५५ ।

६९—प्रबंध प्रतिमा निराला—भारती भंडार इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

७०—प्रबंध पदम—निराला, गंगा पुस्तक माला लखनऊ, तृतीय संस्करण १९६० ।

७१—प्रतीकवाद—पद्मा अग्रवाल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र० सं०, संवत् २०२५ वि० ।

७२—प्रसाद का काव्य डॉ० प्रेमशंकर, भारती भंडार इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ।

७३—महादेवी साहित्य—सं० ओंकार शरद, सेतु प्रकाशन, झाँसी, प्र० सं० १९६९ ।

७४—महादेवी अभिनन्दन ग्रंथ—सं० देवदत्त शास्त्री, भारती परिषद् प्रयाग, २०२१ ।

७५—महादेवी की रहस्य साधना—विशम्भर मानव, बनवटा, मुरादाबाद १९४४ ।

७६—महादेवी वर्मा—गंगाप्रसाद पाडेय, प्रमोद पुस्तक माला, प्रयाग, १९४१ ।

७७—महादेवी वर्मा—काव्य कला और जीवनदर्शन—शचीरानी गुर्टू, आत्मा-राम एण्ड सन्स दिल्ली, तृ० स १९६३ ।

७८—मूल्य और मूल्यांकन—डा० रामरतन भटनागर, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली १९६२ ।

७९—महादेवी का काव्य वैभव—सं० रमशचन्द्र गुप्त, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली—६, प्र० सं० १९६८ ।

८०—महादेवी के काव्य से लालित्य विधान—डा० मनोरमा शर्मा, साहित्य संस्थान कानपुर, प्र० सं० १९७० ।

८१—महादेवी की रचना प्रक्रिया—डा० कृष्णदत्त पालीवाल, सूर्योदय प्रकाशन दिल्ली—६ प्र० सं० १९७१ ।

८२—महादेवी नया मूल्यांकन—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन, शिमला—१, प्र० सं० १९६९ ।

८३—महादेवी वर्मा कवि और गद्यकार—डा० लक्ष्मणदत्त गौतम, कार्णार्क प्रकाशन, दिल्ली—७ प्र० स० १९७० ।

८४—मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन—डा० अहमद, भारती भवन पटना, प्र० स० १९६९ ।

८५—भारतीय काव्य चिन्तन—डा० राजेश्वर सक्सेना, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० स० १९६७ ।

८६—भारतीय दर्शन—डा० राधाकृष्णन, राजपालपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९६९ ।

८७—भारतीय संस्कृति—डा० देवराज, प्रकाशन शाखा, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण, १९६१ ।

८८—भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच—प० सीताराम चतुर्वेदी, हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १९६२ ।

८९—भक्तिकाव्य मे रहस्यवाद—डा० रामनारायण पाडे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

९०—भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० स० १९७४ ।

९१—भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास डा० देवराज, हिन्दुस्थान एकेडेमी इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण १९५० ।

९२—रश्मि—महादेवी वर्मा, साहित्य भवन प्रयाग १९४४ ।

९३—रहस्यवाद—डा० राममूर्ति त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० स० १९६६ ।

९४—रंगमंच शेल्डान चेनी, अनु० श्री कृष्णदास, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, प्र० स० १९६५ ।

९५—रससिद्धांत और सौन्दयशास्त्र डा० निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६७ ।

९६—रचना और आलोचना डा० कमलाकान्त पाठक, समन्वय प्रकाशन, इन्दौर—२, प्र० स० १९५८ ।

९७—रससिद्धांत डा० नगेन्द्र—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६७ ।

९८—विरहानुभूति और काव्य—सुरेन्द्रनाथ मिश्र, कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, प० स० १०००।

९९—यामा महादेवी वर्मा, भारती भंडार इलाहाबाद, पचम संस्करण, १९७१ ।

१००— सप्तपर्णा—महादेवी वर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६०।

१०१— सान्ध्यगीत महादेवी वर्मा, भारतीय भंडार इलाहाबाद, छठवाँ संस्करण, सं० २०२२ वि०।

१०२—संधिनी महादेवी वर्मा—लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० १९६५।

१०३—साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य डा० रघुवंश भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र० सं० १९६३।

१०४—सुमित्रानन्दन पंत—सं० इन्द्रनाथ मदान, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७५।

१०५—साहित्य दर्शन—शचीरानी गुर्टू, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली—६।

१०६—साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन—देवराज उपाध्याय, एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी, दिल्ली, प्र० सं० १९६७।

१०७—साहित्य रूप—डा० रामअवध द्विवेदी, भारती भंडार इलाहाबाद, प्र० सं० २०१८।

१०८—स्मृति चित्र—महादेवी वर्मा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली—६, प्र० सं० १९७३।

१०९—समीक्षा लोक—भगीरथ दीक्षित, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण सं० १९७४।

११०—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन—डा० देवराज, प्रकाशन ब्यूरो उत्तर प्रदेश, प्र० सं० १९५७।

१११—सौंदर्यतत्व—डा० कुमार विमल।

११२—संभाषण महादेवी वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७५।

११३—सौन्दर्यतत्व डा० सुरेन्द्रनाथदास गुप्त, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, संवत् २०१७ वि०।

११४—साहित्य सिद्धान्त रेने वेलक और आस्टिन वारेन, अनु० बी० एस० पालीवाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

११५—स्वच्छन्दतावादी समीक्षा और साहित्य चिन्तन डा० राजेश्वर सक्सेना, अप्रकाशित।

११६—साठ वर्ष एक रेखांकन, सुमित्रानन्दन पंत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६०।

११७—स्कन्दगुप्त जयशंकरप्रसाद, भारती भंडार इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।

११८—हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, अप्रेल १९६६।

११९—हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० राममूर्ति त्रिपाठी, मानकचन्द बुक डिपो, उज्जैन, प्र० म० ।
१२०—हिन्दी साहित्य की भूमिका—हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार बम्बई—४, सप्तम सस्करण १९६३ ।
१२१—हिंदी कविता मे युगातर डा० सुधीन्द्र आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, द्वितीय सस्करण, १९५७ ।
१२२—हिंदी की निगुण काव्यधारा और उसकी दाशनिक पृष्ठभूमि डा० गोविन्द त्रिगुणायत साहित्य निकेतन, कानपुर, प्र० स० १९६१ ।
१२३—हिंदी स्वच्छन्दतावादी काव्य डा० प्रेमशकर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रथ अकादमी, प्र० स० १९७४ ।
१२४—हिंदी साहित्य का इतिहास डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि० स० १९७६ ।
१२५—हिंदी साहित्य का इतिहास आचाय रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सवत् १९९९ ।
१२६—हरिवशराय बच्चन—चन्द्रगुप्त विद्यालकार, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, अष्टम् सस्करण, १९३५ ।
१२७—वक्रोक्ति सिद्धात और छायावाद डा० बिजेन्द्रनारायणसिंह, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद—२, प्र० स० १९७१ ।
१२८—एकान्त सगीत हरिवशराय बच्चन, सेन्ट्रल बुक डिपा, इलाहाबाद, पचम सस्करण, १९५४ ।
१२९—एक साहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध
१३०—एक घूट—जयशकरप्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण ।
१३१—उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण—रामचन्द्र दत्तात्रेय, राजस्थान हिंदी ग्रथ अकादमी, जयपुर, प्र० स० १९७१ ।
१३२—उपमा कालिदासस्य—डा० शशिभूषणदास गुप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—१९६२ ।
१३३—त्रिशकु अज्ञेय—सूय प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर, १९७३ ।
१३४—टिलियड का वक्रोक्ति सिद्धात—डा० मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ, पुस्तक सस्थान कानपुर, प्र० स० १९७५ ।

पत्रिकाएँ —

१—कादम्बिनी अक्टूबर १९७३ सम्पादक राजेन्द्र अवस्थी ।
२—आलोचना पूर्णाङ्क ७ राजकमल प्रकाशन अप्रैल १९५३ ।

३—आलोचना स० शिवदानसिंह चौहान—राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
४—संस्कृति ३४, नई दिल्ली—१, स० बदरीदत्त पाडे।
५—माध्यम जनवरी १९६७, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। स० बालकृष्ण राव।
६—ज्ञानोदय जनवरी १९६८, स० लक्ष्मीचन्द्र जैन। दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी—५।

ENGLISH

1 A History of Aesthetic—Bernard Bosanquet—George Allen and Unwin Ltd, London, 1956
2 Aesthetics in Modren Psychology—Amalendu Bagchi, Bankim Chhatterjee Street Calcutta—12, 1966
3 Aesthetic—Jerome Stolnitz, The Macmillan Company, New York London, Second Edition 1966
4 An Essay on Criticism—Graham Hough, Gerald Duckworth & Co Ltd, London WC-2 1966
5 Aesthetic—Benedetto Croce, Translated by Dougles Ainstle Vision Pre s, London, First edition 196‹
6 A modern Book of Esthetics, Melvin Rader Holt Rinehart and Winston INC States of America
7 Biographic Witeraria—Coleridge edited by Ernest Rhys I M Dent & Sons London, 1939
8 Buddhist Philosophy—A B Keith Chowkkamba Sanskrit series Varanasi, 1963
9 Collected Essay in Literary Criticism—Herbert Read Faber and Faber LTD London, Second edition
10 Critique of aesthetic Judgement—Kant Translated by Meridith
11 Feeling and Form—Susannek Langer Roultedge and Kegan Paul LTD, Third edition, 1963

12 Defence of Poetry—Shelley, Oxford Basik Black Well MFM XXXVII 1937

13 Eros and Civilization—Herbert Marcuse Allen Lane The Penguin Press, London, 1 '69

14 History of Philosophy—Eastern And Western, Volume Ist Sarvepalli Radhakrishna George allen and anwin LTD, LONDON, 1967

15 Principles of Literary Criticism—I A Richards London, 1955

16 Philosophies of Art and Beauty—Albert Hofestadter and Kichara Kuhans, the Modern Library, New York, 1964

17 Philosophy of Fine Arts—Hegal, translated by Osmaston, G Bell & Sons London Vol I, II, III, IV

18 Romentic Image—Frank Kermode, Routledge and Kegan Paul, London, Second edition, 1961

19 Sadhana—Rabindranath Tagore, London, 1961

20 Shakespearean tragedy—A C Bradley, Macmillan and Co LTD London, 1952

21 Shelley—A collection of Critical Essays, Edited by Beorge M Ridenour

22 Sense of Beauty—Santayana George

23 The Romantic Imagination C M Bowera, Oxford Paper Backs, London 1961

24 The Wheel of Fire—G Willson Knight, Methuen & Co LTD London, WC 2 First Edition, 1954

25 The Tragic Philosopher—F A Lea, Methuen & Co LTD WC 2 First Edition, 1957

26 The Selected Poetry and Selected Prose of Shelley By Carlos Baker, the Modern Library Random House, INC, 1951

27 The Complete Poetry and Selected Prose of Keats by Harold Edgar Briggs, The Modern Library New York, 1951

28 The Making of Literature Scott James Soken & Warbury, London, 1962

29 The Structure of Aesthetics—F F Sparshott Routeledge and Kegan Paul LTD London

30 The Ego and the Id—Sigmund Freud—translated by Joan Riviere, the Hougarth Press LTD, Fifth edition, 1949

31 The Integration of the Personality—C G Jung—Translated by Stenley Dell, Routledge and Kegan Paul, London

32 The Collected Works of C G Jung—Routledge and Kegan Paul LTD London Ist edition, 1954

33 The Decline and Fall of the Romantic Ideal—F L Lucas, the Sundlics of the Cambridge University Press, 1963

34 Mirror and the Lamp—M H Abroms, the Norton Liberary INC New York, Ist edition, 1958

35 Oxford Lectures on Poetry—A C Bradley Macmillan and Co LTD New York, 1959

36 Introductory Lectures on Psycho-Analysis—S Freud, George Allen Unwin LTD The Tenth edition 1961

37 New Introductory Lectures on Psycho-Analysis—S Freud, The Hogarth Press LTD, London Sixth edition, 1952

38 PMLA Vol 11 No 3 Sept 1937